अस्तंगता

*

कृष्णचन्द्र शर्मा 'भिक्खु'



भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

तुम जो
असुन्दर
अपवित्र
और अमंगलमय हो।
आओ, आत्मार्पित कर लूँ।

—'भिक्खु'

रत्नांकुर

मेरे पाप वली हैं
पुण्य क्षीण
मैं उन पुण्यों के लिए
उन पापों से
वैसे ही भीत रहता हूँ
जैसे पाण्डवों के लिए
कर्ण से भीत कुन्ती

पर मुझे
मेरे ये पाप
प्रिय भी वैसे ही हैं
जैसे माँ को पुत्र
समर्पित हुआ है जो
मेरा जीवन-तप इन्हें
जैसे काम-दग्ध सूर्य को
कुन्ती का कुँआरापन ।

अस्तंगता की उदय-कथा



'रोहिदास' के सहयात्रियों ने बताया—वह रहा 'अगुआद'। उस के पीछे माण्डवी की दक्षिण भुजा से वलयित 'पंजिम'। मैं डैक पर खड़ा था। रोहिदास जहाज़ 'अगुआद' के पहाड़ी क़िले के पास ही अरब सागर में ज्वार की प्रतीक्षा में लंगर डाले खड़ा था। अनतिदूर ही माण्डवी-सागर संगम था। ज्वार बढ़ा। 'रोहिदास' ने लंगर उठाया। जहाज़ धीरे-धीरे अरब सागर से माण्डवी मुख तक आया। 'अगुआद' का दुर्ग बायीं ओर पड़ गया। दायीं ओर माण्डवी के उस पार गोआ की राजधानी पंजिम। जैसे-जैसे रोहिदास नदी पत्तन की ओर बढ़ा, पंजिम नगर की धूमिल रेखाएँ रूपायित होने लगीं। दृष्टि की सहज सीमा में आते ही उस छोटे से नगर ने जो प्रभाव छोड़ा वह युरॅप के किसी छोटे क़सबे का ही हो सकता था!

वही क्षण था अस्तंगता के बीज वपन का!

वह बीज अंकुरित और पल्लवित हुआ मेरे गोआ (प्र)वास में।

हिन्दू बहुल होने पर भी गोआ के निजत्व पर छाप छोड़ी थी कैथोलिक समाज ने। गोआ के सालाज़ार और उस के पूर्वजों की साम्राज्य लालसा ही नहीं धर्म भी बन्धन बना गोआ के जन-जीवन का। धर्म, जिस का ध्येय मुक्ति है, विदेशी प्रभुओं की माया से अन्यथा अभिप्रायों का नियोजक बना।

फलतः आस्तिक विश्वास के छद्म में नास्तिक जीवन की घातकता को प्रश्रय मिला !

और मैं ने अनुभव किया कि मेरे ही देश का एक खण्ड—नहीं, अंग दासता की शृंखलाओं में आवद्ध विशृंखलित हो अवमूल्यन की दिशा में बढ़ चला था ! इस बोध ने मुझे जो अकुलाहट दी उस का परिणाम है यह उप—'न्यास' उस विशृंखलन कि अवमूल्यन का ।

गोआ स्वतन्त्र हो पितृदेश (मातृ भू) का फिर से अंग बन चुका था ! स्वतन्त्रता के आगमन से भविष्य के विवर में एक नया वातायन खुला—नये विश्वास, नयी क्रान्ति और नये युग-बोध से संवलित ।

उसी वातायन से मैं ने जब-जब अतीत के अन्ध-विवर में झाँका तो अनुभव की खण्डिता 'रुथ' की जीवन-वेदना, उस की और उस जैसे इतिहास-उपेक्षित जनों की अनन्त पीड़ाएँ । उस वेदना, उन पीड़ाओं ने जो ज्वाला दी उसी के आलोक में उभरीं अतीत के अन्धविवर में डूबी रेखाकृतियाँ !

यह उपन्यास वही वातायन है—अतीत के अन्धकार और भविष्य के आलोक का अन्तर्द्वार ।

और यही है 'अस्तंगता' की
उदय कथा !

—*भिक्खु*

● ● ●

अस्तंगता

जब भीड बढ जाती है तो मेरा अकेलापन भी बढ जाता है। उमड़ते जन-ज्वार में मुझे यही लगता है कि मेरे अस्तित्व के तट को उस की लहरें लीलती जा रही हैं और मेरे व्यक्तित्व के कगार ज्वार के उन्माद में बहते जा रहे हैं।

बम्बई के बन्दरगाह की भीड़ में मेरी कुछ वैसी ही हालत थी। टैक्सी से उतरा भी न था कि पोर्टरों ने घेरा, "साहब कैबिन !"

"कैबिन नही, अपर डैक।"

सामान के नाम पर एक बक्स और एक बिस्तर बस ये ही दो चीजें थी। देख कर भी पोर्टर ने पूछा, "बस और कुछ नही सा'ब।"

"नही।"

"सामान भारी है सा'ब। पाँच रुपये फ़ी अदद होगा।"

मेरी समझ में नही आया कि वह सामान का दाम बोल रहा है या उठवाई-ढुवाई का। फिर भी मैं ने कोई विशेष प्रतिक्रिया नही दिखायी। इस पर उस ने पहले से अधिक गम्भीरता से कहा, "तो उठाऊँ सामान सा'ब।"

'नही,' मैं ने कहना चाहा पर कह नही पाया। जहाज के छूटने में देर न थी। बस किसी प्रकार जहाज पर चढ़ जाऊँ, यही एक बात दिमाग़ में थी।

पर पोर्टर बिना 'हाँ' सुने सामान उठाने को तैयार न था। जैसे उसे खुद लग रहा था कि उस की माँग माकूल नही। या सोचता हो कि मैं बाद में उसे कम पैसे न थमाऊँ कहीं। बोला, "सा'ब जल्दी फैसला करो। जहाज की सीढ़ी हटने वाली है।"

उस की इस बात से मैं अस्वाभाविक त्वरा से भर उठा। चट से आगे बढ़ कर सामान सिर पर रखने में उस की मदद की। वह सामान उठा कर चलता-चलता कह रहा था, "सा'ब आप ने आने में देर की। अपर डैक पर पाँव रखने की जगह नहीं। सा'ब लोग, मेम सा'ब लोग सुबह छह बजे का आया पड़ा है। लोअर डैक में जायेगा सा'ब।"

क़ुली के सवाल का मैं ने कोई जवाब नहीं दिया। तट और जहाज़ को जोड़ने वाली सीढ़ी पर से हो कर आगे बढ़े। जहाज़ पर चढ़े। डैक पर भीड़ की अजीब हालत थी। जैसे कोई देहाती मेला हो या कुम्भ-स्नान पर आये यात्री और कोई ठौर न पा कर रेलवे प्लेटफ़ॉर्म पर ही जम गये हों। मुझे कल्पना भी नहीं थी कि वह अपर डैक होगा। पोर्टर अब एक और सीढ़ी से नीचे उतरने लगा था। मैं पीछे-पीछे लगा था। पर नीचे उतरते ही तबीयत परेशान हो उठी। आग सी बरस रही थी और पसीने की दुर्गन्ध से हवा कुछ इतनी बोझिल थी कि रुकते ही लगा जैसे कुछ देर वहाँ और टिका तो साँस भी न ले पाऊँगा।

मैं ने चिड़चिड़े स्वर में पोर्टर से पूछा, "यह कहाँ ले आया?"

उस ने तेज़ स्वर में जवाब दिया, "लोअर डैक में। तुम को बोला न था कि अपर डैक में जगह नहीं है?"

मेरी कल्पना से भी अतीत था वहाँ सफ़र कर सकना। बन्द तहख़ाने जैसी हालत। इतना ही नहीं जैसे उस तहख़ाने के नीचे कहीं भट्ठी भी जल रही हो। मैं ने चारों ओर नज़र घुमायी। लोग निढाल से पड़े थे। चेहरे कुम्हलाये हुए। आँखें पीली-पीली। कुछ लोग जहाज़ की दीवार में बने गोल गोखों में मुँह डाल कर पता नहीं बाहर का दृश्य देख रहे थे या साफ़ हवा लेने की कोशिश कर रहे थे।

सामान के बोझ, गरमी और पैसा कमाने के लोभ ने पोर्टर को और चिड़चिड़ा कर दिया था। झुँझलाहट और रुखाई के साथ बोला, "इधर-उधर क्या ताक रहा है सा'ब। बोलता क्यों नहीं, किधर सामान रखें।"

मैं ने अनायास सख्त हो कर कहा, "लोअर डैक में आने को किस ने बोला था। अपर डैक किधर है ?"

वह बड़बड़ाता सा बोला, "कैसा सा'ब है। लोअर डैक अपर डैक का पता नहीं। बोला नहीं, अपर डैक से तो हो कर आता है।"

मैं ने सुना और बिना कुछ कहे जिन सीढ़ियों से नीचे आया था, उन्हीं से ऊपर भाग चला।

ऊपर पहुँच कर ताजी और नम हवा मिली। जान में जान आयी। सिर पर तिरपाल तना था। जिधर से धूप आ रही थी उधर के परदे भी गिरे थे। फिर भी वह जगह नीचे की बनिस्बत जन्नत लग रही थी। मगर दूसरे ही क्षण जब पाँव रखने की जगह कहीं नहीं दिखाई दी तो मैं घबरा उठा। पर पोर्टर से घबराहट छिपा कर कहा, "बस कहीं भी सामान रख दो। हम सामान पर बैठ जायेगा।"

पोर्टर ने मेरी बात सुन कर अजीब सा मुँह बनाया। बोला, "जगह सिरफ हमारे सिर पर है। और जगह दिखाओ तो हम रख दें।"

मेरी विवशता पोर्टर से छिपी नहीं। सदय हो कर बोला, "अच्छा फिकिर मत करो सा'ब, हम इन्तिजाम करेगा। सामान हम नीचे रख देगा। लोअर डैक में इंजिन-रूम के पास। तुम यहाँ कहीं बैठ जायेगा। किसी सा'ब से जगह माँग लेना। ठीक बोलता है न सा'ब ?"

मैं ने स्वीकृति में सिर हिला दिया।

वह नीचे सामान रख कर लौटा तो जहाज ने भोंपू बजाया। तट और जहाज़ को जोड़ने वाली सीढ़ी को हटाने का इन्तज़ाम किया जाने लगा। मैं ने जल्दी से पैसों के लिए पर्स वाली जेब में हाथ डाला। पर हाथ ख़ाली जेब में पहुँचा तो जी धक से रह गया। पर्स गायब था।

मेरे फक् पड़े चेहरे को देख कर पोर्टर ने पूछा, "क्या हुआ सा'ब ?"

"किसी ने पॉकेट मार ली लगता है", कह कर मैं चिन्ता में पड़ गया। मुझे इस बात की और भी घबराहट थी कि यह पोर्टर कुछ और

ऊल-जलूल वात कहेगा। ग़नीमत यह थी कि वक्स में कुछ रुपये पड़े थे और टिकट भी दूसरी जेब में सलामत था। मगर वक्स खोल कर रुपया निकालने का वक़्त नहीं था। सीढ़ी जो हटने वाली थी।

पोर्टर माथे का पसीना अँगुली से झाड़ता हुआ वोल रहा था, "अक्खा वम्वई ऐसा है। जिधर देखो पाकेटमार भरा पड़ा है। अमीर गरीव को पाकेट मारता है। गरीव अमीर को मारता है। देखो हम दस रुपया माँगता था मजूरी का। पाकेट मारता था न तुम्हारी। मगर अव क्या होगा? पैसा नहीं मिलेगा न!"

इतना कह कर वह अजीव दार्शनिक भाव से चलने लगा। मैं ने तभी उसे रोका। हाथ में एक सोने की अँगूठी पड़ी थी। मैं ने उतार कर उस की ओर वढ़ाते हुए कहा, "लो, तुम यह ले लो। तुम घाटे में नहीं रहेगा।"

उस ने अँगूठी की ओर देखा। आँखों में लोभ चमका। हाथ वढ़ा। पर ठिठक कर रह गया। वोला, "नहीं, सा'व। हमारे पास पुलिस वाला यह अँगूठी देखेगा तो वोलेगा, चोर है साला! जवेरी के यहाँ जायेगा वेचने को तो वह भी पुलिस को फोन करेगा। वस फिकिर मत करो सा'व। दूसरा मुसाफिर से कमायेगा। यह हमारा नम्वर है। याद रहे और इधर से लौटो तो सुपरवाइजर से पता कर लेना। नहीं भी लौटा तो कोई फिकिर नहीं सा'व।"

वह डैक पर हो था। सीढ़ी हटाने वाले ने उसे उतरते न देख कर एक कड़वी सी गाली मारी और वह उस गाली के पुरस्कार के साथ मुझे छोड़ कर चला गया।

जहाज़ तट से सरकने लगा। डैक पर कुछ हलचल सी मची। जिन यात्रियों के सगे-सम्वन्धी, दोस्त या परिचित उन्हें पहुँचाने आये थे, वे सव किनारे की भीड़ में सिर्फ़ उन्हीं-उन्हीं को देख या खोज रहे थे। किनारे

की तरफ वाले हिस्से में इसी से अचानक भीड़ बढ़ गयी थी। किनारे की भीड़ में भी हलचल की लहर सी उमड़ी। बहुत से हाथ उठे। उन में रंग-बिरंगे रूमाल चमके। पता नहीं पंख फड़फड़ाते पंछियों से वे रूमाल कितनों के मन की छटपटाहट का प्रतीक थे। मेरे लिए कोई हाथ नहीं उठा, मेरे लिए कोई रूमाल नहीं हिला। फिर भी मैं किनारे की भीड़ के हर चेहरे को जैसे पढ़ रहा था। सुन्दर-असुन्दर, श्रीन-श्रीहीन, स्वस्थ-कुरूप चेहरे भावनाओंका रंगमंच बने थे। अनेक की आँखों के झरोखों से उन के मन के लोअर डैक में झाँका जा सकता था।

जैसे रेल झट से स्टेशन छोड़ देती है और हिलते हुए हाथ गार्ड की हरी झण्डी से हिल कर गायब हो जाते हैं, वैसा कुछ भी तो नहीं हुआ। जहाज धीरे-धीरे सरक रहा था।

मेरा मन द्विधा हो कभी किनारे पर जमा आँखों और हिलते-डोलते हाथों में उलझ जाता तो कभी डैक पर की भीड़ में।

अचानक मैं ने किसी स्पर्श का अनुभव किया। कोई कोमल हाथ मेरे कन्धे पर टिका था। मैं गरदन घुमा कर देखूं कि उतनी ही देर में मन कल्पनाशील हो उठा था। उस हाथ का दबाव और बढ़ा। मैं ने देखा : एक तरुणी। उस पहली दृष्टि में वह असुन्दर नहीं लगी। नये फैशन के छँटे बाल, फ्रॉक और........। उस समय उस को और नहीं देख सका। महिला का बायाँ हाथ अनजाने ही मेरे कन्धे पर आ टिका था। दाहिना हाथ बिना किसी रूमाल के हवा में उठा था। जैसे बहते पानी के भीतर डाली हुई सीधी छड़ी भी लहरीले तिरछेपन से भर उठती है, वैसी ही कुछ थी वह उठी हुई भुजा। आँखें नम थीं और उन के भीतर की अकुलाहट उस नमी पर से फिसलती हुई तट के किसी हिलते हुए हाथ की कलाई का कंगन बनने को परेशान हो जैसे।

कुछ अभद्र सा था इतना भी देख लेना। उस का हाथ नितान्त निरपेक्ष भाव से मेरे कन्धे पर टिका था। जैसे उड़ता हुआ कोई कपोत

आया। खण्डहर की मुँडेर खाली मिली। बस बैठ गया। फिर कब उड़ जायेगा, यह वह खण्डहर क्या जाने? उस मुँडेर को ही क्या पता?

तभी एक खुश्क सी आवाज़ किनारे पर से उठी और मेरे सिर पर से हो कर उड़ गयी। हलके परिचय की गन्ध से भरी उस आवाज़ को न तो मैं सहसा खोज पाया और न उस से अपना सम्बन्ध ही जोड़ पाया। पर जब आवृत्ति हुई तो ठिठका, "सा'ब सलाम!"

मैं आवाज़ के उद्गम तक पहुँच गया था। पोर्टर था। वही पोर्टर। मेरा बोझ उस ने उठाया था। पर पैसे नहीं लिये थे। इसलिए वह पोर्टर से कुछ विशिष्ट हो उठा था। एक साथी, कोई अपना, जो उन हिलते हुए हाथों में से एक हो और जिस एक से मेरा अपना सम्बन्ध हो। मुझे कुछ अच्छा ही लगा। अपने कन्धे पर के कोमल स्पर्श को भी भूल गया और मेरा हाथ अजीब उत्साह के साथ हवा में हिल उठा। उस हाथ के उठते ही मुझे लगा जैसे मेरे कन्धे पर से कुछ फिसला। उस फिसलन के साथ ही उस कन्धे पर रिक्तता का बोझ बढ़ा। पर मकड़ी के जाले सी उस अनुभूति में भी उस क्षण मैं उस पोर्टर की ही ओर केन्द्रित था। नाम से परिचित न था। पर उस का नम्बर मेरे लिए सुपरिचित नाम से भी अधिक वास्तविकता बन चुका था। तिरपन नम्बर। पता नहीं अंकविद्या के अनुसार शुभ था कि अशुभ। पर मेरे लिए शुभ ही। परिस्थिति-जन्य विवशता ही थी कि उस ने मुझ से सामान ढुवाई का कुछ नहीं लिया। फिर भी उस विवशता से उस अपरिचित के प्रति जो सौहार्द्र जन्म ले चुका था वह मेरे लिए उस क्षण अनेक कटु-मधुर सम्बन्धोंसे अधिक महत्त्वपूर्ण था।

मेरे हिलते हुए हाथ से उत्साहित हो कर तिरपन नम्बर का हाथ भी उठा। पर मैं ने यह स्पष्ट देखा कि भारी बोझ को भी सरलता से उठा लेने वाली उस की वह बाँह शुरू में झिझक के बोझ से उठ नहीं पा रही थी। फिर पता नहीं, मेरी आँखों की चमक, चेहरे की खुशी और हिलते

हुए हाथ की उमंग से उत्साहित हो कर ही तो उस की मजबूत बांह अपनेपन में आ गयी थी और अब अपनेपन से भरा एक हाथ मेरे लिए भी किनारे की उस भीड़ मे जनम ले चुका था।

परम्परा के भोगी मेरे मन ने उसे शुभ ही माना। स्वदेश के ही एक भाग में जा रहा था, फिर भी लग रहा था परदेश जा रहा हूँ। और वह पोर्टर, जो कुछ क्षण पूर्व मेरे लिए परदेशी सा था, उस क्षण आत्मीय हो कर बिछुड़ रहा था।

किनारे के प्रति मेरा मोह बढ़ चला था। किनारे की भीड़ के हजारों चेहरे और उन पर उमड़े उतने ही भाव धुँधले पड़ चले थे। उठे हुए हाथ और रुमाल और भी नन्हें हो गये। तिरपन नम्बर का अलग अस्तित्व तिरोहित हो चला और अब मुझे अनेक नामों से मिल कर बना तट का जन-समूह अनाम लगने लगा। पर अनाम हो कर भी वह मेरे लिए अंकहीन नहीं हो सका। अब जैसे उस समूह के भाल पर तिरपन के अंक लिखे हों। वही उस समूह का नाम हो। वही परिचय। और मैं उस परिचय से अपरिचय की भूमि में जा रहा था। हठात् तट की ओर से दृष्टि समेट ली और बोझिल मन से कन्धे पर टिके हाथ को खोजने लगा जो अब वहाँ न था। उस के बाल और फ्रॉक जो बोध छोड़ गये थे, वह इतना सामान्य था कि अनेक चेहरों में मुझे उस का आभास मिला और फिर मैं उस से भी उपराम हो कर पचास और तीन के योग में लग गया।

अपर डैक के जिस हिस्से पर सीढ़ी लगी थी, अब वहाँ रेलिंग उठ आयी थी। जिस स्थान को मैं ने मार्ग मान कर छोड़ दिया था, सीढ़ी के हटते ही रेलिंग लग जाने से वह डैक के किसी भी दूसरे हिस्से-सदृश हो गया था। कुछ सावधान लोगोंने रेलिंग के उठते ही उस खाली जगह में मेरे देखते-देखते अपना ठिकाना कर लिया था।

जहाज़ डोल रहा था। डैक के बीच में बिना किसी आधार के निरर्थक सा खड़े रहने में एक अजीब ऊब सी अनुभव हो रही थी। बस जाने कैसे मैं ने भी थोड़ी ढीठता दिखायी और सरकता हुआ रेलिंग के सहारे आ खड़ा हुआ। इस सुविधा को पाने में मुझे दो-एक यात्रियों के विस्तार-भोगी देहों को लांघने के साथ-साथ अनेक वक्र भृकुटियों की भी उपेक्षा करनी पड़ी थी।

मेरे समीप ही फ़र्श पर दरी बिछा कर लेटे हुए एक सज्जन अपने पार्श्ववर्ती को कुछ ऐसे उच्च स्वर में बता रहे थे जिस से आसपास के दस-बीस यात्री भी उन की बात सुन सकें। उन की बात सुनने की कोई इच्छा न होने पर भी मैं सुनने पर मजबूर था। वे कह रहे थे, "बेवक़ूफ़ी की जो जहाज़ का रास्ता पकड़ा। रेल से फ़र्स्ट क्लास का रिज़र्वेशन था। बम्बई से डैकन क्वीन से पूना और फिर पूने से वास्कोडिगामा एक्सप्रेस से मड़गाँव। सीधे वास्को भी जा सकता था और फिर वहाँ से टैक्सी कर लेता। पर पैसा खरचने को तैयार होने पर भी मुसीबत जो क़िस्मत में बदी थी!"

जिस यात्री से उन्होंने अपना दुखड़ा रोया वह भी कोई नहले पर दहला मारने वालों में से था। बोला, "अजी रेल के सफ़र में तो फिर भी दिक़्क़त है। मैं ने तो हवाई जहाज़ का रिज़र्वेशन छोड़ दिया। किसी ने बताया कि कैबिन मिल जायेगा। स्टारबोर्ड साइड कैबिन लेना। मज़ेदार नज़्ज़ारा भी रहेगा। मगर क्या मालूम था कि उस के बदले यह नज़्ज़ारा देखना होगा कि लोग आप के सिर पर मय जूतों के सवार होंगे।"

पता नहीं यह इशारा किस की तरफ़ था। मैं स्वयं उन से कोई दो गज़ दूर था। और कोई दूसरा यात्री भी आसपास न था। फिर भी मैं ने बेचैनी सी महसूस की और उस दिशा से मुँह मोड़ कर सागर की लहरों में व्यस्तता खोजने लगा। पर उन का सम्भाषण मेरा पीछा करता ही रहा। पहले वाले सज्जन कह रहे थे, "तो आप भी मेरी ही तरह फंसे

कैबिन के चक्कर में। जनाब मैं तो कैबिन का ड्योढ़ा देने को तैयार था। पर जगह हो तब न।"

तभी एक पंजाबी यात्री ने बड़ी बेतकल्लुफी से मेरी बाँह को पकड़ कर हिलाते हुए कहा, "कब तक खड़े रहोगे बादशाओ, आओ बैठो भी।"

मेरी पहली प्रतिक्रिया चिढ़ भरी थी। पर घूम कर उस के मुख के प्रसन्न भाव को देखा तो चिढ़ का घूँट गले के नीचे अपने आप उतर गया और मैं बोला, "जगह कहाँ है भाई साहब। फिर नाहक किसी दूसरे को तकलीफ भी क्यों दी जाये ?"

वह यात्री उसी प्रसन्न भाव से बोला, "बादशाओ, साड्डे गुरु ने दस्सा है कि जगा दि की लोड, दिल विच थाँ चाइए।"

मुझे उस असुविधा में भी हँसी आ गयी। वह खुद बेहद असुविधा में था। पर जैसे असुविधा का निषेध ही उस के व्यक्तित्व का आग्रह था। तभी उस की बगल से ही एक दूसरी आवाज उठी, "दिल में ही जगह लेनी है तो मूँछ-दाढ़ी वाले के दिल में क्या रखा, किसी फिल्म स्टार के दिल में न थाँ ले!"

वह संवादी स्वर भी पंजाबी था। इस सुझाव पर वे दोनों मिल कर हँस पड़े। मैं भी कितनी ही देर तक धीमे-धीमे हँसता रहा। पर वह हँसी अपनी सीमा में ही घुट कर मर गयी।

यात्रियों में अधिकांश गोन (गोआ-वासी) स्त्री-पुरुष ही थे जो गरमियों की छुट्टियों में स्वदेश लौट रहे थे। कुछेक गुजराती परिवार भी उस समुदाय में बिखरे पड़े थे। एकाध चेहरा मद्रासी भी उस भीड़ में नजर आया। इस के अलावा मेरी ही बगल में स्थित दो सज्जन मराठी में संलाप कर रहे थे। उन की वार्ता के बीच-बीच में गाली भी आ जाती और जाने क्यों तदर्थ वे हिन्दी का ही प्रयोग करते।

न रहा गया तो इस बारे में मैं उन से पूछ बैठा था। उन में से एक ने तत्काल जवाब दिया था, "हिन्दी-विन्दी की क्या बात करता है।

भैया लोगों की बोली है। उस में गाली नहीं तो क्या कीर्तन करेगा। अक्खा बम्बई को यह भैया लोग खालिस पानी पिलाता है। दूध के नाम पर पानी पिलाता है। हम बोलता है, ऐसा आदमी को गधे की पूँछ से बाँध कर घसीटना माँगता है। साला दूध नहीं पानी बेचता है।"

मन खराश से भर उठा था। उस भावना से उबरने के लिए मैं वहाँ से चल दिया। पर उस स्थान में जो सुरक्षा थी वहाँ से हटते ही उस से वंचित होने का पूरा-पूरा अन्देशा था। फिर भी मैं धीरे से बढ़ चला। दिशा अनिश्चित होने पर भी जिधर पाँव रखने की जगह मिली उधर पाँव रखता हुआ बढ़ चला।

किनारा दूर हो चला था। मैं बाथरूम आया तो उस के दरवाज़े के पास ही रुका रहा। लगभग चौबीस घण्टे की यात्रा थी। पर अन्त लगता था सुदूर है। अभी दोपहर आयेगी, फिर पहर पर पहर बीतेंगे। आठ पहरों में चौबीस घण्टों का आवर्तन। जाने क्यों यह छोटी सी संख्या भी विपुल लगी।

मैं ने गणना का आधार बदला। दोपहर आने वाली है। दोपहर के बाद साँझ भी आ ही जायेगी। फिर साँझ से रात रह ही जाती है कितनी दूर। और रात जब आ जाती है तो बीत भी जाती है।

और मैं स्वयं को बहलाने के इस तरीके पर आप ही आप हँस पड़ा। हँसी मुखरित तो नहीं हुई पर मूर्तित अवश्य हुई और कुतूहली दृष्टियों से छिपी भी नहीं। उन दृष्टियों ने मुझे संकोच से भर दिया और मैं पुनः गम्भीरता का आवरण ओढ़ने की चेष्टा में स्वयं अपनी ही दृष्टि में हास्यास्पद हो उठा।

इतने में जहाज का सुपरवाइजर टिकट चैक करता हुआ उधर निकल आया। हालाँकि अभी वह दूसरे यात्रियों में ही व्यस्त था, मैं ने

स्वयं को व्यस्तता का छल देने के लिए व्यर्थ ही एक-दो जेबों को टटोला और फिर किसी तीसरी ही जेब से टिकट निकाल हाथ में थामे सुपरवाइज़र की प्रतीक्षा करने लगा।

जब सुपरवाइज़र मेरी ओर उन्मुख हुआ तो मैं ने उस की दिशा में टिकट बढ़ा दिया। उस ने टिकट थामते हुए किंचित् अधिकार-दर्प के साथ अँगरेज़ी में कहा, "आप बाथरूम का रास्ता रोके खड़े हैं। दूसरे पैसेंजर एतराज़ कर सकते हैं।"

मुझे उस का यह कहना अनायास ही अपमानित कर गया। उस अपमान के अस्वीकार के प्रयत्न में मैं ने कह दिया, "आप ने मुझे टिकट तो दे दिया, मगर जगह नहीं दी। आप मुझे जगह बता दें मैं वहीं बैठ जाऊँगा।"

इस उत्तर के लिए वह तैयार न था। अचकचा कर बोला, "आप का सवाल अजीब है। डैक पर एक सौ अस्सी पैसेंजर की जगह है। टिकट सिर्फ एक सौ बीस इश्यु हुए हैं। और आप हैं कि जगह की शिकायत करते हैं।"

मैं ने किंचित् उत्तेजना के साथ कहा, "मैं आप से बहस नहीं करना चाहता। आप मुझे सिर्फ जगह दे दें। लेटे हुए पैसेंजरों को मैं नहीं उठा सकता। ये बेंच बैठने के लिए हैं, सोने को क्यों नहीं। और आप यह सब देख कर भी चुप हैं। ज़मीन तक पर जगह नहीं। रास्ते तक में लोग बैठे हैं या सामान रखा है।"

उसे कोई जवाब नहीं सूझ रहा था। चेहरे पर क्षोभ अवश्य था, जो लेटे हुए यात्रियों के प्रति न हो कर मेरी स्पष्टवादिता पर ही था। पर तभी लेटा हुआ एक वृद्ध यात्री सुपरवाइज़र की रक्षा करता हुआ बोल उठा, "तुम्हें कौन बोलता है मिस्टर कि नहीं बैठो। हम बोला कि सुबह छह बजे आया था। जगह खाली था तो लेट गया। हम बोलता है तुम भी बैठो न!"

और उस ने अपने पाँव सिकोड़ते हुए वैठने का इशारा किया ।
ही इस सदाशयता के पीछे कदाचित् इस वात का ही भय था कि
मैं इस वात पर न अड़ जाऊँ कि वेंचों पर लेटे हुए पैसेंजर वैठें
जिन के पास ठीक जगह नहीं उन्हें जगह दें ।

पर मैं ने उस आमन्त्रण की उपेक्षा ही की । मैं ने उस वूढ़े को
ताने के इरादे से सुपरवाइज़र से वहस नहीं की थी । जव मैं नहीं वैठा
तो आसपास लेटे हुए यात्री समान भय से पीड़ित से मेरे विरोध में एक
हो गये । एक ने भद्दी अँगरेज़ी में कहा, "अजीव आदमी है ! जगह नहीं
है तो शिकायत है, जगह है तो भी शिकायत है !"

उसी रौ में एक नौजवान यात्री वोला, "मिस्टर, वैठ क्यों नहीं
जाता । जागा माँगता है तो जागा दे दिया ।"

मेरी अजीव हालत थी । मुझे किसी यात्री से शिकायत न थी ।
सुपरवाइज़र की वात पर मुझे अपनी वात कहनी पड़ी थी । मगर नतीजा
यह हुआ कि आराम से लेटे हर यात्री को मुझ से शिकायत हो गयी ।
जैसे मैं न वैठ कर उन के लेटे रहने के खिलाफ़ शिकायत कर रहा था ।
उस स्थिति से उवरने के लिए मैं दिशा और स्थान का विचार किये
विना ही वढ़ चला । हर क़दम पर मुझे अवरुद्ध क्रुद्ध दृष्टियों को लाँघना
पड़ रहा था । शरीरों के ऊपर से हो कर जाने में मुझे वैसे ही ग्लानि
हो रही थी । किसी का अंग मेरे पाँव से न छुए इस चेष्टा में सन्तुलन
वनाये रखना और भी कठिन हो रहा था । तिस पर दृष्टियों का तिरस्का
और विरोध तो धक्के से दे रहा था । पता नहीं कैसे मैं ने वे कुछ प
विताये और जव किसी तरह एक कोने में रेलिंग के पास पहुँच प
तो मैं उस मानसिक आयास के फलस्वरूप न सिर्फ़ पसीने से तरवत
चला था वल्कि कुछ-कुछ हाँफ भी रहा था ।

रेलिंग के पास पहुँच कर मैं वाँहों के वल आगे की ओर क
गया था । नमकीन और वोझिल समुद्री हवा का स्पर्श उपचार भ
अ

और मैं सुख की शिथिलता से भरने लगा। डैक पर से उठती हुई ध्वनियाँ फिर भी मेरी चेतना को घेरती रहीं। नाना बोलियों के बीच हिन्दी का कोई अच्छा-बुरा वाक्य कान में पड़ जाता तो लगता जैसे अपरिचितों की भीड़ में कोई परिचित मिल गया। जहाज के कैण्टीन-बॉय यात्रियों के ऑर्डर सर्व करते फिर रहे थे। जब उन लड़कों को ऐसे यात्री से बात करनी पड़ती जिस की भाषा वे नही जानते और जो उन की भाषा नहीं समझता तो उस भाषा-वैकुएम में टूटी-फूटी हिन्दी अचानक ही उभर आती और इस तरह दोनों पक्षों का काम चल जाता।

मैं समुद्र की सतह को दृष्टि से बींध रहा था कि सिगरेट के कड़ुए धुएँ से परेशान हो कर मैं ने धुएँ की दिशा में देखा। एक गौर महिला मेरे पास ही बक्स पर बिस्तर रख कर स्वयं उस के ऊपर बैठी थी। अँगरेजी ढंग के कटे बाल, फ्रॉक और सिगरेट वाले हाथ को ऊर्ध्वमुख किये अलंकारहीन कलाई। त्वचा का रंग गोरा था। बस इतना ही उस का व्यक्तित्व उस एक झलक में उभर सका और मैं पुन सागर की लहरों में अपनी दृष्टि को डुबोता हुआ वह सब-कुछ सोचने लगा जिस की सार्थकता मेरे जीवन को कभी का छोड़ चुकी थी।

धीरे-धीरे समय का बोझ बढ़ चला था। बदन के बोझ से मेरी टाँगें उतनी न दुखी थी जितनी कि क्षणों की परिधि में घूमने वाले समय के बोझ से। हर नया क्षण उस बोझ की अनुभूति को तीव्र करता और इस तीव्रता में यात्रा का अन्त और आगे सरकता सा जान पड़ता।

डैक पर लंच के ऑर्डर दिये जा रहे थे। उन सब की स्पष्ट-अस्पष्ट आवाजें अन्य आवाजों से घुल-मिल कर मुझ तक पहुँच रही थीं, पर मेरे अपने मन में भोजन का कोई संस्कार जाग ही नही रहा था।

रेलिंग पर टिकी-टिकी कोहनियाँ दुख जातीं तो सीधा खड़ा हो

और उस ने अपने पाँव सिकोड़ते हुए बैठने का इशारा किया। उस की इस सदाशयता के पीछे कदाचित् इस बात का ही भय था कि कहीं मैं इस बात पर न अड़ जाऊँ कि बेंचों पर लेटे हुए पैसेंजर बैठें और जिन के पास ठीक जगह नहीं उन्हें जगह दें।

पर मैं ने उस आमन्त्रण की उपेक्षा ही की। मैं ने उस बूढ़े को सताने के इरादे से सुपरवाइज़र से बहस नहीं की थी। जब मैं नहीं बैठा तो आसपास लेटे हुए यात्री समान भय से पीड़ित से मेरे विरोध में एक हो गये। एक ने भद्दी अँगरेज़ी में कहा, "अजीब आदमी है! जगह नहीं है तो शिकायत है, जगह है तो भी शिकायत है!"

उसी री में एक नौजवान यात्री बोला, "मिस्टर, बैठ क्यों नहीं जाता। जागा माँगता है तो जागा दे दिया।"

मेरी अजीब हालत थी। मुझे किसी यात्री से शिकायत न थी। सुपरवाइज़र की बात पर मुझे अपनी बात कहनी पड़ी थी। मगर नतीजा यह हुआ कि आराम से लेटे हर यात्री को मुझ से शिकायत हो गयी। जैसे मैं न बैठ कर उन के लेटे रहने के खिलाफ़ शिकायत कर रहा था। उस स्थिति से उबरने के लिए मैं दिशा और स्थान का विचार किये बिना ही बढ़ चला। हर क़दम पर मुझे अवरुद्ध क्रुद्ध दृष्टियों को लाँघना पड़ रहा था। शरीरों के ऊपर से हो कर जाने में मुझे वैसे ही ग्लानि हो रही थी। किसी का अंग मेरे पाँव से न छुए इस चेष्टा में सन्तुलन बनाये रखना और भी कठिन हो रहा था। तिस पर दृष्टियों का तिरस्कार और विरोध तो धक्के से दे रहा था। पता नहीं कैसे मैं ने वे कुछ पल बिताये और जब किसी तरह एक कोने में रेलिंग के पास पहुँच पाया तो मैं उस मानसिक आयास के फलस्वरूप न सिर्फ़ पसीने से तरबतर हो चला था बल्कि कुछ-कुछ हाँफ भी रहा था।

रेलिंग के पास पहुँच कर मैं बाँहों के बल आगे की ओर को झुक गया था। नमकीन और बोझिल समुद्री हवा का स्पर्श उपचार भरा लगा

और मैं युग की शिथिलता से भरने लगा। डेक पर से उठती हुई [illegible] फिर भी मेरी चेतना को घेरती रहीं। नाना बोलियों के बीच हिन्दी का कोई अच्छा-बुरा वाक्य कान में पड़ जाता तो लगता जैसे अपरिचितों की भीड़ में कोई परिचित मिल गया। जहाज के कैप्टीन-बॉय यात्रियों के आँर्डर सर्व करते फिर रहे थे। जब उन लड़कों को ऐसे यात्री से बात करनी पड़ती जिस की भाषा वे नहीं जानते और जो उन की भाषा नहीं समझता तो उस नाना-वैकुण्ठ में टूटी-फूटी हिन्दी अचानक ही उभर आती और इस तरह दोनों पक्षों का काम चल जाता।

मैं समुद्र की तरह की दृष्टि से सोच रहा था कि सिगरेट के धुएँ से परेशान हो कर मैं ने धुएँ की दिशा में देखा। एक गोल महिला मेरे पास ही बेन्च पर बिल्कुल सट कर अपने बैग के ऊपर बैठी थी। अंग्रेज़ी ढंग के कटे बाल, [illegible] और सिगरेट वाले हाथ की [illegible] किये [illegible]। [illegible]। [illegible] ही [illegible] [illegible]

जाता। उस मुद्रा में कमर की दुखन टाँगों तक फैलने लगती तो फिर रेलिंग पर ही झुक जाता। कभी एक पाँव क्षण भर को उठा लेता तो कभी दूसरा। पर मन की बढ़ती हुई घुटन में शरीर का साधन कठिन से कठिनतर होता जा रहा था।

धीरे-धीरे कुछ ऐसा लगा कि मैं खड़ा नहीं रह पाऊँगा। जी मिचलाने लगा था और इच्छा हो रही थी कि अन्दर संचित अम्ल को बाहर निकाल फेंकूँ। पर वमन की भी शक्ति नहीं थी। बस मैं जहाँ खड़ा था, वहीं धीरे से नीचे को सरक गया।

सिगरेट पीने वाली महिला के बक्स और बिस्तर से मेरी पीठ लगी थी और फिर कुछ ऐसी असमर्थता व्यापी कि सिर भी उस बिस्तर पर टिक गया।

उस दशा में बैठा रहना भी मुश्किल लग रहा था। मुड़ी हुई टाँगें दुख चली थीं और हिलकोरों पर उतराता-बिछलाता जहाज़ मुझे कहीं गहरे और गहरे खींच सा ले जाता। बेचैनी और बढ़ जाती। मुँह में पानी भर-भर आता। पर उबकाई न आती। भीतर का अम्ल भीतर ही भीतर ऐसिड प्रक्रिया करता रहा और मैं उसी अनुपात में बेचैन होता गया।

अचानक तभी मैं ने अपने माथे पर स्नेह भरा कोमल स्पर्श अनुभव किया। नन्हा सा हाथ। जैसे झुँझना खेलता हुआ बच्चा झुँझना छोड़ कर मेरे माथे पर फुरहरी करने लगा हो। उस मिचलाहट में भी वह स्पर्श सुखद लगा। और उस सुख ने ही अनुभव कराया कि मेरी वह स्थिति उतनी निरपेक्ष नहीं जितनी कि मैं सोच रहा था। तभी स्त्री-स्वर में प्रश्न हुआ, "पहली बार जहाज़ पर ट्रैविल करता है?"

मुझ से कोई उत्तर न पा कर भी उस ने आगे कहा, "किसी-किसी को बेहद सी-सिकनैस होता है। तुम्हें एवोमिन खा लेना था। पर फिकिर मत करो। हम तुम को गोली देगा। ज़रा सम्हल कर बैठो तो।"

किसी तरह शक्ति संचित कर के मैं ने गरदन घुमा कर उस की ओर

देखा। बढ़े हुए हाथ से गोली ली। उसी को थर्मस प्लास्क की कैप से दो घूँट पानी भी लिया और फिर पूर्ववत् स्थिति में हो गया।

उस महिला ने सिगरेट जला ली थी। उस ने धुएँ का घूँट भरा। फिर उसे बाहर फेंका और पूछा, "स्मोक करता है ? सिगरेट लेगा ?"

मैं ने कहा, "नहीं।"

वह बोली, "ओ. तब तो हमारा धुआँ गड़बड़ करेगा। और हम बोलता है तुम फिकिर मत करो। थोड़ी देर में सब ठीक हो जायेगा। फिर तुम थोड़ा सा भी लेना। खाली पेट मत रहना। हम बोलता है ज्यादा खाना, न खाना गड़बड़ करता है।"

उन टूटे-फूटे वाक्यों का संगीत एवोमिन की गोली से अधिक लाभ कर रहा था। मैं अधिक स्पष्टता से उस का मुख नहीं देख पाया था। पर जो छाया ग्रहण कर पाया था वह सुन्दर थी, शीतल थी, सुखद थी। उस की आयु का अनुमान भी सुन्दरता, शीतलता और सुख की अनुभूतियों से प्रभावित हो तरल सा ही बना रहा और उस तरलता में जो चित्र उभरे उन के आकर्षण में आयु निरपेक्ष हो उठी थी।

चक्करों का आना अब एक हलके नशे में बदल चला था। कुछ ऐसा कि सर्वथा अकाम्य नहीं। कहीं भीतर ही भीतर स्फूर्ति जन्म ले रही थी। पता नहीं एवोमिन का असर था या कि दिक्भ्रान्त मन को एक स्नेहालोक सा मिलता जान पड़ा। अब मुझे लग रहा था कि उस भीड़ में मैं अकेला नहीं। मेरा सिर उस के बिस्तर में सुख-स्थान बना चुका था। मेरे बालों को कोई स्पर्श हलके से छू जाता: कभी उस की उपचार भरी अँगुलियाँ तो कभी पार्श्व। हर स्पर्श सुवास की तरह उस के अंगों से उड़ता सा आता और मुझ में सुख की वासना भर जाता।

मैं उस तन्द्रा में केवल उसी के बारे में सोच रहा था। कभी मन

। मन उस से संवाद करने लगता । नाम नहीं पता । सम्बोधन में बाधा
ड़ती । बस नाम भी रख लिया । मिस एवोमिन, एवोमिन—एक
मामूली सी गोली । पता नहीं कैसे विषमय द्रवों से बनती है । पर इस
क्षण इस नाम में काव्य-रस की प्रतीति हो रही थी ।

इस पर मैं मन ही मन हँसा । इस उम्र में भी ऐसा चिन्तन । पैंतीस
वर्ष की आयु । तरह-तरह के अनुभवों से कटु-मधुर । पर मैं सोच रहा
था किशोर मन की तरह ।

हँसी ने मन की परत को उघाड़ दिया जो होंठों की सन्धि से बाहर
फुदक आयी ।

तभी उस ने मेरी चोर हँसी को पकड़ लिया था, "सोते-सोते ड्रीम
देखता है या जागते-जागते हँसता है ?"

मैं ने उसी तरह लेटे-लेटे आँखें खोल दीं और पुतलियों को सिर की
दिशा में ले जा कर अपने ऊपर किंचित् झुक आये उस मुख को देखने
लगा । तभी उस की आँखें स्नान में तत्पर निर्वसना सुन्दरी सी मेरी
आँखों की झील में कूद पड़ी थीं ।

उस के चेहरे को देख कर एक अजीब वेदना भरी जीवन-आसक्ति
उमड़ी । जैसे सुख-दुख की धूप-छाँह से वह चेहरा बना था । लोक के
मापदण्ड से सुन्दर आकर्षक । भरपूर खिले फूल सा । मगर पारदर्शी
त्वचा के भीतर आह-कराह के अम्बार । आँखों में कुछ ऐसी असामान्यत
जो विक्षिप्तता के ही निकट जान पड़ती । तभी मैं झटके के साथ उठ बैठा

वह मुसकराते हुए पूछ रही थी, "क्यों, क्या हुआ ?"

अब मैं उसे आवक्ष देख पा रहा था । चौड़ी स्ट्राइप की ढी
फ़ॉक । उस के ढीलेपन में वक्ष कुछ अधिक वाचाल सा । नीचा क
गला । जैसे स्निग्ध सीप खुल पड़ी हो । उस से उभरती हुई क
गरदन । जैसे सीप नहीं, हंसप्रिया का पंख हो, और उस में छिपे हंसकु
ने सहसा ग्रीवा उठा कर किसी अहेरी को देख लिया हो । अहेरी

अस

आशंका का अहेरी। अविश्वास का अहेरी। प्रवंचना का अहेरी। उस की हँसती हुई आँखों में भी यह सब कुछ था।

और तभी मैं ने उसे कहते सुना, "तुम दुखी आदमी लगता है। फ़्रस्ट्रेटेड। दुनिया ने तुम से अच्छा सलूक नहीं किया। ऐसा भी होता है। अच्छे आदमी के साथ ऐसा भी होता है।"

मैं ने अनायास ही कह दिया था, "नहीं, ऐसा तो कुछ नहीं मिस एबोमिन।"

"मिस एबोमिन," इस सम्बोधन पर मैं आप ही चौंक उठा था। पर वाणी के निर्झर कभी उद्गम की ओर लौटते ही नहीं। वह सम्बोधन निर्झर सा उछल पड़ा था। असवधानता की सन्धियों से या कि खण्डित व्यक्तित्व के जोड़ों से। और वह हँस रही थी। उच्च स्वर में हँस रही थी। वह कुछ इतना हँसी कि आसपास के सभी लोगों का ध्यान आकृष्ट हो गया। पास ही अपनी माँ की गोद में बैठा हुआ एक नन्हा बच्चा डगमग कदमों से बढ़ता हुआ आया और उस के घुटनों पर अपनी नन्ही हथेलियाँ रख कर खड़े-खड़े खुद भी हँसने लगा। अनायास, अनाहूत हास। या कि संक्रामक हास। बच्चे का निर्दोष मन। सहज ही संक्रमणशील। उन दोनों को हँसते देख कर मुझे यही लगा कि दोनों ही बच्चे हैं। और उन के चारों ओर जो सन्दिग्ध निगाहों की दीवारें खड़ी हो गयी हैं वे सब उन के अपने मन का काला कैनवास है।

पर क्षण भर भी वह स्थिति नहीं रही। आशंकितमना माँ ने आगे बढ़ कर बच्चे को अपनी ओर खींच लिया। कुछ ऐसे जैसे किसी लता से उस के फूल नोच लिए हों। उस के बदन में बच्चे के खिंचते ही कुछ ऐसा तनाव आया जैसा कि प्रत्यंचा के खिंचने से धनुर्दण्ड में आता है। पर प्रत्यंचा के टूटने से जैसे धनुर्दण्ड पूर्व स्थिति में आ कर शिथिल हो जाता है वैसी ही प्रतिक्रिया शिशु के हट जाने पर हुई।

दृष्टियाँ फिर पुंश्चला हो उठीं। कोई तो आधान चाहिए। इधर-

उधर निरर्थक उछल-कूद करने लगीं। मेरी अपनी आँखें आड़ी-तिरछी हो तरह-तरह के कोण बनाती हुईं, त्रिकोण से दश कि शतकोण में प्रवर्द्धित हो कर अपने ही कोण पर आ कर स्थित हो जातीं। मैं ने अनुभव किया कि अब डैक पर हर व्यक्ति अपनी स्थिति से सन्तुष्ट था। हर किसी ने अपनी सीमा को स्वीकार कर लिया था। कुछ खा चुके थे, कुछ खा रहे थे, कुछ का खाना आ रहा था। रेस्तराँ के 'बॉय' यात्रियों के अंगों, शरीरों पर से बेहिचक आ-जा रहे थे। किसी यात्री को इस सब-कुछ से शिकायत न थी। स्वयं रास्ता रोके पड़े थे, इस से शिकायत हो भी कैसे? किसी-किसी की भृकुटी अवश्य तनती, पर फिर अपनेआप ही टूट भी पड़ती। मुझे खुद अपने स्थान पर अधिक स्वतन्त्रता का अनुभव हो रहा था। मैं ने अपनी टाँगों का प्रसार बढ़ा लिया था। इस प्रसार में जो अवांछित सम्पर्क हो जाते वे भी आपत्ति की सीमा में नहीं आते। तभी वह पूछ बैठी थी, "मिस्टर ग्लूकोज़, तुम ने अपना इलाज कहाँ कराया?"

'मिस एवोमिन' का उत्तर था 'मिस्टर ग्लूकोज़'। मैं ने विनोद का विस्तार करते हुए कहा, "मिस एवोमिन, आप ने मुझे सोडा बाइकार्ब कहा होता तो ज्यादा अच्छा होता। ग्लूकोज़ की तो कोई सिफ़त नहीं मुझ में।"

वह बोली, "वह हम सब जानता है। हम थोड़ा डॉक्टरी भी पढ़ेला है। तुम ग्लूकोज़ है। हाँ, तुम ने बोला नहीं कि तुम ने अपना ट्रीटमेण्ट कहाँ कराया?"

"ट्रीटमेण्ट?" मैं चौंका। प्रश्न की संगति बैठा ही नहीं सका। कह दिया, "मुझ पर तो ईश्वर की कृपा ही रही। याद नहीं पड़ता कभी इतना बीमार पड़ा होऊँ कि इलाज करना पड़ा हो।"

वह मुसकराती हुई बोली, "हम से झूठ बोलता है? हम डॉक्टर ही नहीं जानता, बीमार भी रह चुका है। तुम्हारे नॉर्थ में भी रहा है रांची में इलाज कराया है। ठण्डी जगह है। अच्छी जगह है।"

मेरा विस्मय और बढ़ा। उस का अभिप्राय स्पष्ट हो रहा था। चिकित्सा में रांची की प्रसिद्धि तो मानसिक रोगों के लिए ही है। मैं उसी विस्मय में और गौर से उस का मुख देखने लगा था। सुन्दर, आकर्षक पर कहीं असामान्य। सहसा प्रसंग बदलते हुए वह बोली, "अच्छा, अब कुछ खा लो। क्या खायेगा? वेजीटेरियन है?"

मैं ने 'हाँ' में सिर हिलाया।

उस ने सामने से गुजरते हुए बॉय को रोका और बोली, "वेजीटेरियन खाना मांगता है। दो थाली। समझा, दो वेजीटेरियन थाली। और दो डिश मछली। बासी नहीं, ताजा मछली।"

"मछली? दो डिश मछली?" मैं ने चौंक कर कहा, "मगर मैं तो मछली नहीं खाता। मैं तो वेजीटेरियन हूँ।"

उसे अचरज हुआ, "अजीब बात है! तुम मछली भी नहीं खाता? कैसा वेजीटेरियन है। अण्डा खाता है?"

"नहीं," मैं ने निषेध में जीभ के साथ-साथ सिर का भी प्रयोग किया।

इस पर वह कुछ उच्च स्वर में बोली, "अरे; तब तुम बिलकुल बुढा (बुद्ध) है। मछली नहीं, अण्डा नहीं!"

मैं ने कहा, "मगर बुद्ध को मांस से एतराज नहीं था। जिस उदर रोग से उन की मृत्यु हुई उस का मूल कारण 'सूकर मद्दव' था। सूअर का मांस।"

इस पर उस ने बिना तर्क किये बॉय को फिर से समझाया, "सिर्फ़ दो थाली मांगना है। मछली नहीं। एकदम नहीं।"

मैं ने टोकते हुए कहा, "मगर आप अपने लिए तो मँगा लें।"

उस ने लड़के को हाथ से जाने का इशारा करते हुए मुख से कहा, "नहीं, अलग-अलग खाना कैसे खायेगा। देखो इस जहाज पर हमारे अपने मुलुक का कितना लोग है। सौ में नब्बे गोन होगा। फिर भी दोस्ती तुमेरे

से हुआ। तव तो हम वही खाना वोलेगा जो तुम को माँगेगा।"

मैं ने कोई एतराज नहीं किया। चुप ही रहा। वह भी चुप हो गयी। मैं सिर घुमा कर समुद्र की दिशा में देखने लगा था। रेलिंग के डण्डों में जो अन्तराल वना था उस में से समुद्र की नाना रूप झाँकियाँ देखता रहा। मेरी यह व्यस्तता तभी टूटी जव खाना आ गया था और मिस एवोमिन ने मुझे पुकारा, "मिस्टर ग्लूकोज़।"

उसे खाना रुच रहा था, यह उस के खाने के उत्साह से जाहिर था। वोली भी, "क्यों कैसा लगा खाना? कुक गोन होगा। मस्ट वी ए गोन। गोन कुक अवखा दुनिया में मशहूर हैं।"

वह वोलती गयी, "मैं ने वड़ा-वड़ा नैशनलिटी का लोग देखा है। मगर गोन लोगों का मुक़ावला नहीं। गोआ जैसी जगह किसी मुलुक में नहीं। गोन लोग अच्छा खाना इसलिए वनाता है, क्योंकि अच्छा खाना जानता भी हैं। तुम पहली वार जाता हैं न! जा कर देखेगा गोन लोग किस तरह जीना जानता हैं। अच्छा कपड़ा, अच्छी शराव। हर भला आदमी खाने के साथ विअर पीता है। पानी नहीं। जानता है कुछ लोग पानी को क्या वोलता है: डक विअर। पानी में डक लोग रहता है न, उन का जिन्दगी पानी से चलता है न? वही।"

मैं ने उस से कहा, "मगर आप तो खाना खा ही नहीं रहीं।"

वोली, "हम खाने को एन्जॉय करता। तुम देखता नहीं दुनिया का तीन-चौथाई झंझट पेट के लिए है। सेक्स वन-फ़ोर्थ है। हम सच वोलता हैं। जव खाने का प्रोवलम नहीं रह जाता तव सेक्स हण्ड्रेड पर्सेण्ट हो जाता है। इसलिए हम खाना एन्जॉय करना माँगता हैं।"

मैं ने कोई तर्क नहीं किया। अनुमोदन में हलके से मुसकरा भर दिया। वह एक ग्रास खा कर फिर कहने लगी थी, "मगर अच्छे खाने के साथ,

अच्छी कम्पनी माँगता है। हमेरा लक देखो। क्राइस्ट ने कम्पनी भी भेज दिया—मिस्टर ग्लूकोज, स्वीट मिस्टर ग्लूकोज! फिर हम क्यों नहीं एन्जॉय करेगा?"

तभी समीप के एक अधेड़ उम्र यात्री को उबकाई आयी। रेलिंग तक पहुँचने के पहले ही वह उबकाई कर बैठा। फलतः कई लोग और उन का सामान उस गन्दगी से भर उठा। कोहराम मच उठा। भाषा तो मैं समझ नहीं पा रहा था, मगर स्पष्ट था कि आरोप-प्रत्यारोप शुरू हो गये। कुछ लोग उबकाई करने वाले यात्री के भी पक्ष में थे। पता नहीं उन के अपने लोग थे या केवल हिमायती। एक लड़की जिस की उम्र अट्ठारह-बीस के करीब होगी, अपनी फ्रॉक खराब हो जाने की वजह से बेहद नाराज थी। उस ने गुस्से में भर कर कई बार उस पर थूका, जो हंगामा करने वाले दूसरे यात्रियों पर ही पड़ा। पर उस आवेश में किसी ने उस ओर ध्यान नहीं दिया।

मगर वह उस काण्ड को भी एन्जॉय कर रही थी, जब कि मेरा तो रहा-सहा खाना भी हराम हो गया था। बोली, "इस लड़की का यह बेस्ट फ्रॉक होगा। इस के बॉय फ्रेण्ड का प्रेजेण्ट भी हो सकता है। हम देखता था यह लड़की इधर से उधर बहुत हरकत करता था। उस कोने में जो लड़का बैठा है, वह जो माउथ ऑरगन बजाता है, बार-बार उस के पास जाता था और उस के कन्धे पर झुक कर बात करता था। अब देखो वह गुस्सा करता है और वह लड़का हँसता है।"

मैं ने ईश्वर को धन्यवाद दिया कि उस ने मुझे किसी ऐसी स्थिति से पूर्व ही बचा लिया। मेरा मनोभाव जाने बिना वह कहती गयी, "हम बोलता है गलती इस पैसेन्जर का ही है। सुबह से खाता जा रहा था। बराबर खाता जाता था। हम ने बोला नहीं कि न खाना खराब है। बहोत खाना भी खराब है।"

खाना खतम हो गया था। डैक पर फिर से शान्ति छा गयी थी।

लड़की बाथरूम में जा कर फ्रॉक बदल आयी थी। पहली वाली फ्रॉक को पानी से निकाल भी लिया था। और फिर उस फ्रॉक को माउथ ऑरगन वाले लड़के को दे आयी थी। तभी उस लड़के ने शरारत भरी मुसकान के साथ उस से कुछ कहा भी था। वह बात उसे कहीं गुदगुदा गयी थी। इसी से जब उस का मुँह मेरी तरफ़ को हुआ तो मुझे उस पर एक चमक दिखाई पड़ी। उस चमक में वह लड़की वासनामयी लगने लगी थी। कुछ ही क्षण पूर्व गुस्से से चिल्लाती हुई वह कुछ और ही लग रही थी। और उस से पूर्व तो एक व्यक्तित्वहीन साधारण लड़की, जो आज पढ़ती है और कल को किसी गिरजे में जा कर शादी कर लेगी। सामान्य रंग-रूप। किन्तु तरुणाई की शान पर चढ़ कर मामूली रंग-रूप भी तीखा हो उठता है। और कहीं उस तीखेपन को वासना की शह मिल जाये तो उस में चुम्बकत्व भी पैदा हो जाता है। धूपछाँही व्यक्तित्व। प्रतिसारित भी करे और आत्मसात् भी।

मैं लड़की को देख ही रहा था कि मिस एवोमिन बोल उठी, "हम बोलता है उस लड़की को पसन्द करता है तो उस लड़के से फ्रॉक ले कर सुखाने लगो।"

इतना कह कर वह हँसी और उस हँसी के सम पर जो कम्पन उस के देह में उभरा वह कम नशीला न था। मैं उस से दस वर्ष पूर्व मिला होता तो कह ही बैठता, "वह लड़की तुम्हारे आगे पानी भरती है। यौवन पाया है, पर रूप नहीं।"

मगर मैं उलटे झेंप उठा। जैसे चोरी करते पकड़ लिया गया होऊँ। वह कह रही थी, "मगर वह लड़का ऐसे फ्रॉक नहीं देगा। तुम डुएल के लिए तैयार है ?"

अब मैं अपनी झेंप मिटाने के लिए हँस पड़ा था और अचानक कह भी उठा था, "यू आर मच मोर, ब्यूटिफुल !"

इस पर वह हँसी। जैसे किसी संगमरमरी ढलान पर म्युज़िकल

बोतल लुढ़क पड़ी हों। या पहाड़ी झरने की तरंगें तल के पत्थरों से लिपट कर गा उठी हों। या वैसा कुछ भी न हो, केवल आत्मविश्वास भरा हास जिस का आशय यही कि हाँ सुन्दर तो हूँ पर उस से क्या ?

और जब उस की खनकती हुई हँसी थम पर आयी तो बोली, "तुम दीवान हो। हम ने सोचा था जेण्टिलमैन है। मगर तुम नॉटी निकला।"

सूरज हमारी तरफ़ झुक आया था। हमारे आधे अंग उस की किरणों से उलस चले थे। पर हवा चल रही थी, इस से किरणों की चुभन सह्य थी। वह पाँव पर पाँव रख कर बैठी थी। मैं ने बिना किसी संकोच के उस के ट्रंक-बिस्तर से पीठ लगा ली थी और रेलिंग की साइड में अन्य यात्रियों के सामान के बीच में थोड़ी सी जगह पा कर अपनी टाँगें भी फैला ली थी। और इसी तरह जाने कब झपकी आ गयी।

जब उठा तो कितना ही समय बीत चुका था। किसी ने उधर का परदा भी गिरा दिया था। आँखें खुल जाने पर भी पलकों पर नींद का बोझ बना था और मन द्विधा हो कर कभी उठ बैठने को करता तो कभी एक और नींद ले लेने को। अपने उस सुख-शयन में मैं उसे एकदम भूल चुका था। जब अचानक ध्यान आया तो झटके के साथ उठ बैठा। वह उसी तरह टाँग पर टाँग रखे कुछ सोचती सी बैठी थी। एक पाँव का जूता नीचे पड़ा था, दूसरे का पंजे पर लटका हुआ था। गोरे पतले सुघड़ पाँव। मैं ने माफ़ी माँगते हुए कहा, "मैं ही आराम करता रहा। आप तो लगता है अपनी जगह से हिली तक नहीं।"

उस ने कुछ नहीं कहा। मैं ने ही बात बढ़ायी, "मैं बेहद शर्मिन्दा हूँ। मुझे आप के आराम का ख़याल रखना चाहिए था।"

वह बोली, "तुम काहे परेशान होता है। हमेरे को तो इस तरह की ड्यूटी देने का आदत है। अस्पताल में रात-रात भर मरीज के सिरहाने

बैठ कर बिता देता है। एअर होस्टेस भी था। हमेरा काम ही दूसरों को आराम देना रहा। हम बोलता है हम ने अपने इस जिस्म से क्या नहीं किया। दूसरों की सेवा ही करता रहा। तुम सेवा बोलेगा न ? हम ने सब तरह की सेवा किया है।"

कहते-कहते उस की आँखों में कुछ कटुता सी छा गयी थी और उस के पतले सुन्दर होंठ कुंचित हो कर मन की किसी कचोट पर घृणा की दाँतीदार हँसिया बन चुके थे। स्पष्ट था कि सेवा में सभी कुछ वांछित न था। उस में स्वयं को देना ही देना था। इच्छा से भी, अनिच्छा से भी।

फिर भी मैं ने कहा, "आप थोड़ा आराम कर लें तो कैसा ? मैं सोचता हूँ बिस्तर को नीचे मेरी जगह रख लें। बक्स बिस्तर के बराबर आ जायेगा। लम्बी जगह निकल आयेगी। आप आराम से लेट सकेंगी।"

"और तुम ?" मेरी चिन्तापर वह प्रसन्न हो उठी थी।

मैं ने कहा, "मैं भी यहीं कहीं समा जाऊँगा।"

वह बोली, "यहीं कहीं नहीं। जैसे हम बोलेगा वैसा करेगा। तुम हमारे सिरहाने बैठेगा। हम इतनी जगह में मैनेज कर लेगा।"

और वैसी ही व्यवस्था कर ली गयी। मैं एक सिरे पर बैठ गया और शेष भाग में उस ने अपने को सिकोड़ कर समा लिया। वैनिटी बैग ने सिरहाने का स्थान ले लिया और एक भुजा के योग से वह सिरहाना यथेष्ट ऊँचा भी हो गया।

अब मैं उस का चेहरा अधिक इतमीनान से देख पा रहा था। आस-पास की प्रहरी आँखों का संकोच भी मिट चुका था। पतली स्निग्ध त्वचा में छिपे वे ही समस्त मानवांग जो हर किसी के पास हैं पर हर किसी के पास वह गाथा तो नहीं।

उस की आँखों के नीचे आवर्त बने थे। दुख के गर्त से। पलकों में महीन सलवटें थीं, कहीं ऊपर को। सीवन सी सलवटें। जैसे वहाँ कोई

विवर था, जिसे हठात् सी कर जोड़ दिया गया हो। बरौनियाँ लम्बी और अपने कालेपन में भी अजीब सी नीलिमा लिये। जाने कितने आँसू उन बरौनियों से बिंध-बिंध कर गिरे हैं। पर आँसू ही क्यों ? मुसकान ने भी तो उन बरौनियों की अटारी पर चढ कर वैजयन्ती फहरायी होगी। कल्पना। निरी कल्पना। पर मन उस कल्पना से विमुख नहीं हो रहा था। जैसे कोई अदृष्ट लिपि थी वहाँ जिसे मैं ही पढ़ पा रहा था। मैं ही पढ सकता था। इसी से पुरातत्त्ववेत्ता के सदृश खण्डहरों की लिपि से भविष्य के बोध के लिए अतीत का इतिहास निर्माण कर रहा था।

मैं देखता रहा स्कन्धव्यापी लहरीले केश। घन सघन। गोरी कलाई जो सिर के नीचे से बाहर झांक रही थी, उन्ही बालों की किसी लट से उलझी थी। और कुछ मनचली लटें हवा के इशारे पर मेरे पार्श्व को छू ही जाती थी। रेशमी स्पर्श पर त्वचा को बोध नहीं। सूती पतलून उस स्पर्श से त्वचा को इन्सूलेट किये रही। मगर मन का इन्सुलेशन तो सिर्फ योगी जानते हैं। मैं योगी न था और बस वह रेशमी स्पर्श मन में सिहरन जगा कर उस की सुन्दरता और करुणा के प्रति कभी मुझे मोह से भर देता तो कभी पीड़ा से।

पास ही कहीं कोई ट्रांजिस्टर रेडियो सेट पर हिन्दी गीत सुन रहा था। इधर उस ने वॉल्यूम बढा दी थी जिस से गीतों के बोल उभर कर सुनाई पड़ने लगे थे। आकाशवाणी का विविध भारती कार्यक्रम। सुन्दर मधुर गाने। पास लेटी हुई वह। मैं उसे देखता और संगीत के झरने में खिली लिली के प्रतीक की कल्पना करता।

मेरी इच्छा होती कि उस की नंगी भुजा की त्वचा को छू लूँ। उस के घने बिखरे केशों में अँगुलियाँ उलझा दूँ। उस की साँसों में अपनी साँसें गूँथ दूँ। और यह सोचते हुए भी, चाहते हुए भी, मेरे मन का निर्णय

बैठ कर बिता देता हूँ। एअर होस्टेस भी था। हमेरा काम ही दूसरों को आराम देना रहा। हम बोलता है हम ने अपने इस जिस्म से क्या नहीं किया। दूसरों की सेवा ही करता रहा। तुम सेवा बोलेगा न ? हम ने सब तरह की सेवा किया है।"

कहते-कहते उस की आँखों में कुछ कटुता सी छा गयी थी और उस के पतले सुन्दर होंठ कुंचित हो कर मन की किसी कचोट पर घृणा की दाँतीदार हँसिया बन चुके थे। स्पष्ट था कि सेवा में सभी कुछ वांछित न था। उस में स्वयं को देना ही देना था। इच्छा से भी, अनिच्छा से भी।

फिर भी मैं ने कहा, "आप थोड़ा आराम कर लें तो कैसा? मैं सोचता हूँ बिस्तर को नीचे मेरी जगह रख लें। बक्स बिस्तर के बराबर आ जायेगा। लम्बी जगह निकल आयेगी। आप आराम से लेट सकेंगी।"

"और तुम ?" मेरी चिन्तापर वह प्रसन्न हो उठी थी।

मैं ने कहा, "मैं भी यहीं कहीं समा जाऊँगा।"

वह बोली, "यहीं कहीं नहीं। जैसे हम बोलेगा वैसा करेगा। तुम हमारे सिरहाने बैठेगा। हम इतनी जगह में मैनेज कर लेगा।"

और वैसी ही व्यवस्था कर ली गयी। मैं एक सिरे पर बैठ गया और शेष भाग में उस ने अपने को सिकोड़ कर समा लिया। वैनिटी बैग ने सिरहाने का स्थान ले लिया और एक भुजा के योग से वह सिरहाना यथेष्ट ऊँचा भी हो गया।

अब मैं उस का चेहरा अधिक इतमीनान से देख पा रहा था। आस-पास की प्रहरी आँखों का संकोच भी मिट चुका था। पतली स्निग्ध त्वचा में छिपे वे ही समस्त मानवांग जो हर किसी के पास हैं पर हर किसी के पास वह गाया तो नहीं।

उस की आँखों के नीचे आवर्त बने थे। दुख के गर्त से। पलकों में महीन सलवटें थीं, कहीं ऊपर को। सीवन सी सलवटें। जैसे वहाँ कोई

विवर था, जिसे हठात् सी कर जोड़ दिया गया हो। बरौनियाँ लम्बी और अपने कालेपन में भी अजीब सी नीलिमा लिये। जाने कितने आँसू उन बरौनियों से बिंध-बिंध कर गिरे हैं। पर आँसू ही क्यों? मुसकान ने भी तो उन बरौनियों की अटारी पर चढ़ कर वैजयन्ती फहरायी होगी। कल्पना। निरी कल्पना। पर मन उस कल्पना से विमुख नहीं हो रहा था। जैसे कोई अदृष्ट लिपि थी वहाँ जिसे मैं ही पढ पा रहा था। मैं ही पढ सकता था। इसी से पुरातत्ववेत्ता के सदृश खण्डहरों की लिपि से भविष्य के बोध के लिए अतीत का इतिहास निर्माण कर रहा था।

मैं देखता रहा स्कन्धव्यापी लहरीले केश। घन सघन। गोरी कलाई जो सिर के नीचे से बाहर झाँक रही थी, उन्हीं बालों की किसी लट से उलझी थी। और कुछ मनचली लटें हवा के इशारे पर मेरे पार्श्व को छू ही जाती थीं। रेशमी स्पर्श पर त्वचा को बोध नहीं। सूती पतलून उस स्पर्श से त्वचा को इन्सुलेट किये रही। मगर मन का इन्सुलेशन तो सिर्फ योगी जानते हैं। मैं योगी न था और बस वह रेशमी स्पर्श मन में सिहरन जगा कर उस की सुन्दरता और करुणा के प्रति कभी मुझे मोह से भर देता तो कभी पीड़ा से।

पास ही कहीं कोई ट्रांजिस्टर रेडियो सेट पर हिन्दी गीत सुन रहा था। इधर उस ने वॉल्यूम बढा दी थी जिस से गीतों के बोल उभर कर सुनाई पड़ने लगे थे। आकाशवाणी का विविध भारती कार्यक्रम। सुन्दर मधुर गाने। पास लेटी हुई वह। मैं उसे देखता और संगीत के झरने में खिली लिली के प्रतीक की कल्पना करता।

मेरी इच्छा होती कि उस की नंगी भुजा की त्वचा को छू लूँ। उस के घने बिखरे केशों में अँगुलियाँ उलझा लूँ। उस की साँसों में अपनी साँसें गूँथ दूँ। और यह सोचते हुए भी, चाहते हुए भी, मेरे मन का निर्णय

वैठ कर विता देता है। एअर होस्टेस भी था। हमेरा काम ही दूसरों को आराम देना रहा। हम वोलता है हम ने अपने इस जिस्म से क्या नहीं किया। दूसरों की सेवा ही करता रहा। तुम सेवा वोलेगा न? हम ने सव तरह की सेवा किया है।"

कहते-कहते उस की आँखों में कुछ कटुता सी छा गयी थी और उस के पतले सुन्दर होंठ कुंचित हो कर मन की किसी कचोट पर घृणा की दाँतीदार हँसिया वन चुके थे। स्पष्ट था कि सेवा में सभी कुछ वांछित न था। उस में स्वयं को देना ही देना था। इच्छा से भी, अनिच्छा से भी।

फिर भी मैं ने कहा, "आप थोड़ा आराम कर लें तो कैसा? मैं सोचता हूँ विस्तर को नीचे मेरी जगह रख लें। वक्स विस्तर के वरावर आ जायेगा। लम्वी जगह निकल आयेगी। आप आराम से लेट सकेंगी।"

"और तुम?" मेरी चिन्तापर वह प्रसन्न हो उठी थी।

मैं ने कहा, "मैं भी यहीं कहीं समा जाऊँगा।"

वह वोली, "यहीं कहीं नहीं। जैसे हम वोलेगा वैसा करेगा। तुम हमारे सिरहाने वैठेगा। हम इतनी जगह में मैनेज कर लेगा।"

और वैसी ही व्यवस्था कर ली गयी। मैं एक सिरे पर वैठ गया और शेष भाग में उस ने अपने को सिकोड़ कर समा लिया। वैनिटी वैग ने सिरहाने का स्थान ले लिया और एक भुजा के योग से वह सिरहाना यथेष्ट ऊँचा भी हो गया।

अव मैं उस का चेहरा अधिक इतमीनान से देख पा रहा था। आस-पास की प्रहरी आँखों का संकोच भी मिट चुका था। पतली स्निग्ध त्वचा में छिपे वे ही समस्त मानवांग जो हर किसी के पास हैं पर हर किसी के पास वह गाथा तो नहीं।

उस की आँखों के नीचे आवर्त वने थे। दुख के गर्त से। पलकों में महीन सलवटें थीं, कहीं ऊपर को। सीवन सी सलवटें। जैसे वहाँ कोई

विवर था, जिसे हठात् सी कर जोड़ दिया गया हो। वरौनियाँ लम्बी और अपने कालेपन में भी अजीब सी नीलिमा लिये। जाने कितने आँसू उन वरौनियों से बिंध-बिंध कर गिरे हैं। पर आंसू ही क्यों? मुसकान ने भी तो उन वरौनियों की अटारी पर चढ़ कर वैजयन्ती फहरायी होगी। कल्पना। निरी कल्पना। पर मन उस कल्पना से विमुख नहीं हो रहा था। जैसे कोई अदृष्ट लिपि थी वहाँ जिसे मैं ही पढ़ पा रहा था। मैं ही पढ़ सकता था। इसी से पुरातत्ववेत्ता के सदृश खण्डहरों की लिपि से भविष्य के बोध के लिए अतीत का इतिहास निर्माण कर रहा था।

मैं देखता रहा स्कन्धव्यापी लहरीले केश। घन सघन। गोरी कलाई जो सिर के नीचे से बाहर झांक रही थी, उन्ही बालों की किसी लट से उलझी थी। और कुछ मनचली लटें हवा के इशारे पर मेरे पार्श्व को छू ही जाती थी। रेशमी स्पर्श पर त्वचा को बोध नही। सूती पतलून उस स्पर्श से त्वचा को इन्सूलेट किये रही। मगर मन का इन्सुलेशन तो सिर्फ़ योगी जानते हैं। मैं योगी न था और बस वह रेशमी स्पर्श मन में सिहरन जगा कर उस की सुन्दरता और करुणा के प्रति कभी मुझे मोह से भर देता तो कभी पीड़ा से।

पास ही कहीं कोई ट्रांजिस्टर रेडियो सेट पर हिन्दी गीत सुन रहा था। इधर उस ने वॉल्यूम बढ़ा दी थी जिस से गीतों के बोल उभर कर सुनाई पड़ने लगे थे। आकाशवाणी का विविध भारती कार्यक्रम। सुन्दर मधुर गाने। पास लेटी हुई वह। मैं उसे देखता और संगीत के झरने में खिली लिली के प्रतीक की कल्पना करता।

मेरी इच्छा होती कि उस की नंगी भुजा की त्वचा को छू लूँ। उस के घने बिखरे केशों में अँगुलियाँ उलझा लूँ। उस की साँसों में अपनी साँसें गूँथ दूँ। और यह सोचते हुए भी, चाहते हुए भी, मेरे मन का निर्णय

यही था कि यह मांस की आसक्ति नहीं। यह किसी गहरे छिपे सम्बन्ध को जाग्रत् करने की आकुलता है। जैसे 'सीसेम' का जादू उस स्पर्श में छिपा हो। स्पर्श मात्र से समस्त रहस्य उद्घाटित हो जायेंगे और देहातीत हो कर दो आत्माएँ एक दूसरे के अस्तित्व के दर्पण में प्रतिबिम्बित हो उठेंगी।

अपने इस चिन्तन पर मैं बार-बार चौंका। यह मैं अपने चारों ओर आखिर कौन सा इन्द्रजाल रच रहा हूँ? स्वयं अपने मन को भूलभुलैया में ले जा रहा हूँ। दैहिक वासना के अतिरिक्त इस कामना का मूल और हो भी क्या सकता है? मेरी बुद्धि ने बार-बार यही उद्घोष किया, पर मन नहीं माना। वह अपना भाष्य अलग ही करता रहा।

बुद्धि की आयु होती है। वह अपरिपक्व से परिपक्व होती है। अनुभवों की आँच में तप-तप कर परिपक्व होती है। पर मन की कोई आयु नहीं होती। वह तो अनंग का वंशज है और कामरूप भी। फिर देहहीन, अंगहीन को आयु की माया कैसे व्यापे और कामरूपता का मन्त्र कैसे वर्षों में गिनी जाने वाली बँधी आयु को स्वीकार करे? बँधी भिक्षा की तरह बँधी आयु। जैसे कामरूप रावण ने सीता की बँधी भिक्षा अस्वीकार कर दी थी।

पर यह भाव भी क्षण भर ही रहा। मेरे अपने भीतर से यह बोध उगता ही रहा कि यह स्थिति मात्र संयोग का परिणाम नहीं, उस से कहीं कुछ अधिक है।

सोचते-सोचते मैं उलझ चला था। उलझ कर थक चला था। फिर भी मैं उस की त्वचा को अपनी त्वचा के स्पर्श से संवेदित नहीं कर पाया था। उस के बालों के गुच्छों को मैं नाइलॅनडॉल के कृत्रिम केशों की तरह अपने मन की बाल-लीला का विषय बना ही न सका था। विविध भारती कार्य-क्रम कभी का समाप्त हो चुका था। लोग शाम की चाय मँगाने लगे थे। वह सोयी ही थी। जिस करवट लेटी थी, उसी करवट लेटी रही।

मैं मन के साथ बह रहा था और मन एक-दो नहीं, दसों दिशाओं में दौड़ रहा था और वह भी युगपत्—एक साथ। वह मन की ही शक्ति है। बुद्धि उस के शतरंजी खानों में उतरी नहीं कि मात खायी। और मैं ने किंचित् स्फुट स्वर में अपनेआप को जैसे सुनाया—धन्य रे लीलानन्द!

"मुझ से कुछ बोला तुम?" वह लेटे-लेटे पूछ बैठी थी। आँखें मुद्रित ही थीं। मुझे अचरज हुआ कि वह गहरी नींद से चेतना के स्तर पर कैसे उतर आयी एकदम। वह स्तर भी ऐसा कि मेरे मन के प्रश्न को ही पढ़ लिया। उतने धीमे बोल भी उस के कानों में आ कर कोलाहल भर गये।

मैं ने कहा, "लगता है तुम्हें घड़ी भर को भी नींद नहीं आयी। बस आँखें बन्द कर के ही पड़ी रहो।"

वह बोली, "ऐसा बात नहीं। हमेरे को खूब नींद आयी। गॉड नोज, जाने कब से इतना सुख से नहीं सोया।"

और वह उठ बैठी थी। स्फूर्ति और उल्लास ने ही जैसे उत्थान किया। उस क्षण वह अत्यन्त आकर्षक लगी। अपनी वय से कम भी—कहीं कम। जैसे तीन दशकों में से एक दशक कहीं तिरोहित हो गया हो। तब उसे देख कर मुझे एक पंजाबी कहावत याद आयी जिस का आशय है कि एक तो वह वैसे ही रूपवती ऊपर से सो कर उठी। रूप का जागरण। जैसे जागरण की थकान रूप को भी ग्रसती है। निद्रा उस की पूर्ति करती है। और फिर जब रूप का जागरण होता है तो उषा के उदय के सदृश संगीत की मधुर स्फूर्ति से भरा। शरद् ऋतु के सफ़ेद बादल सा हलका। समुद्र-तल पर बिखरी हुई चाँदनी सा।

बातों का सिलसिला बैठाने के लिए मैं ने कहा था, "आप ने सिगरेट नहीं पी? आप की अँगुलियों से तो लगता है कि आप काफ़ी पीती हैं।"

वह सहज भाव से बोली, "ठीक बोला तुम,ने मिस्टर ग्लूकोज़। हमेरे को तो सिगरेट का ध्यान तक नहीं आया। जरूरत भी क्या। हम तभी सिगरेट ज्यादा पीता है जब अकेलापन घेर लेता है। दिल को जाने कैसा-

कैसा होता है और अकल परेशान हो उठता है मगर आज [illegible] जरूरत नहीं महसूस हुआ। बस इसी से नहीं पिया। पर चाय जरूर पीयेगा!"

साथ ही अपने अन्तिम वाक्य पर वह मुसकरा भी उठी थी।

चाय आयी तो पहला सिप लेते ही बोली, "बड़ा रद्दी चाय है। चाय बनाना भी आर्ट है। सिर्फ अच्छी लीफ़ काफी नहीं। बरतन भी साफ होना माँगता है। पानी को ठीक उबालना माँगता है। कम-ज्यादा माफिक नहीं बैठेगा। फिर दूध भी खरा माँगता है। हम बोलता है चाय खूबसूरत और कॉनशस लड़की की तरह है। पूरी तरह कोर्टशिप माँगता है। तब...."

उस ने वाक्य अधूरा छोड़ दिया और उस उपमा का रस लेती हुई हँस पड़ी। मैं भी शिष्टाचार के आग्रह से हँस पड़ा। पर वह खोखली हँसी उस से छिपी नहीं। बोली, "तुम हमेरे लिए हँसता है। तुम ने कोर्टशिप किया कभी?"

मैं ने कहा, "मैं तो बैचलर हूँ।"

"तब तो बहुत स्कोप है," कहती हुई वह फिर हँस पड़ी। मुझे लगा जैसे वह हँसने के मूड में है और बस इसी से बात-बेबात हँसते रहना चाहती है।

तभी जहाज़ के किसी कारिन्दे ने आ कर साइड का परदा ऊँचा करना शुरू कर दिया। सूरज तिरछा हो कर पश्चिम में जा चुका था। मैं उठ कर रेलिंग के सहारे खड़ा हो गया था। दृष्टि इधर-उधर जल-थल-नभ की दिशाओं में निर्बन्ध उछल-कूद करती रही। वही समुद्र। वही या कि वैसा ही जल-संघात। पर रमणीय। नित्य नवीनता के जादू से भरी रमणीयता। जल पर आसमानी छायाओं का विलास। समुद्र की सतह तरह-तरह के रंगों का चित्रपट बन गयी थी। कहीं हरा रंग, कहीं ताँबई छटा। कहीं गहरी श्यामता तो कहीं रुचिर नील कान्ति। और फिर एक

झीनी बदली के सूरज के मुख पर से हटते ही जो रजत-वर्षा हुई वह जल की श्यामता में मिल कर चांद-सलेटी सुषमा से चित्रपट को भर गयी। मुझे लगा जैसे सागर के मन के रहस्यों को जानने के लिए नभ अपनी बहुरूपिता में छिप कर सूरज की किरण-रज्जुओं के सहारे उस के जल-पट को उघाड़-उघाड़ कर देख रहा है और वहां अपनी ही छवि पा कर चमत्कृत होता हुआ एकमेव होता जा रहा है। उसी लीला-विलास में श्यामता घिरती गयी। दृष्टि की व्यापकता प्रतिबन्धित होती चली गयी।

तभी मैं ने सुना, पुरुष स्वर ने पुकारा था, "हलो रुथ।"

मिस एबोमिन का साश्चर्य उत्तर था, "हलो मिनेजिस।"

और वे दोनों पोर्चुगीज में बातें करने लगे थे। मैं ने उसी तरह खड़े-खड़े उन का सम्भाषण सुना। मिनेजिस कह रहा था, "तुम यहाँ मिलोगी, कल्पना भी नहीं की थी। सच पूछो तो यह भी नहीं सोचा था कि तुम फिर कभी मिलोगी भी।"

रुथ बोली थी, "तुम मेरी जिन्दगी के बारे में जानते ही हो। कुछ भी तो उस में नियत या प्रत्याशित नहीं। फिर भी सब कुछ घटता रहा है, अप्रत्याशित ही सही।"

"मगर तुम डैक पर क्यों सफर कर रही हो?" उस ने पूछा।

उस का उत्तर था, "विधाता ने तो केवल मानव समाज की ही सृष्टि की थी। किन्तु मनुष्य ने उस समाज में स्तर पैदा कर दिये। वह अपने बनाने वाले से भी आगे बढ़ गया। और तब मनुष्य गरीब और अमीर कहलाने लगा। छोटा-बड़ा हो गया। ऊँच-नीच में बँध गया। इसी लिए एक गन्तव्य होने पर भी यात्रा के साधन एक नहीं। पैदल से ले कर हवाई जहाज तक। एक साधन होने पर भी अन्तर है : लोअर डैक, अपर डैक, और तुम्हारा वर्ग—केबिन।"

मिनेजिस को वह उत्तर बींध गया। बोला, "मगर मुझ पर ...
...याय को आरोपित नहीं कर सकतीं तुम ? तुम खुद जानती हो कि मैं
...स स्तर का हूँ।"

रुथ ने अचानक घुमाव देते हुए कहा था, "ऐसे कब तक बातें
करोगे ?"

मिनेजिस ने क्षमा सी माँगते हुए कहा था, "ओ: मैं तो भूल ही
गया था कि तुम्हारा हाथ अभी भी मैं अपने खुरदरे हाथ से पीड़ित किये
जा रहा हूँ। ज़्यादा तकलीफ़ पहुँचा दी शायद ?"

"नहीं," वह कह रही थी, "इधर तो मेरा ध्यान भी नहीं गया। मैं
तो इसलिए कह रही थी कि हमारे इस तरह खड़े हो कर बात करने से
दूसरों को असुविधा हो सकती है।"

"तुम्हारे इस उत्तर से मुझे खुशी हुई," मिनेजिस प्रसन्न भाव से बोला,
"पर तुम इतनी दुबली क्यों हो गयीं ?"

वह हँस कर बोली, "यह नयी आदत तुम ने कहाँ से सीख ली ? ...
...रतों की चापलूसी में निपुण हो गये। जानते हो स्लिमिंग का फ़ैशन ...
...। और मोटी औरत भी पुरुष से सुन कर अपनेआप को वैसे ही स्लि...
...मान लेती है जैसे हर असुन्दर औरत पुरुष के कहने पर स्वयं को सुन...
मानती आयी है।"

रुथ ने कहा, "अच्छा बैठो न। डैक नापसन्द न हो तो बक्स प...
बैठ जाओ।"

मिनेजिस ने कहा, "तुम ने माफ़ नहीं किया मुझे ?"

वह बोली, "तुम्हें कभी माफ़ कर पाऊँगी या नहीं, कह नहीं स...
तुम्हें माफ़ करने के लिए मुझे बहुत ही उदार, बहुत ही महान्...
होगा। मैं उतनी उदार-महान् इस ज़िन्दगी में तो हो न पाऊँ...
होती तो दूसरी ज़िन्दगी के भरोसे कह देती कि तुम्हें माफ़ क...
ईसाई हूँ। यीशू की करुणा के गीत गाने पर भी स्वयं की ...

आश्वासन तुम्हें नही दे सकती ।"

मेरे पीछे कुछ हरकत हुई थी और मुझे लगा कि दोनों बक्स पर बैठ गये। उन के इतने ही वार्तालाप से स्पष्ट हो चला था कि दोनों का अतीत एक सम्मिलित कहानी है। ऐसी कहानी जिस में भावनाओं का साधारणीकरण और संघर्ष दोनों हुए हैं। मैं ने मिनेजिस को कहते सुना, "तुम *बदली नहीं ?"*

वह मनोहारी स्वर में बोली थी, "फिर तारीफ करने लगे। खैर यह बताओ कि तुम बात मूरत की करते हो या सौरत की।"

"मिनीना, दोनों की।" मिनेजिस स्त्रियों से सम्भाषण में अपटु नहीं था, यह उस की शैली से स्पष्ट था। मिनीना, अर्थात् मिस। यह सम्बोधन साभिप्राय था और उस ने विशेष बल के साथ कहा था। उस ने आगे जोड़ा था, "तुम परदे की ओट हो कर बोलो तो मैं कहूँगा तुम्हारी आयु में एक दिन भी नही जुडा। वही आवाज, वही संगीत भरी हँसी, वही जादू भरी मुसकान जो तब थी जब........"

रुथ बीच में ही बोल उठी थी, परदे की ओट से तुम हँसी के संगीत की तारीफ तो कर सकते हो, मगर मेरे प्यारे यह तो बताओ कि मुसकान का जादू कैसे देख पाओगे ?"

मिनेजिस ने अमन्द उन्माद के साथ कहा, "भूल है, यह मानता हूँ। झूठ है यह नही मानूँगा। असल में यह भाषा की गलती है। भावना की नही।"

रुथ बोली, "तुम भी नहीं बदले। कम से कम स्वभाव में तो नही बदले। वैसे ही अपनी बात पर अड़ने वाले।"

पर कहते-कहते उस का स्वर शिथिल पड़ गया था। उसे जैसे याद आया हो कि वह अपनी बात से फिर भी गया था। सत्य कुछ भी हो, मगर स्वर की उस गिरावट ने मेरे मन पर एकमात्र यही प्रभाव छोड़ा।

मिनेजिस ने उस स्वर की पीडा से अप्रभावित ही रह कर कहा था

"तुम्हारे प्रति मेरी भावना भी कभी नहीं बदल सकती ।"

"इसी लिए शायद तुम ने कायरता दिखायी थी ?" रुथ के स्वर में तिक्तता थी ।

मिनेजिस की ओर से तत्काल कोई उत्तर नहीं आया था । जैसे उस वार की चोट को चुप रह कर सह लेना चाहता था । जब वह न बोला तो रुथ ने ही बात आगे बढ़ायी, "देखो यह सब याद दिला कर मैं ने इसी बात की ताईद की कि मैं कुछ भूलती नहीं । अच्छी बात भी नहीं और बुरी तो क़तई नहीं ।"

कहते-कहते वह हँसी । हँसी सायास थी, स्पष्ट था । उस अतीत-स्मृति ने इतने वर्षों बाद उसे फिर से विचलित कर दिया था । बोली, "तो तुम अपनी बात पूरी करो । अच्छी स्मृति का एक लाभ यह भी है कि बातों में कितने भी क्षेपक क्यों न आ जुड़ें, मूल वार्ता टूटने नहीं पाती ।"

मिनेजिस ने किसी तरह स्वयं को सम्हाल लिया था । बोला, "तुम्हें देखता हूँ तो यही लगता है कि यह कालान्तर माइनस साइड में ही गया है । तुम पहले से अधिक सुकुमार, कमसिन और ख़ूबसूरत लगती हो ।"

रुथ ने खिलखिलाहट में स्वयं को प्रसारित करते हुए कहा, "मुझे अफ़सोस है कि इस सफ़ेद झूठ के लिए इस भीड़ में मैं तुम्हारी ताड़ना नहीं कर सकती ।"

"मुझे एतराज़ नहीं । हाथों के आहत होने का अन्देशा हो तो केन का प्रयोग कर सकती हो ।" मिनेजिस ने सहास कहा ।

"तुम उतने ही कल्पनाहीन रहे । पुरुष को दण्डित करने के लिए ईश्वर ने स्त्री को किन्हीं और ही उपादानों से बनाया है । पर तुम बातों के जादूगर हो कर भी कल्पनाहीन ही रहे मेरे मिनेजिस ।" रुथ का कोमल उत्तर था ।

उसका स्वर धीमा और तरल हो चला था । उस तरलता में क्षिप्रता का स्थान मन्थरता ने ले लिया था । उन दोनों की कहानी, जो मुँद-

मुंद कर खुल रही थी और खुल-खुल कर मुंद रही थी, मुझे द्रवित किये जा रही थी। मैं बगदाद का विजर्ड होता तो अपने जादू की करामात से उस जहाज के समस्त यात्रियों को गायब कर देता। या उन्हें ही मनोहर पक्षियों का रूप दे कर इस अपर डैक को कण्व के तपोवन की सुषमा से भर डालता जिस से शकुन्तला और दुष्यन्त के प्रणय के लिए मुक्त रंगमंच तैयार हो जाता। पर उन का यह मिलन दुष्यन्त-शकुन्तला के प्रथम मिलन सा नहीं था। यह था उन की उस भेंट के सदृश जो भगवान् मरीचि के पुत्र कश्यप के आश्रम में कहीं हिमालय के शिखरों पर हुई थी। और तब उन दोनों को जोड़ने वाली कड़ी उन के प्यार की विरह-पूत सात्त्विकता ही थी।

मगर विरहपूत तो ये दोनों ही थे। मिनेजिस ने अवश्य ही दुष्यन्तवत् उस का प्रत्याख्यान नहीं किया होगा। अवश्य ही यह नहीं कहा होगा कि स्त्री जाति तो कोयल जैसी परपंची है। मैं तो इस औरत को जानता भी नहीं। मगर फिर भी शायद निषधराज नल की सी कायरता दिखायी हो?

मैं कहां का कहां उड़ चला था। पुरुष की कायरता के आख्यान अनेक थे, जो स्वयं पुरुष महाकवियों ने महाकाव्य के रूप में गाये हैं। मगर मेरा अपना अनुभव कुछ और था। मैं स्त्री की कायरता का शिकार हुआ था। कायरता, अस्थिरता कि ...माया, प्रपंच या मेरी अपनी मूर्खता! रेलिंग पर रखे मेरे दोनों हाथ जैसे रेलिंग का ही अंश हो गये थे। मेरे अंगों में जड़ता भर गयी थी। कानों में पड़े अनेक संवाद अर्थ-हीन ध्वनियों से पलायन कर गये थे। तभी रुथ और मिनेजिस हँसे। सम्मिलित हँसी, मन की एकाकारता सी हँसी। उस हँसी ने मुझे वर्तमान की आसक्ति दी। जो कुछ मैं नहीं सुन पाया था, तब उसे भी जान लेना चाहा। मैं ने सोचा—वाणी नभ पर अवतरित होती है। व्योम ध्वनि-संचारी भी है और रूप-संचारी भी। पर रेडियो टेलिविज़न की सहायता के बिना उस की इस शक्ति का लाभ उठाया ही नहीं जा

नेत्रों में कुछ ऐसी क्षमता होती कि व्योम तरंगों पर बो...
शब्दों को पढ़ पाते तो कैसा अद्भुत होता ?
अपनी इस कल्पना पर मैं सहम गया था—वह अद्भुत भीषण
। हमारे चारों ओर वाणी के सुमनों से अधिक वाणी के कण्टक
और रात में जब दिया बुझा कर आँखें बन्द कर लेना चाहते तब
वे रेडियम-धर्मी व्योमांकित अक्षर आँखों में अंगारों से दीप्त रहते।

उन की हँसी शान्त हो गयी थी, पर उन के मौन से स्पष्ट था कि ...
अभी भी उस से अभिभूत थे। इस बीच मिनेजिस ने रुथ का कोमल हा...
फिर अपने खुरदुरे हाथों में ले लिया होगा। उस स्पर्श से पीड़ित हो ...
ही उस ने कहा होगा, "तुम कितने बदल गये हो। स्पर्श में भी एक अजीब
शुष्कता और खुरदुरापन। यह ग़नीमत समझो कि तुम्हारी आँखें अब भी
उतनी ही कोमल हैं और उन की तरलता हर क्षण मुखरित सी लगती
है। तुम्हारे होंठों की वक्रता भी स्त्रियों के हृदय पर हँसुआ सी चलती
है। अतीत के ये ही दो आकर्षण शेष रह गये हैं। यह तुम्हें क्या हो
गया ? तुम्हारे जीवन-रस का किस ने शोषण कर लिया ?"

"तुम ने।" मिनेजिस ने कुछ ऐसे कह दिया था जैसे न चाहते हुए
भी वह शब्द मुँह से निकल गया हो। इसी से फिर सम्हलते हुए कहा था,
"रुथ, मैं ने तुम्हें बेहद याद किया है। रात-रात भर जाग कर याद
किया है। मैं तुम्हारे लिए रो देता था। रुथ, मैं क्यों लिस्बन गया, क्यों
अंगोला गया, क्यों मोजाम्बीक गया ? और मैं चला ही गया था, तो तुम
क्यों नहीं मेरे साथ-साथ गयीं ? क्यों यहाँ रुकी रहीं ? बोलो क्यों ?"

रुथ चुप ही थी। मिनेजिस ही बोला था, "माफ़ करना रुथ। पु...
दर्द सहना नहीं जानता। इसलिए आरोपों की शरण ले लेता है।
सब मेरी अपनी कमज़ोरी थी, मेरी अपनी ही कमज़ोरी।"

मिनेजिस का गला रुँध गया था। तभी मैं ने रुथ का स्वर सु...
निर्भ्रान्त और निर्मल स्वर, "लोग क्या कहेंगे मिन। ईश्वर ने ...

अ...

ग्लैडिएटर्स वाला दिया, मगर दिल मुर्गी का। आँखों को यों गलाओ मत। शायद यह सब होना था। इस दुनिया में जब हम आते हैं तो उसी पार्ट को तो दोहराते हैं, जो हमारा निर्णायक डायरेक्टर हमें दे कर यहाँ भेजता है। इसी से वह सब भी हम करते हैं जो हम करना नहीं चाहते और जिसे कर के हमें पछताना पड़ता है। रोना पड़ता है।"

मुझे लगा जैसे रुथ का प्रबोध मिनेजिस के लिए ही नहीं, मेरे लिए भी है। हर खण्डित व्यक्तित्व के लिए है। हर टूटे हुए इनसान के लिए है।

उस कोलाहल में भी मौन छा गया था। रुथ और मिनेजिस के चुप होते ही लगा कि नीरवता ही नीरवता शेष है। कुछ ही क्षणों की चुप्पी अनन्त सी लगी। जैसे अवरुद्ध सांस के क्षण अनन्त हो उठते हैं, कुछ वैसे ही। अपनी समस्त व्यग्रता के बावजूद मैं स्वयं उस चुप्पी को तोड़ने में अग्रणी नहीं हो सकता था। मेरा हस्तक्षेप उन्हें और भी अस्थिर कर सकता था। बस मैं उस क्षण की प्रतीक्षा करता रहा जब उन दोनों में से ही कोई एक बोलता।

और वह क्षण भी आया। रुथ बोली, "तो तुम ने बड़ी दुनिया देख डाली ?"

स्वर अवसाद से सर्वथा मुक्त न था। किंचित् हँसी का सहारा ले कर भी प्रसन्नता का वाहक न बन सका। मिनेजिस ने कदाचित् नि:श्वास छोड़ कर उत्तर दिया था जिस से उस का उत्तर तत्काल नहीं आया था। उस ने कहा था, "भूगोल की पुस्तकों में जिसे दुनिया कहते हैं वह तो अवश्य ही देखी मैं ने। मगर मेरी दुनिया वह न थी। जैसे मैं कालेपानी की ज़िन्दगी जी रहा था। शरीर पर बन्धन न थे, मगर मन-बुद्धि और आत्मा क़ैद थे। और मेरी अपनी दुनिया मुझ से बहुत दूर थी।"

उस ने 'अपनी' शब्द पर विशेष ज़ोर दिया था। उसी क्रम में आगे

कहा था, "शायद मेरी वह दुनिया मुझे ग़लत भी समझ रही थी।"

इस बार 'मेरी' शब्द पर वही बल था। स्पष्ट था दुनिया के साथ लगे ये सम्बन्ध-सूचक शब्द केवल एक ही अर्थ रखते थे—रुथ। मिनेजिस की रुथ। रुथ जो इस समय उस के पास इसी डैक पर थी, जिस से वह बिछुड़ा क्या, अपनी दुनिया से ही दूर जा पड़ा।

रुथ बोली थी, "तुम बेहद भावुक हो गये हो मिनेजिस। कड़ुए-मीठे अनुभवों के साथ तो आदमी की भावुकता मर ही जाती है। हर अनुभव उस की खाल पर एक और परत चढ़ा देता है। और उन परतों से मिल कर वह खाल हाथी की खाल हो जाती है, जिस में काँटे नहीं चुभते, जिस में सिर्फ़ अंकुश ही प्रतिक्रियाएँ जगाते हैं।

मिनेजिस ने कहा था, "मगर हर अनुभव ने मेरी खाल को छीला है। इतना छीला है कि हवा का आँचल भी दुखन से भर देता है। बहुत पुरानी कोई याद भी चोट पहुँचा जाती है।"

रुथ ने फिर पूछा, "लिस्बन में तुम क्या करते रहे?"

"सालाज़ार के विरोधियों का दमन।" उस ने तत्काल उत्तर दिया। "मैं ने उतने बड़े जेलखाने की कल्पना भी नहीं की थी जितना बड़ा जेलखाना वह पुर्तगाल नाम का देश है। सालाज़ार की इच्छा ही वहाँ का विधान है। ऊपर से दीखने वाली शान्ति दमन की शान्ति है, जिस के नीचे जनता की उमंगें दफ़न हो चुकी हैं। या कि वह शान्ति उन का कफ़न है।"

"तो तुम गये क्यों थे?" रुथ का स्वर कुछ कठोर था।

उस का विनीत उत्तर था, "वही तो मेरी भूल थी। भूल नहीं कायरता थी।"

रुथ ने पीड़ित स्वर में कहा था, "मुझे कितनी खुशी होती अगर तुम वीर प्रमाणित होते, चाहे मैं कायर ही निकलती। ख़ैर, वह सब तो अब इतिहास हो गया। फिर तुम ने गोआ छोड़ा तो लिस्बन में ही क्यों नहीं रहे?"

उस ने कहा, "वह मेरी इच्छा की बात न थी। सरकारी आदेशों के

अधीन था। जिस तरह गोआ में दमन के लिए अफ्रीकी सिपाही लाये गये थे उसी तरह मोज़ाम्बीक और अंगोला में दूसरे उपनिवेशों से सिपाही लाये गये। मैं और मेरे जैसे हजारो जन साल्राज़ार के जुल्म और आतंक का साधन बने। मुझे इस बात का अहसास था मगर जिस दलदल में फँस चुका था उस से उबर नहीं पा रहा था। इधर जब गोआ में भारत का 'ऑपरेशन विजय' सफल हुआ तो मैं फूट-फूट कर रो पड़ा था।"

मिनेजिस रुक गया था। रय उस की प्रतिक्रिया पर अवाक् थी, शायद इसी से उस की ओर से कोई प्रतिक्रिया लक्षित नहीं हुई थी। क्षण भर के मौन के बाद मिनेजिस ने कहा था, "मुझे भारी अफसोस और पछतावा था। गोआ की आज़ादी के लिए लड़ने का एकमात्र और अन्तिम अवसर मेरे हाथ से निकल चुका था। जिस गौरव में तुम ने हिस्सा लिया और जिस गौरव को तुम ने मुझ से बाँटना चाहा था उस से मैं वंचित ही रहा। अपनी ही बेवकूफी और कायरता के कारण वंचित रहा।"

रय जैसे मात्र श्रोता रह गयी थी। श्रोता की उत्सुकता भरी तटस्थता से उस ने पूछा, "पर तुम ने मुक्ति आखिर कैसे पायी?"

"अंगोला के अत्याचारों से।" मिनेजिस का जवाब था, "सच ही अंगोला ने मेरी आँखें खोल दीं। गोआ की आज़ादी के बाद ही मुझे लगा कि मैं सालाज़ार या पुर्तगाल के लिए नहीं, अंगोला को दास बनाये रखने के लिए, उस उपनिवेश के स्वतन्त्रता-आन्दोलन के विरुद्ध लड़ रहा हूँ। इस विचार के आते ही मैं स्थिर न रह सका। कैसे उस पाप-कर्म से खुद को मुक्त करूँ, हर घड़ी यही सोचता रहा। और जब कोई और रास्ता न सूझा तो मैं भगोड़ा बना। मगर मुझे उस भगोड़ेपन में वीरता ही महसूस हुई। आखिरकार मैं भी वीर पुरुष की तरह निश्चय कर सकता था। मैं उतना कातर न था जितना कि तुम्हारे सामने स्वयं को सिद्ध कर चुका था। मगर सच्ची वीरता का अवसर तो जा ही चुका था।"

और वह चुप हो गया।

तारे उग आये थे। डैक का दृश्य रात के उस अँधेरे में धीमी वत्तियों की रोशनी में कुछ अधिक आत्मीयतापूर्ण हो उठा था। दिन की रोशनी में चेहरों का पार्थक्य और वैशिष्टय सूचित करने वाली रेखाएँ रात होने पर धीमी रोशनी में मिट चली थीं और अब वे सब इकाइयाँ किसी व्यापक विराटता का अंश बन चुकी थीं। जहाँ एक स्थिति का पर्यवसान होता वहीं से दूसरी स्थिति उभरने लगती, किन्तु दोनों की सन्धि-रेखा तरल ही बनी रहती। अभी भी मैं समूचे डैक को नहीं देख पा रहा था। मैं ने हठात् रुथ और मिनेजिस की दिशा को अपने दृष्टि-पथ से बचा लिया था। मैं नहीं चाहता था कि मेरी उपस्थिति का एहसास उन की एकाग्रता को भंग करे।

तभी मिनेजिस ने रुथ से भोजन का प्रस्ताव किया, "तो इस वक़्त हम साथ ही खायें न? तुम मेरे कैबिन में चलो। सुपरवाइज़र से मैं अनुमति ले लूँगा।"

"ठीक है।" रुथ ने कहा और कहते ही उसे मेरा ध्यान हो आया। बोली, "मगर मैं अकेली नहीं।"

मिनेजिस ने अविश्वास के साथ पूछा, "पर और कौन हो सकता है तुम्हारे साथ? तुम ने इतनी बातों में जिक्र तक नहीं किया।"

वह बोली, "ऐसी बातों में किसी और का ज़िक्र हो सकता था?"

मिनेजिस ने कहा था, "तो बताओ वह भद्र पुरुष कहाँ है?"

रुथ ने घूम कर मेरे कन्धे को हलके से छुआ और पोर्चुगीज़ सम्भाषण बन्द कर हिन्दी में बोली, "मिस्टर ग्लूकोज, लो हमारा फ्रेण्ड से मिलो। सीन्योर मिनेजिस ब्रैगेन्ज़ा।"

मैं ने मिनेजिस की ओर अपना हाथ बढ़ा दिया। सुरूप और क़द्दावर। उस के भारी हाथ में मेरा हाथ असुविधा अनुभव कर रहा था।

उधर रुथ मिनेजिस की ओर मुखातिब हो कर कह रही थी, "मिन,
का नाम तो तुम समझ गया होगा। मिस्टर ग्लूकोज।"

और वह हँस पड़ी। मिनेजिस उस हँसी का अर्थ नहीं समझ सका।
ला, "आप भी ईसाई है?"

उत्तर मे मैं ने सिर्फ इतना ही कहा, "आप से मिल कर मुझे खुशी
।"

उस ने प्रस्ताव किया, "मिनीना रुथ मेरे साथ डिनर ले रही है।
भी हमारा साथ दे सकें तो मुझे बेहद खुशी होगी।"

रुथ ने मुसकरा कर कहा, "हम को भी खुशी होगी।"

मैं ने कहा, "असल में खुशी तो मुझे होगी। मैं इस सफर में बौरा
ता अगर मुझे मिस एवोमिन का साथ न मिला होता। इन की बदौलत
मुझे आप का डिनर भी मिल रहा है।"

उस का असली नाम जानने के बावजूद मैं ने मिस एवोमिन जान-
कर ही कहा था। रुथ तो मुसकराती ही रही, मगर मिनेजिस कुछ
झन में पड़ गया। उसी उलझन में बोला, "ये मिस एवोमिन कौन
? आप की बात से तो ऐसा लगता है कि मिनीना रुथ ही मिस
मिन है।"

मैं ने कहा, "जी हाँ, ये ही मिस एवोमिन है और ठीक वैसे ही जैसे
मिस्टर ग्लूकोज।"

बात स्पष्ट हो गयी। मिनेजिस इस स्पष्टीकरण पर ठहा कर हँस
ा। रुथ मन्द-मन्द मुसकराती रही। मेरी अपनी हँसी मिनेजिस के
हास में डूब गयी थी। पर उस हँसी का कुछ असर ऐसा हुआ कि
नेजिस से दूरी मिट चली और वह मुझे उस वर्ग के व्यक्तियों में लगा
न्हें अपनी दृष्टि से मैं ग्राह्य मानता आया हूँ।

हँसी के शान्त होने पर रुथ बोली, "मगर तुम जानता है मिन,
रा नाम एवोमिन क्यों बोला। हम ने देखा, इस का हाल बुरा था।

चक्कर आता था। सी-सिक था। हम ने इस को एक गोली दिया। वस इस ने वही नाम हम को दे दिया।"

मैं ने कहा, "मगर मैं ने तो आप को ग्लूकोज़ नहीं दिया था, फिर भी आप ने वह नाम मुझे दे दिया। इस से यह तो ज़ाहिर है कि नाम के लिए ज़रूरी नहीं था कि उस नाम की कोई चीज़ दी ही जाती।"

रुथ ने अपना तर्क दिया, "मिन, हम वोलता है कि हम ने इस को ग्लूकोज़ इसलिए वोला कि यह मीठा वोलता है।" और शरारत के साथ आगे जोड़ दिया। "और मिन वोलता है तो लगता हैं तमंचा छूट रहा है?"

मैं ने मज़ाक़ को समझते हुए भी गम्भीरता के साथ कहा, "आप सिन्योर मिनेजिस के साथ अन्याय कर रही हैं।"

मिनेजिस वीच में वोल उठा, "आप मुझे मिनेज्सि ही कहें सिन्योर और सिन्योरा अव लिस्वन वापस जा चुके हैं।"

अपने इस विनोद पर वह खुद ही धीमे से हँसा और फिर वोला, "अच्छा तो मेरे कैविन में ही चलिए। वहीं डिनर का ऑर्डर दे दिया जायेगा।"

वस हम सामान और मुसाफ़िरों को कहीं लाँघते, कहीं वचाते, डगमग क़दमों से कैविनों की ओर वढ़ चले। कई जगह गिरने से वचने के लिए रुथ ने मेरा सहारा लिया था।

मिनेजिस के कैविन के वाहर डेक पर पड़ी कुरसियों पर हम वैठ गये थे। रत्नागिरि का वन्दरगाह क़रीव था। वन्दरगाह की वत्तियाँ दूर से ही दिखाई दे रही थीं। उस नीलम की सीपी में वन्द अँधियारे में वे वत्तियाँ वेहद खुशनुमा दीख रही थीं।

डैक की तुलना में यहाँ स्वर्ग था। भीड़, असुविधा और कोलाहल

सभी दूर। कुरसियों पर बैठते ही यात्रा का रस और बढ़ गया था। मिनेजिस और रुथ टाँग पर टाँग रखे इतमीनान से सिगरेट पी रहे थे। रुथ की गोरी पिण्डलियाँ इतनी आकर्षक थी कि मैं बार-बार उधर ही देखने लगता। संकोच भी होता। इस तरह की चोरी पकड़े जाने पर छोटापन महसूस होता है, इस की भी चिन्ता थी। फिर भी उधर देखे बिना नहीं रह पाता था। नटवर्ती बस्तियों का आकर्षण धूमिल हो चला था।

मिनेजिस शान्त था और वह सिगरेट के धुएँ के लच्छे बनाने में मग्न था। वह उस कला में निपुण था। रुथ ने उस की इस कला की नकल की कोशिश की, मगर असफल रही। उस ने उस से पोर्चुगीज़ में कहा भी, "यह तुम्हारी याद की उपलब्धि है।"

मिनेजिस ने स्वीकार पूर्वक कहा, "हाँ याद की ही। पहले तो मैं सिगरेट पीता ही न था।"

रुथ बोली, "हाँ याद आया। फिर तुम ने यह बला क्यों मोल ले ली। मैं तो पछताती हूँ इसे मुँह लगा कर। और अब लगता है यह आदत मेरे साथ ही कब्र में जायेगी। पर तुम ने क्यों पीना शुरू किया था?"

मिनेजिस ने भावुकतापूर्वक कहा, "इसी लिए कि तुम्हारी याद इतनी बोझिल हो उठी थी कि मैं उसे ढो नहीं पा रहा था। याद की परतों पर इतनी परतें जमा हो गयी थीं कि मैं उन के पहाड़ के नीचे दबने लगा था। मुझे तब जाने क्यों लगा कि सिगरेट से मुझे वह हिम्मत मिल सकती है जिस से याद की आग को सह सकूँ। अकेले में बैठ कर जब मैं स्मोक किया करता तो उस के धुएँ की पारदर्शिता के पीछे तुम ही तुम दिखाई देती थी। मुझे वह सब अच्छा लगता।"

रुथ ने किंचित् पीड़ा और उपहास के साथ कहा था, "कम्पनी वालों को पता चल जाये तो उन्हें सिगरेट की पब्लिसिटी के लिए अच्छा मसाला मिल जाये। कोई फूल, चाँद और झरनों में अपनी प्रिया की अनुभूति करता है तो तुम सिगरेट के धुएँ में! तुम निश्चित ही मॉडर्न निकले।"

मिनेजिस ने कहा था, "तुम चाहे जो कहो, पर मैं ने तुम से सत्य ही कहा है। मैं अकसर तुम्हें इसी तरह बैठे देखा करता था। टाँग पर टाँग। ऊपर वाला पाँव हिलता हुआ। उस के जूते की पतली टो मोम-बत्ती की लौ सी। मेरा मन करता कि उस लौ से लिपट जाऊँ। और मैं धुएँ के छल्ले बन कर लिपट जाता। उस कल्पित लौ को मैं अपनी सिगरेट के धुएँ के छल्लों से घेर लेता।"

क्षण भर रुक कर वह फिर बोला था, "देखो उठना मत। इसी तरह बैठी रहना। तुम्हें अपने उस अभ्यास का सबूत भी अभी दिये देता हूँ। हवा भी इस क्षण थमी है।"

और तत्क्षण उस ने अत्यन्त कुशलता से रुथ के जूते की टो के चारों ओर धुएँ के कई छल्ले रच डाले। मैं मुग्ध हो कर देखता रहा।

तभी रुथ को कहते सुना, "तुम सदा के बावले रहे। मेरे प्यारे, इतनी तड़पन थी तो क्यों दूर ही दूर बने रहे?"

मैं ने निगाह उठा कर देखा था रुथ को। उस के चेहरे पर एक अजीब भाव था। जैसे जो अतीत हो चुका है उसे पुनः न पा सकने की बेचैनी। उस की आँखें नम थीं और उस ने गहरी निराशा के साथ अपना सिर कुरसी के सिरहाने पर निढाल सा डाल दिया था। उस के सुन्दर केशों ने तत्काल उस के वेदनाविद्ध मुख के चारों ओर घेरा डाल दिया था। जैसे अब और वेदना को वे उधर फटकने न देंगे।

मैं ने खुद अपने अंग-अंग में अजीब सी सिहरन महसूस की। मिनेजिस ने अनायास ही रेलिंग से पार समुद्र में अपनी सिगरेट फेंक दी थी और वह होंठों से सीटी बजाने लगा था। उस समय सीटी बजाने की कोई तुक न थी। फिर भी उस ने कई तरह की सीटियाँ बजायीं।

मुझे अपनी उपस्थिति सर्वथा अवांछित लग रही थी। और मैं उठ चला।

मुझे चलते देख रुथ ने हिन्दी में टोका, "कहाँ चला तुम?"

मैं ने कह दिया, "जब तक खाना आये, मैं जरा इधर-उधर देख ही लूँ।"

मुझे रुके रहने के लिए कहते हुए बोली, "नहीं, तुम अकेला उधर क्या करेगा ? किधर चले-फिरेगा उस भीड़ में ? बैठो। मिन, हमें इन से माफ़ी माँगना होगा। हम लोग पोर्चुगीज में बोलता रहा। अब हम हिन्दी में बात करेगा।"

मैं ने उस की बात का पोर्चुगीज में जवाब देते हुए कहा, "नहीं, ऐसी बात नहीं। पोर्चुगीज मैं अच्छी तरह जानता हूँ।"

रुथ और मिनेजिस दोनों को ही अचरज हुआ। क्षण भर तो अवाक् रहे। फिर एक स्वर में ही नाटक के डायलॉग की तरह पोर्चुगीज में ही बोल उठे, "हम अच्छे बेवकूफ बने। जाने क्या-क्या अनाप-शनाप बकते रहे। यह तक नहीं सोचा कि तुम्हें कैसा अजीब लगेगा ?"

रुथ ने पोर्चुगीज जारी रखी, "तो अब मैं पोर्चुगीज में ही बात करूँगी। अँगरेजी मुझे कम आती है और हिन्दी बोलती हूँ तो लगता है राष्ट्रभाषा का अपमान कर रही हूँ।"

मैं ने कहा, "नहीं, ऐसी बात तो नहीं। आप जैसी भी हिन्दी बोलें, उस से हिन्दी का गौरव ही बढ़ेगा। जब हर प्रदेश और भाषा-वर्ग के लोग अपने-अपने ढंग से हिन्दी बोल पाते हैं तो मुझे अच्छा ही लगता है। वह हर किसी के मुख पर सुहाती है। शुद्ध-अशुद्ध होना तो व्याकरण की बात है।"

इस के बावजूद हम तीनों पोर्चुगीज में ही वार्तालाप करते रहे। मिनेजिस ने पूछा, "मगर आप ने पोर्चुगीज कहाँ सीख ली !"

मैं ने कहा, "बताऊँगा। पहले आप बतायें कि आप इतनी अच्छी हिन्दी कैसे बोल लेते हैं ?"

वह हँसा और बोला, "मैं भी अजीब इनसान रहा हूँ। एक बार मैं पादरी बनने का सपना देख रहा था। फ़ादर ब्राउन अँगरेज पादरी थे।

अँगरेज होने पर भी कैथोलिक थे। मैं उन के सम्पर्क में जब आया तो उन्होंने मुझे पादरी बनने की प्रेरणा दी। और कहा, 'पादरी बनो और भारत में यीशु के सन्देश का प्रचार करो। पर अगर वहाँ जन-साधारण के दिल को जानना चाहते हो तो हिन्दी सीखनी होगी।' बस तभी से मैं ने हिन्दी का अभ्यास शुरू किया। फ़ादर ब्राउन हिन्दी के खुद बहुत अच्छे ज्ञाता थे। उन्हीं की कृपा का फल है।"

रुथ ने उदासीन स्वर में कहा, "तो तुम पादरी नहीं ही बन पाये मिन?"

मिनेजिस का उत्तर था, "तुम्हें इतने क़रीब से न जाना होता तो मैं अवश्य ही पादरी बन जाता।"

और फिर मौन छा गया। जैसे वाणी पर पीड़ा की शिला आ गिरी थी, जिस के भार के नीचे वह छटपटा भी नहीं पा रही थी।

मौन दीर्घता में भारी हो चला था। अन्त में मैं ने ही हिम्मत कर के उसे तोड़ा और कहा, "आप मेरे पोर्चुगीज-ज्ञान के बारे में पूछ रहे थे। मैं ने पोर्चुगीज सिर्फ़ एकेडेमिक कारणों से पढ़ी है। उन्हीं कारणों से मैं गोआ जा भी रहा हूँ।"

"मैं समझा नहीं," मिनेजिस ने कहा।

रुथ अभिभूत सी बैठी थी। परिचय के आरम्भ में मैं ने उस की आँखों की चमक में जो विक्षिप्तता सी देखी थी वह एकदम नदारद थी। लगता था मिनेजिस ने उस के जीवन में जो टैन्शन पैदा कर दिया था वही उसे विक्षिप्तता की ओर धकेल ले चला था। और आज इतने वर्षों बाद अपने प्रिय को अप्रत्याशित रूप में पा कर वह टैन्शन आँसू और शिकवों में घुल चला था।

एक क्षण में ही मैं यह सोच गया और सोचते-सोचते ही अनुभव किया कि मैं ने मिनेजिस के उत्तर में विलम्ब किया। यह ध्यान आते ही कुछ क्षिप्रता से बोला, "मैं इतिहास का छात्र हूँ। भारत में पुर्तगालियों

ही जैसे कहा, "मिस्टर मिनेजिस ब्रैगेन्ज़ा, आप के आकस्मिक आविर्भाव से मैं अत्यन्त निराश हुआ।"

मैं हिन्दी में ही कह गया था। रुथ ठीक-ठीक न समझ पायी, मगर मिनेजिस अट्टहास कर उठा था।

रुथ ने अभियोगी स्वर में कहा, "पोर्चुगीज में समझाइए। जब मैं पोर्चुगीज़ में बोल रही हूँ तो आप भी पोर्चुगीज़ में ही बोलें।"

मैं ने मिनेजिस से कहा, "सुना आप ने? इतनी जल्दी कितने प्रचण्ड अधिकार की भावना जाग उठी है।"

मिनेजिस का हास सम पर आते-आते फिर सप्तम में चला गया। पर इस से पूर्व कि रुथ फिर कुछ कहती मैं ने अपने पहले वाले वाक्य का पोर्चुगीज़ अनुवाद पेश कर दिया। अब रुथ के हँसने की बारी थी। कितनी ही देर तक हँसती रह कर बोली, "मगर मिन, तुम कायर हो। इतना बड़ा अभियोग सुन कर भी चुप हो। चुप क्यों, उलटे हँस रहे हो। तुम्हारी प्रिया के सामने ही तुम्हें एक अजनबी उस के हृदय के सिंहासन से अपदस्थ कर रहा है। मगर तुम कि...."

मिनेजिस ने उस के वाक्य को बीच में ही काट कर कह दिया, "मगर मैं सह-अस्तित्व में विश्वास करता हूँ।"

रुथ ने कृत्रिम रोष के साथ कहा, "तुम बेहद बुरे हो।"

वह बोला, "क्या करूँ, तुम इतनी अच्छी, मतलब कि इतनी खूबसूरत हो कि एकाधिकार जताते डर लगता है।"

उस वाक्य की रुथ पर कुछ ऐसी प्रतिक्रिया हुई थी कि वह सुवास सी हल्की, चांदनी सी मधुर और तृप्ति सी निरुद्वेग हो उठी थी।

'एकाधिकार' इस एक शब्द में जैसे समस्त मानवी विकास समाया था। इस 'एकाधिकार' ने सोने की लंका को राख कर दिया है। इसी

भरे खेत—ये सब भी तो सुन्दर हैं। किन्तु मोह का केन्द्र कब बन पाते हैं ? पता नहीं स्त्री-सौन्दर्य में इस विषकीट को क्यों उपजाया मेरे प्रभु ने ?

सच ही मैं नहीं समझ पाता इस रहस्य को। क्या योगियों की परीक्षा के लिए ? या कि अपनी ही सृष्टि की अमरता के लिए ? कभी लगता वह प्रभु भी स्वर्ग के राजा इन्द्र सा भीरु है। मनुष्य के पुरुषार्थ और उस की साधना से डरता है। कहीं उस की ईश्वरता को ही न छीन ले। इसी लिए उस ने स्त्री सिरजी, उसे सुन्दरता दी, उस की सुन्दरता को वासना दी।

पर स्वयं-मुझे अपना यह चिन्तन निरर्थक और भ्रामक लग रहा था। स्त्री के द्वारा लोक की सिद्धि है, तो परलोक की भी, यह सत्य न होता तो भर्तृहरि को निर्वेद की अनुभूति न होती। बस एक राजा का जीवन जी कर चिता की सेज पर आखिरी नींद भी ले लेते। पर वह विरागी हुआ। योगी हुआ। लोकोत्तर का साधक हुआ। और यह सब सम्भव न होता यदि 'वह' न होती। रुथ न होती। दरी वा सुन्दरी वा पर्वत गुहा या सुन्दरी-शैया-तल। विश्व के ये दो छोर विकास के ये दो सीमान्त।

मैं सोचता ही रहता, अगर रुथ ने सावधान न कर दिया होता। वह बोली "इतिहासकार महोदय, आप को देख कर तो लगता है कि एक स्थिति में इतिहासकार कवि का पर्याय है। सावधान हों। भोजन प्रस्तुत है। निरामिष है। बिना मछली का निरामिष।"

मिनेजिस बोला, "तुम तो मछली को जलतुरई और अण्डे को सफ़ेद आलू मानने वालों में से हो। तुम्हारी दृष्टि में तो शाकाहारी ये दो चीजें न खायें तो हाथी या बकरी के सम्प्रदाय में ही आ जायेंगे।"

रुथ ने मेरी ओर देख कर सविनोद कहा था, "चाहे जो हो, हमारे इतिहासकार महोदय हाथी सम्प्रदाय में तो कभी नहीं आ पायेंगे।"

यह कह कर उस ने मुझे अपने दुबलेपन के प्रति सावधान कर दिया था। और मैं उस अनुभूति के साथ ही हँस पड़ा था।

भोजन समाप्त होते न होते रत्नागिरि का बन्दरगाह काफ़ी पीछे छूट चुका था। जहाज पर छायी शान्ति से लग रहा था कि अधिकांश यात्री या तो सो चुके हैं या नींद की प्रतीक्षा करते हुए चुपचाप पड़े हैं। रात्रि की नीरवता समुदाय की उपस्थिति से भी नहीं टूट रही थी। चारों ओर दो हीं तत्त्व थे: नीला जल और काला अँधेरा। टिमटिमाते तारक दीप अपने सामूहिक प्रयत्न से यह द्वैत बनाये हुए थे। अन्यथा अन्धकार की चादर तो फ़्री साइज़ की नाइलॉन गारमेण्ट की तरह होती है जिस में कोई भी विस्तार समा जाता है।

रथ और मिसेजिस अपने स्थान पर ही बैठे थे मगर मैं उठ कर रेलिंग के सहारे खड़ा हो गया था। और फिर धीरे-धीरे चलता हुआ, अपर डैक और कैबिन भाग की सीमा-सन्धि पर चला आया था। डैक पर लेटे हुए यात्री बचपन में देखी हुई रामलीला की वानरी सेना का ध्यान दिलाते रहे। आकृतियाँ मिट कर अपनी समग्रता में जो प्रभाव छोड़ गयी थीं वह कुछ-कुछ वैसा ही था। पर जब दृष्टि ने उस समग्रता को अस्वीकार कर के अलग-अलग इकाइयों पर मँडराना शुरू कर दिया तो मनु के वंशजों का एक फ़ोटो ऐल्बम ही खुल पड़ा। इस ऐल्बम की एक विशेषता यह थी कि इस के चित्रकार अर्थात् फ़ोटोग्राफ़र ने हर किसी से मुद्रा विशेष अपनाये रखने का आग्रह नहीं किया था। जैसी कि उस वर्ग के फ़ोटोग्राफ़र की आदत होती है; वह अपनी लाइट और अपने कैमरे का लेन्स एडजस्ट करने के बजाय फोटो के विषय के अंगों को ऐडजस्ट करता है। जैसे गरदन कुछ ऐसे, सिर कुछ वैसे। हाथ यहाँ नहीं वहाँ। होंठों पर ज़रा जीभ फिरा लीजिए। और हाँ तनिक मुसकराइए भी। ऐसे नहीं। नहीं, ऐसे क़तई नहीं। हाँ यह ठीक है। ज़रा और। बस थोड़ा और। या कहिए—'चीज़'

और बस एक क्लिक। फिर उन फ़ोटुओं को देख कर अधिकांश का मन तृप्त होता है। काले रंग के स्थान पर गोरा रंग। स्केल, कम्पास

से वैलेन्स कर के वनायी गयी शक्ल। मतलव कि कुछ वैसी ही।

मगर इस समय मेरे सामने जो ऐल्वम खुला था उस में फ़ोटोग्राफ़र प्रधान न था, विपय ही प्रधान था। फलतः सुन्दरता में छिपी कुरूपता, यानी कि सँवार-सज्जा के पीछे की अव्यवस्था ही उभर रही थी और इस का अपना सौन्दर्य उपवन सा नहीं, वन सा था। वन नाम में उपवन से छोटा। कहाँ चार अक्षर और कहाँ दो! पर एक का अस्तित्व माली पर निर्भर करता है, जब कि दूसरा प्रकृति का पुत्र है। मेघ हाथी अपनी सूँड़ों से उसे नहलाते हैं। बिजलियाँ उसे दर्पण दिखाती हैं। कँटीली सेज पर वह मस्ती से सोता है। उस की साँसों में हाथियों की चिंघाड़, सिंहों की दहाड़ भरी रहती है। उस का रोम-रोम साल और देवदार की ऊँचाइयों से भरा रहता है, जब कि उस के मन के कोमल भाव मृगछौनों से कुलाँचे भरते हुए विलास करते हैं। जब चाँदनी रात होती है तब भी वह मनोरम लगता है। जब अँधियारी रात होती है तब भी उस के व्यक्तित्व में गौरव होता है। वसन्तों की वह खुशामद नहीं करता। पतझरों में सर्वस्व का दान कर के भी वह सर्वस्व दानी इक्ष्वाकु रघु सा दिव्य तेज से युक्त हो उठता है।

और वस मेरी दृष्टि उस वन की वीथियों में भ्रमण करने लगी। वह कोई वृद्ध था। वेंच पर लेटा था। सिर के नीचे कैनवास का वैग तकिये का स्थान लिये था। विस्तर होने पर भी, तकिया रहते हुए भी, वह वैग ही शीर्पस्थ था। अवश्य ही उस की कोई प्रिय सम्पदा उस में होगी। गले का काँटा आम की सूखी गुठली सा उभरा था और हाथ की त्वचा सलवटों से भरी थी। अपनी ही साँस के झटके से हिल उठता था। वन्द आँखों में पलकों के नीचे पुतलियाँ भी हैं या नहीं, आभास तक न था। गाल की हड्डी उठी थी और नासिका तीक्ष्ण स्वभाव की तरह छिप न पा रही थी।

जीवन का वह एक रूप था: अनिवार्य रूप। परिणति का वह तीर्थ था। वुद्ध ने वृद्ध का दर्शन किया तो वैराग्य जागा। पर मेरे मन में तो

वैसा कुछ नहीं हुआ। बुढ़ापे को चाहे जीर्ण वस्त्र मान लिया जाये, वृद्ध को तो नही माना जा सकता। उस ने अपनी आयु का श्रेष्ठतम भाग भगवान् की बनायी इस सृष्टि को कायम रखने में होम किया है। फिर उस सृष्टि की जिम्मेदारी है कि अच्छे-बुरे अनुभवों और आशा-निराशाओं के भोगी उस मानव पिरामिड को उतनी सुरक्षा का अधिकार तो दे, जितना कि भूतकाल के स्तूप नामधारी अवशेषों को है। पर ऐसा होता नही। स्तूप या ढूहे के ऐतिहासिक महत्त्व को वे सब भी स्वीकार करते हैं जिन का उस से कभी कोई सम्बन्ध नही रहा, जब कि इस जीर्ण देह के ऐतिहासिक महत्त्व को वे भी स्वीकार नहीं करते जिन का जीवन ही इस के पुरुषार्थ से उगा, परिवर्द्धित हुआ और अपने अस्तित्व में सुरक्षित रहा।

उस वृद्ध के निमित्त मैं जाने मानव की किन-किन प्रवृत्तियों के बारे में सोच गया था। उस के समीप ही एक नन्ही बच्ची जमीन पर सोयी थी। गुड़िया सी बच्ची। छोटी सी नाक के नीचे मैल जमा था। कुछ बाल उलझ कर माथे पर घिर आये थे। होंठों पर स्तन्य जम कर सूख गया था। गाल फूले-फूले थे। स्वयं उस की माँ उस समय उस की ओर से पीठ कर के लेटी थी। वैसे ही जैसे हर कोई अनायास ही अपने अतीत से मुँह मोड़ लेता है। ब्लाउज के बटन आधे खुले आधे बन्द। अपने शिथिल गात्र से अपने यौवन की सही अवस्था का इंगित करती हुई, पर यह सर्वथा भूली हुई कि उस का भविष्य उस की अपनी पीठ के पीछे पड़ा है।

मेरी दृष्टि बाज सी उस सुप्त सृष्टि पर उड़ान भरती गयी। मानव आकृति में अनेक आयु-खण्ड। दरिद्रता-वैभव के अनेक प्रतीक। रूप-कुरूप के विविध आश्रय। सुकुमार मोहक ग्रीवाएँ असुविधापूर्वक मुड़ी हुईं। कीमती प्रसाधनों से सेवित केश किसी अन्य के चरणों में पड़े हुए। जैसे अहंकार का सम्पूर्ण विसर्जन। वह भी रूप का अहंकार। बुद्धि का अहंकार अभिव्यक्ति के अधीन रहता है। धन का अहंकार अपने से पृथक् सम्पदाओं पर आश्रित रहता है। पर रूप का अहंकार अपने ही देह के

ध्वज-स्तम्भ पर झप-केतु सा लहराता है। झप कामदेव का प्रतीक और रूप उसी अनंग का अंग।

पर निद्रा को वह सब विसर्जित। मगर जब वही नींद दूर जा बैठे तब ? मेरे पास तब न नींद थी और न नींद के लिए स्थान। यदि मैं उन बहुतेरों की तरह अपनी पीड़ा के अहंकार को विसर्जित कर किसी भी काम्य-अकाम्य भूमि में समाधिस्थ हो जाऊँ तो मैं भी इस भव्य ऐल्बम का अंग बन जाऊँ। भले ही तब इस का एकमात्र दर्शक मैं भी न रहूँ।

मैं जाने इस निर्बन्ध चिन्ताधारा में कब तक बहता रहता और कहाँ का कहाँ पहुँच जाता अगर मिनेजिस ने पीछे से पुकार न लिया होता, "मिस्टर ग्लूकोज़ !"

रात के ग्यारह बज चुके थे। डैक पर की लाइट बुझ चुकी थी। सिर्फ़ बाथरूम के पास एक धीमी बत्ती जल रही थी। जैसे डैक के महाकान्तार में दिशा-दर्शन के लिए वही ध्रुव हो। हवा धीमे-धीमे बह रही थी। सागर शान्त था। मिनेजिस अपने कैबिन में ही रह गया था। मैं और रुथ डैक पर चले आये थे।

मिनेजिस की इच्छा थी कि रुथ कैबिन में उस की बर्थ ले कर आराम करती और वह डैक पर चला आता। इस प्रस्ताव का उत्तर रुथ ने दुष्टतापूर्ण ही तो दिया था, "क्यों, मिस्टर ग्लूकोज़ से डरते हो ? मैं ने तुम्हारी इतनी प्रतीक्षा की है कि आँखें पथरा गयी हैं। और अब भाग्य का खेल देखो, तुम भी उसी दिन मिले जिस दिन एक प्रेमी मिला।"

मिनेजिस की आँखें उस की बेचैनी नहीं छिपा पा रही थीं। चेहरे पर रंग-बिरंगी छायाएँ दौड़ रही थीं। पर धीमे-धीमे मुसकराती हुई रुथ निर्मम ही बनी रही।

मिनेजिस को चुप देख कर रुथ ने शरारत से भर कर कहा था,

"चुप क्यों हो ? आज की रात सो भी पाओगे कि नहीं ?"

मिनेजिस अब तक आत्मस्थ हो चला था। उस ने कह दिया था, "जागरण की यह कोई पहली रात तो नहीं होने जा रही है रुथ। और फिर अगर कोई मध्य-सागर से किनारे पर आ कर डूबता है तो इस में भाग्य का ही तो दोष है।"

रुथ का उत्तर था, "किन्तु किनारे की भ्रान्ति भी तो हो सकती है मेरे प्यारे मित्र !"

"तब मुझे कोई शिकायत नहीं।" मिनेजिस ने पुरुष की तरह कहा, यद्यपि स्वर कहीं आहत था। उसे इस अर्थ की स्वीकृति उत्पीड़क ही लग रही थी कि उस को रुथ अभी दूर है।

· पर रुथ की दृढ़ता में कोई अन्तर नहीं आया था। बस उस ने मिनेजिस से हाथ मिलाया। आवश्यकता से अधिक देर तक उस का हाथ हाथ में ले कर आँखों ही आँखों मुसकराती रही और मिनेजिस उन मुसकराती हुई आँखों पर तरल दृष्टि की वर्षा करता रहा।

डैक पर मेरी बगल में लेटे हुए रुथ ने सहसा कहा था, "मित्र से मैं ने जो कहा उसे तुम ने सच तो नहीं मान लिया ?"

सोने से पूर्व यात्रियों ने सामान इधर-उधर किया था। कुछ ने बँधे बिस्तर खोल लिये थे और जहाँ सिर्फ दरियाँ बिछी थीं वहाँ उन्हें सँवार लिया था। इस से थोड़ी जगह निकल आयी थी। रुथ के आदेशानुसार मैं ने बक्स रेलिंग के सहारे खड़ा कर दिया था और होल्ड-ऑल उपलब्ध स्थान में खोल दिया था। होल्ड-ऑल चौड़ा था। फ़र्स्ट क्लास की स्लीपिंग बर्थ जितनी जगह निकल आयी थी।

किन्तु उतने स्थान में एक अपरिचिता या कि सद्यःपरिचिता के साथ सोने में मेरे संस्कार बाधक हो रहे थे। रुथ अपनी फ्रॉक को घुटने तक खींच कर सैण्डल पहने-पहने लेट गयी थी। लेटे-लेटे ही उस ने अपनी सैण्डलों को एक-दूसरे पैर की मदद से उतार कर पाँवों के पास ही पड़े

रहने दिया था। गोरे पतले सुन्दर पाँव सैण्डलों से मुक्त हो कर एक बार को कबूतर से फड़फड़ाये, फिर तारों की ज्योति से विधे उस छिन्न अन्धकार में विशिष्टता के साथ सहज मुद्रा में आ गये।

मैं उस झीने अन्धकार कि धुँधले प्रकाश में वह सब स्पष्टता से अनुभव कर रहा था। पर मैं खड़ा ही था। मुझे खड़ा देख कर रुथ बोली थी, "क्या सोच रहे हो? मन में कोई उलझन है?"

मैं आदेश-प्राप्त शिशु सा होल्ड्-ऑल पर ही बैठ गया था और उस बैठने में उस के अंगस्पर्श को बचा न सका था। मुझे बैठा देख कर उस ने कहा था, "लेट जाओ। कब तक यों बैठोगे? मुझे तुम्हारे लेटने से कोई एतराज़ नहीं। तुम्हें तो नहीं?"

यद्यपि अभी भी मैं उस के पाँवों की ओर ही देख रहा था, किन्तु मुझे लग रहा था जैसे वह यह कह कर मुसकरायी और उस मुसकराहट में हँसी की खनक है। वह खनक मैं कानों से नहीं त्वचा के स्पर्श से सुन रहा हूँ—स्पर्श वाली ध्वनि-चेतना।

और जब मैं ने घूम कर देखा तो वह सचमुच ही मुसकरा रही थी। बस मैं लेट गया था—आज्ञाकारी शिशु सा या कि हिप्नॅटिज़्म के अधीन। हिप्नॅटिज़्म के साथ ही अबादे फ़ॉरिया का स्मरण हो आया—गोन हिप्नॅटिस्ट। बाद में गोआ से चला गया था पुर्तगाल और फिर फ़ान्स। अलैक्ज़ैण्डर ड्यूमा का समवर्ती। उस के किसी उपन्यास में पात्र बन कर भी आया है। वह असाधारण हिप्नॅटिस्ट। और यह रुथ कहीं उसी की कोई वंशजा या शिष्या तो नहीं?

अजीब स्थिति थी। मन उस सम्पर्क के प्रति अनिच्छुक के बजाय इच्छुक ही था। फिर भी उस परिस्थिति को स्वीकृति नहीं दे पा रहा था। और लेट जाने के बाद भी मैं कहीं सिकुड़ा हुआ था। लक्ष्मणरेखा सा अन्तराल बीच में बना कर अपनी नैतिकता की रक्षा करना चहता था। पर मेरी बनायी वह लक्ष्मणरेखा कितनी हास्यास्पद थी। रुथ की साँसें

तक उस को उल्लंघित कर डालती थीं। उस के बालों की लटें तक उचक कर उसे पार कर लेती थीं। और मेरी अपनी साँसें ही कौन सी अवरुद्ध होंगी। मेरी अपनी वासनाएँ तो निश्चित रूप से उस लक्ष्मणरेखा के पार रुथ की परिक्रमा कर रही थीं।

और जब कि मैं इस स्थिति से उबर ही न पाया था रुथ ने कहा था, "मिन को मैं ने जो कहा उसे तुम ने सच तो नहीं मान लिया?"

मैं रुथ की बात का कोई उत्तर ही नहीं दे पाया था। पर उसे उत्तर की अपेक्षा थी। इसी से फिर पूछा, "तुम ने मेरी बात का जवाब नहीं दिया?"

मैं ने कह दिया था, "सोच रहा था कि क्या उत्तर दूँ। कैसा उत्तर तुम्हें प्रिय हो सकता है?"

धीमे से मेरा स्पर्श करती हुई उस की अँगुली अचानक ही सख्त हुई और उस ने मेरी छाती पर उस एक अँगुली से ठोकर सी मारी। किन्तु जहाँ वह ठोकर लगी, कमीज का बटन था। उस बटन की चोट निश्चित ही दुतरफ़ा थी। मेरी छाती में तो गड़ा ही, रुथ की अँगुली को भी दुखा दिया होगा। उस को अँगुली के दुखने की कल्पना से मैं सहज भाव से व्यग्र हो उठा था और अपने हाथ से उसे सहलाते हुए बोला था, "चोट खा ली?"

उस ने कहा था, "हाँ लग तो गयी।"

"ठहरो!" मैं उस के वाक्य के श्लेष को नहीं समझा था और झट से उस अँगुली को अपने मुँह में ले लिया और दाँतों के दबाव को बचाते हुए मुँह की भाप से उसे सेंक पहुँचाने लगा।

मैं ने रुथ की ओर देखे बिना ही अनुभव किया कि वह मुसकरा रही है। मेरी मूर्खता पर या कि उद्विग्नता पर, या कि स्वयं को धोखा देने की प्रवृत्ति पर? और तभी मैं ने उस अँगुली को छोड़ दिया। कुछ अस्वाभाविकता और हलके से झटके के साथ।

मेरे आचरण की असंगति उस

...ों क्या हुआ ?" उस ने पूछा।
...न में नहीं आयी थी।
...र जाने अचानक ही मैं ने कैसे इतना बड़ा झूठ बोल दिया, "मुझे
...क तुम्हें आपत्ति हो सकती है। मेरी यह बचपन की आदत है।
...कभी अँगुली में चोट लगती तो मुँह की भाप से सेंक लिया करता
। तुम्हारी अँगुली छुयी तो बस वही समझ में आया। यह भी नहीं
...था कि यह कुछ अधिक ही है। तुम्हें बुरा लग सकता है।"

"इसलिए झटके से हटा दिया ?" उस ने फिर प्रश्न किया।

मैं जानता था कि अंगों की प्रतिक्रियाएँ वाणी से अधिक मुखर होती
हैं। और वे प्रतिक्रियाएँ जो अन्धकार में भी नहीं छिपतीं, मन को छूती
नहीं बांधती हैं। मैं ने फिर झूठ बोल दिया, "नहीं, वैसा मेरा कोई
इरादा नहीं था। घबराहट में हो सकता है वैसा कुछ हो गया हो।"

उस ने उस पर कहा, "तुम अच्छे प्रेमी हो सकते हो।"

यह प्रशस्ति मेरी समझ में नहीं आयी। मैं जानता हूँ कि मैं असफल
प्रेमी हूँ। और असफल भी इस बुरी तरह हुआ कि अभी तक उस हार
की ग्लानि से मुक्त नहीं हो पाया। कदाचित् कभी भी मुक्त न हो पाऊँ।

मुझे चुप देख कर वह बोली, "तुम समझे नहीं ? तो मैं समझा दूँ।
तुम अच्छे प्रेमी इसलिए हो सकते हो, क्योंकि तुम झूठ बोल सकते हो।
सत्य के आग्रह के साथ झूठ बोल सकते हो।"

मैं अपमानित सा हुआ। पीड़ित भी हुआ। पर प्रतिवाद में कुछ न
कह सका। कारण कि व्याख्या सत्य थी। वह कह रही थी, "अजीब
बात है कि प्यार सच की आँच में झुलस जाता है। लोग दिव्य प्यार की
बातें करते हैं। मेरी समझ में वह नहीं आता। उसी की चर्चा की जाती
है, धर्म-ग्रन्थों में भी और लौकिक ग्रन्थों में भी। पर प्यार का यथार्थ...
है कि उसे झूठ को पैडिंग चाहिए ही। उस पैडिंग के सहारे ही वह यथ...
की ठोकरें सह कर भी मिटता नहीं !"

अस...

वह शायद सच ही कह रही थी। सफल प्यार झूठ के बिना असफल ही रह सकता है। मैं अपने अपमान को भूल कर सुनता रहा, "मैं मिनेजिस के बारे में सोच रही थी। तुम्हें याद है खाने के बाद तुम थोड़ी देर को हम से कुछ अलग हो गये थे। तब मिन से मेरी कुछ और बातें हुईं। और भी अन्तरंग बातें। यह नहीं कि तुम्हारे सामने वह नहीं हो सकती थीं। मुझे उन में ऐसा कुछ भी नहीं लगता। सच कहूँ तो मैं तुम्हारे सामने कुछ भी बात कर सकती हूँ। इतनी जल्दी इतना विश्वास बना लेना और आत्मीय हो उठना अस्वाभाविक हो सकता है। मगर मैं अस्वाभाविकता में स्वाभाविकता खोजती रही हूँ। ऐसा न होता तो इस होल्ड्-ऑल की सीमा में हम समा न पाते। और जब हम सो जायेंगे, इसी तरह सो जायेंगे, तब तुम मेरे कितने क़रीब होगे, उस अस्वाभाविकता को जानते हुए भी मैं सो जाऊँगी। हो सकता है मेरी छाती का भार तुम्हारी पीठ पर जा टिके। हो सकता है तुम्हारी छाती भी आगे बढ़ कर उस भार को उठा ले। हो सकता है नीचे तकिये पर दुल चली मेरी गरदन को सहारा देने के लिए तुम्हारी बाँह आगे बढ़ आये। कुछ भी हो सकता है। और यह सब दो यात्रियों के बीच होना अस्वाभाविक है। मगर स्वाभाविक भी तो। क्योंकि हम दोनों में से एक स्त्री है और दूसरा पुरुष। स्त्री अनाकर्षक नहीं, पुरुष अभद्र नहीं। और दोनों की आयु कुछ ऐसी है कि उन्माद की अकुलाहट नहीं छोड़ पायी। फिर चाहे दोनों के प्रेम-पात्र अलग-अलग हों, यह स्वाभाविक ही होगा कि दोनों एक-दूसरे में परितोष खोजने लगें।

उस के शब्दों के पीछे जैसे एक अजीब सी आँधी बँधी थी—वासना की आँधी। किन्तु सामान्य अर्थों में नहीं। सेक्स की वासना नहीं; जीवन-वासना। वासुदेव की वासना से वासित जगत् की तरह विराट्। और इसी से वह टूटी नहीं थी। राँची के अस्पताल में रह कर भी कहीं अखण्डित थी, जीवन-वासना के सूत्र से जुड़ कर अखण्डित।

उस ने आगे कहा था, "मैं मिन की बात कह रही थी। मैं सच ही

उसे प्यार करती हूँ। मगर आज जब यथार्थ की एक ठोकर से मैं बिखर चली थी, तब झूठ बोल कर वह मुझे बटोर नहीं पाया था। उस ने मुझे बताया था कि अंगोला में एक लड़की उस से प्यार करने लगी थी। उस की माँ नीग्रो थी, बाप पोर्चुगीज। पर उस ने उन दोनों का सर्वोत्तम पाया था। और वह सचमुच ही आकर्षक थी।

कुछ रुक कर रुथ बोली थी, "जानते हो इस पर मैं ने उस से क्या पूछा था ? यही कि मुझ से भी अधिक सुन्दर ?"

वह हँसी। स्वतः हँसी; और जैसे मुझ से नहीं, खुद से बात कर रही हो, कुछ वैसे ही अन्दाज से बोली, "अजीब सा सवाल। भला क्या सुन्दरता ऐसी है कि बँट कर घट जाती है। वह तो प्राणवायु की तरह है, कितनी भी जनसंख्या बढ़ जाये। अन्न की कमी हो सकती है, जल की कमी हो सकती है, मगर साँस लेने के लिए हवा की कमी तो नहीं हो सकती। ईश्वर की बनायी सुन्दरता अक्षय है। वह बाँटने से बढ़ती ही है। एक-एक तिनके को उस ने सुन्दरता दी। कैसे-कैसे फूल बनाये। कितने प्यारे-प्यारे पतंग, पक्षी। वह सुन्दरता घटने वाली होती तो वह ईश्वर कभी का अपने आसन से गिर चुका होता। मगर ऐसा नहीं हो सकता। कभी नहीं हो सकता। यह मैं तब से जानती आयी हूँ जब अपनेआप को शीशे में देख कर खुद से प्यार करने लगी थी। सच तब से इस सत्य को जानती हूँ जब नहानघर में अपने अंगों की निर्वसन रुचिरता से मैं पहली बार लाल हो उठी थी। लजा उठी थी, जैसे परगत अनवगुण्ठित सौन्दर्य को देख लिया हो और मैं उस सौन्दर्य की भोक्ता होऊँ। यह सब जानती रही हूँ; और यह भी कि अब मेरे अंगों में शिथिलता आ गयी है। फिर भी मैं ने मिन से जब वह सवाल किया तो क्यों किया ? इसलिए कि मैं उस की प्रेमिका थी। उस की दृष्टि में सुन्दर केवल मैं हो सकती हूँ। सुन्दर ही नहीं, सुन्दरता की सीमा। और तब मैं उस से एक ही उत्तर की अपेक्षा कर सकती थी, चाटुकारितापूर्ण उत्तर की अपेक्षा।"

उसे प्यार करती हूँ। मगर आज जव यथार्थ की एक ठोकर से मैं विखर चली थी, तव झूठ वोल कर वह मुझे वटोर नहीं पाया था। उस ने मुझे वताया था कि अंगोला में एक लड़की उस से प्यार करने लगी थी। उस की माँ नीग्रो थी, वाप पोर्चुगीज। पर उस ने उन दोनों का सर्वोत्तम पाया था। और वह सचमुच ही आकर्षक थी।

कुछ रुक कर रुथ वोली थी, "जानते हो इस पर मैं ने उस से क्या पूछा था? यही कि मुझ से भी अधिक सुन्दर?"

वह हँसी। स्वतः हँसी; और जैसे मुझ से नहीं, खुद से वात कर रही हो, कुछ वैसे ही अन्दाज़ से वोली, "अजीव सा सवाल। भला क्या सुन्दरता ऐसी है कि वँट कर घट जाती है। वह तो प्राणवायु की तरह है, कितनी भी जनसंख्या वढ़ जाये। अन्न की कमी हो सकती है, जल की कमी हो सकती है, मगर साँस लेने के लिए हवा की कमी तो नहीं हो सकती। ईश्वर की वनायी सुन्दरता अक्षय है। वह वाँटने से वढ़ती ही है। एक-एक तिनके को उस ने सुन्दरता दी। कैसे-कैसे फूल वनाये। कितने प्यारे-प्यारे पतंग, पक्षी। वह सुन्दरता घटने वाली होती तो वह ईश्वर कभी का अपने आसन से गिर चुका होता। मगर ऐसा नहीं हो सकता। कभी नहीं हो सकता। यह मैं तव से जानती आयी हूँ जव अपनेआप को शीशे में देख कर खुद से प्यार करने लगी थी। सच तव से इस सत्य को जानती हूँ जव नहानघर में अपने अंगों की निर्वसन रुचिरता से मैं पहली वार लाल हो उठी थी। लजा उठी थी, जैसे परगत अनवगुण्ठित सौन्दर्य को देख लिया हो और मैं उस सौन्दर्य की भोक्ता होऊँ। यह सव जानती रही हूँ; और यह भी कि अव मेरे अंगों में शिथिलता आ गयी है। फिर भी मैं ने मिन से जव वह सवाल किया तो क्यों किया? इसलिए कि मैं उस की प्रेमिका थी। उस की दृष्टि में सुन्दर केवल मैं हो सकती हूँ। सुन्दर ही नहीं, सुन्दरता की सीमा। और तव मैं उस से एक ही उत्तर की अपेक्षा कर सकती थी, चाटुकारितापूर्ण उत्तर की अपेक्षा।"

रुथ इतना कह कर हँस पड़ी थी, क्षीण विक्षिप्तता का आभास देने वाली हँसी। और उस हँसी की लहर के डूब जाने पर बोली, "मगर उस ने जो जवाब दिया उस से मैं चोट खा गयी। जानते हो उस ने क्या कहा? यही कि उतनी सुन्दर स्त्री उस ने नहीं देखी। रंग उतना गोरा नहीं था, नक्श उतने तीखे नहीं थे। मगर वह जो कुछ थी, अपने-आप में सम्पूर्ण थी। कड़ुवी शराब के मीठे नशे से शराबोर।"

यह कहते हुए रुथ ने मेरे एक हाथ की अँगुलियों के अन्तराल में अपनी तर्जनी को घुमाना शुरू कर दिया था। और कहा था, "पर मैं सोचती हूँ मिन ने यह क्यों नहीं कहा कि मेरे सामने उस की सुन्दरता कहीं टिकती ही नहीं। कुछ भी कह सकता था। वैसा न मानते हुए भी कह सकता था। और तब मैं उस से रात भर उस लड़की के बारे में सुन सकती थी। और अगर उस का कोई फ़ोटो भी उस के पास होता तो उस फ़ोटो को देख कर स्वयं उस के रूप की तारीफ़ कर सकती थी—इतनी कि अपने से अधिक। मिन से साफ़ कह देती 'कि तुम चापलूस हो। मुझे खुश करने के लिए तुम ने उसे मुझ से कम सुन्दर बताया। मगर सच कुछ और है। वह बेहद सुन्दर है। मैं कभी भी उतनी सुन्दर नहीं रही।' मगर उस ने मुझे वह अवसर ही नहीं दिया। उस से झूठ बोला नहीं गया और मुझ से यह सच सहा नहीं गया। अब जब तुम्हारी साँसें खुले गले की कोमल त्वचा को सहला रही हैं और नीचे की ओर फिसलती हुई कुछ अनधिकार सी चेष्टा कर रही हैं, मैं बराबर सोच रही हूँ कि मिन ने झूठ क्यों नहीं बोला। यही तो एक अवसर होता है [illegible] झूठ किसी भी सच से अधिक निर्दोष और पवित्र होता है। [illegible] नहीं, इसलिए झूठ की संज्ञा दे रही हूँ। नहीं तो वह झूठ से [illegible] सच से भी परे है और दोनों से कहीं महान् है।"

यह कहते-कहते उस ने मेरे बायें हाथ की मध्यमा [illegible] अँगुलियों में ले ली थी और अनजाने ही पीछे की ओर [illegible]

ड़ा पहुँचा रही थी। मैं किसी तरह होंठ काट कर उस पीड़ा को सह
हा था। जैसे उस ने अपने समूचे शरीर की शक्ति उस अँगुली पर डाल
ी थी और वह किसी क्षण भी टूट सकती थी। इस से पूर्व कि मैं सचमुच
हीं कराह उठता वह सावधान हो गयी थी और उसे अपनी उस क्रिया
का एहसास भी हो गया था। इसी से बोली थी, "उफ़, मैं भी क्या क
रही थी और क्या कर रही थी। तुम्हारी अँगुली को तोड़ ही दि
होता। सच बहुत दुख गयी होगी।"

मैं अनायास कह उठा था, "नहीं, वैसा तो कुछ नहीं।"

"फिर झूठ। फिर सफ़ेद झूठ।" उस झूठ को सुन कर रुथ कह उठी
थी, "इतना झूठ मत बोलो, नहीं तो मैं तुम से प्यार करने लगूँगी। तुम
जानते ही हो कि मिन मेरा प्रेमी है। सच बोल कर भी मेरा प्रेमी है।
फिर तुम क्यों उसे अपदस्थ करना चाहते हो? झूठ बोल कर क्यों मुझे
प्यार करने को मजबूर कर रहे हो?"

प्यार की जटिलता का मैं निरन्तर ही शिकार होता रहा हूँ। रु
का प्यार भी असाधारण रूप से जटिल था। मेरा मन उस के लि
सन्तप्त हो उठता और इच्छा होती कि उसे अपने वक्ष के इतने सम
समेट लूँ कि हम दोनों के बीच की लक्ष्मणरेखा सदा के लिए तिरो
हो जाये और उस के केशों का सुवास मेरे नासापुटों में कुछ ऐसे
जाये कि फिर कोई गन्ध सुगन्ध ही न रह जाये। रुथ, मुझे लग र
जैसे भीतर ही भीतर आँसुओं से भीग उठी थी। उस की धमनि
अब रक्त नहीं आँसू बह रहे थे और साँसों में सिर्फ़ आहें थीं। स
या कि झुलसा डालने वाली आहें।

मगर मैं टस से मस न हुआ। जैसे चेतना शरीर से मुक्त
उस की अनुभूति मात्र वायवी रह गयी थी। फलत: हम दो
मौन मुखर हो रहा था। मैं बोलने की अकुलाहट से भरा थ
या कि बोल कर मैं रुथ का बोझ हलका कर सकूँगा। फिर भ

पा रहा था। कारण कि कुछ भी बोलने से पहले मैं मन में वाक्यरचना कर लेना चाहता था। मगर शब्द साथ नहीं दे रहे थे। वाक्य टूट-टूट जाते थे। और जितना ही प्रयत्नशील मैं उस दिशा में हुआ उतना ही असमर्थ होता चला गया।

बस बोल ही नहीं पाया।

मौन उसी ने तोड़ा, "तुम्हारी करवट तो नहीं दुख गयी ?"

एकदम नया प्रसंग। स्वर में अवसाद था, पर पहले जितना बोझ नहीं। मैं ने कह दिया, "नहीं।"

वह बोली, "संकोच मत करना। तुम मेरी तरफ़ पीठ कर लोगे तो मैं बुरा न मानूँगी। सच ही एक करवट कोई कितनी देर तक सो सकता है। चाहो तो हम साइड भी बदल सकते हैं। तुम इधर आ जाओ मैं उधर चली आऊँ। मगर ऐसे तो तुम सो ही नहीं पाओगे। इसी से कहती हूँ कि करवट ले लो।"

"तुम करवट बदल लो न। तुम भी तो एक ही पार्श्व से लेटी हो।" मैं ने स्नेह भाव से कहा था।

उस का कोमल उत्तर था, "मैं ऐसे नहीं थकती। शरीर से नहीं थकती। थक भी जाती हूँ तो सह लेती हूँ। मन की थकान से हार जाती हूँ। पर भाग्य कुछ ऐसा पाया है कि मन ही पहले थक जाता है। अजीब बात है न ?"

मैं उस के सन्तोष और समाधान के लिए जल्दी से कुछ कह डालना चाहता था। पर इतना अभिभूत हो उठा था कि कुछ सूझा ही नहीं। विचारों की या कि बातों की इतनी दरिद्रता मैं ने कभी नहीं जानी। अपने कुछ न कहने पर मैं खीज ही उठा था।

रुप भी जैसे चाहती थी कि मैं कुछ बोलूँ। उस ने कहा भी, "तुम चुप ही हो ?"

"नहीं तो," मैं ने कहा और फिर चुप हो गया। कुछ हँसी की सी

पर विवशता हो तो क्या करूँ ? तब वह कुछ हल्के से हँस कर, "तुम थक चले हो लगता है । मेरे बावलेपन ने तुम्हें आराम करने हीं दिया । अच्छा सो जाओ । जिस करवट सुख मिले सो जाओ । हारी दुविधा मिटाने को मैं खुद करवट ले लेती हूँ । मेरे करवट लेने तुम आप ही सुख से लेट जाओगे ।"

बस वह करवट लेने चली ही थी कि मैं ने भुज-मूल पर से जीरो स्लीव त झाँकती उस की स्निग्ध भुजा को पकड़ कर थाम लिया था और साथ ही कहा भी, "नहीं, मैं सोना नहीं चाहता । आज की रात सिर्फ़ जागना चाहता हूँ । जाग कर तुम्हें सुनते रहना चाहता हूँ ।"

उत्तर में उस ने प्यार के साथ कहा था, "पर मेरी बाँह तो मत तोड़ो । क्यों भूलते हो कि मैं स्त्री हूँ ।"

मैं ने अपना हाथ समेट लिया । पर हाथ दूसरे ही क्षण वापस चला गया था और मैं उस स्थल को धीरे-धीरे सहलाने लगा था । 'क्यों भूलते हो कि मैं स्त्री हूँ'—ये शब्द विशेष अर्थ ले कर प्रत्यक्ष हो रहे थे उस सुन्दर देह की वक्रता, वर्तुलता, मांसल स्निग्धता और रक्तप्रवाही ऊष्मा में । जैसे वह सुन्दर देह कोई विद्युत्-यन्त्र था जिस से हलकी शक्ति की विद्युत्-लहरें हर साँस के साथ विकीरित हो रही थीं और मेरा हाथ उन लहरों का कण्डक्टर बन कर स्वयं मुझे उस विद्युत्-यन्त्र का उपयन्त्र ब रहा था । मुझे स्पष्ट अनुभूति हो रही थी कि ज्यों-ज्यों वे विद्युत्-तरंगें देह में समाती जा रही थीं त्यों-त्यों मेरी स्वाधीनता मिटती जा रही थ इच्छा रखते हुए भी मैं उस कण्डक्टर-हाथ को उस देह-यन्त्र से हटा पा रहा था । मन की इच्छा का शरीर की उस ऑटोमैटिक क्रि कोई सम्बन्ध रह ही नहीं गया था ।

इसी तरह मोह भरे क्षणों की परम्परा पृथुल होती गयी । मेरे

ओर का जन-समाज परोक्ष पड गया था। उस समय मैं केवल दो ही देहों की उपस्थिति का अनुभव कर रहा था और जैसे ये ही दो देह बिजली के निगेटिव पॉज़िटिव तारों की तरह समस्त ब्रह्माण्ड के चेतना-केन्द्रों का संचालन कर रहे थे। मौन उस अनुभूति को गहनता दे रहा था।

मुझे लग रहा था कि रुथ की साँसें तीव्र हो चली हैं और उन की ऊष्मा मुझे तरलता दे रही है। कभी लगता उन साँसों के उद्गम में दुर्निवार चुम्बकत्व है जिस से मेरी चेतना अधोगति प्रपात सी उधर ही खिंच रही है। मुझे अपनी आँखों में जलन, अपने होंठों में तड़पन और अंगों में टूटन अनुभव हुई। जैसे स्नायु स्फीत हो कर फटना चाहते हों। पता नहीं क्या होता यदि रुथ अपनी मीठी पोर्चुगीज़ में फिर से बोल न उठी होती, "तुम चुप हो?"

इन शब्दों ने इन्सुलेशन का काम किया। उस देह से जो विद्युत्-तरंगें मुझ में प्रवाहित हो रही थीं उन का प्रवाह टूटा और उस की बाँह को सहलाता हुआ मेरा हाथ ठिटका, ठहरा और फिर सिमट कर अपनी जगह लौट आया।

रुथ कह रही थी, "ऐसे रात थोड़े ही बीतेगी। सो सको तो सो लो। नहीं तो कुछ बोलो।"

मैं आविष्ट स्वर में कहना चाहता था, "तुम बोलो रुथ, तुम बोलो। मेरी चेतना की हर परत रिकॉर्डिंग-टेप बन कर तुम से प्रेषित हर ध्वनि को अंकित कर लेना चाहती है। मैं माइक्रोफ़ोन से अधिक कुछ नहीं, जो स्वयं नहीं बोलता किन्तु अपने माध्यम से बोले गये हर शब्द को प्रसारित करता है। तुम शब्द-मय हो उठती हो तो संगीत प्रवाहित हो उठता है। मैं अकर्ण सर्पवत् त्वचा के संवेदनों से उस संगीत को पीते रहना चाहता हूँ मुझे चुप ही रहने दो। पर तुम चुप मत होओ और कभी चुप न होना। ओ रुथ,..."

और मुझे चमत्कृत सा करती रुथ बोल उठी, "मेरे प्यारे 'रलू',

री बात मैं सुन रही हूँ। तुम्हारे अनकहे एक-एक शब्द को समझ रही। पर जीवन में वे क्षण बहुत ही पीड़क और फिर भी आनन्ददायी होते जब व्यक्ति उन अनकहे शब्दों को समझ कर भी सुनना चाहता है। मैं ी सुनना चाहती हूँ। चुप मत रहो।''

एक अजीब कृत्रिमता से जैसे मैं लिपटा जा रहा था। मेरे स्वप्न कुछ और थे, मेरी वासनाओं की दिशा कुछ और थी। वैसे ही रुथ के स्वप्न कुछ भिन्न थे। उस की वासना की दिशा सर्वथा पृथक् थी। फिर भी उस अत्यन्त कृत्रिम परिस्थिति में हम दोनों अत्यन्त सहज रूप से एक दूसरे की ओर आकृष्ट हो रहे थे। पर जैसे वह आकर्षण किसी विकर्षण से सन्तुलित था। लक्ष्मणरेखा का विकर्षण। मैं लेटा न रह सका। अचानक उठ बैठा और फिर रुथ के मुँह पर झुक कर जाने क्या सोचने लगा।

रुथ जैसे मेरी हर अन्तरंग चेष्टा को पढ़ सकती थी। बोली, "मुझे देखने का नाटक कर रहे हो, या खुद को मेरी आँखों में खोज रहे हो?"

रुथ सीधी लेटी थी, सिर तकिये के बावजूद पीछे को लुढ़का था। गले की नसें तन कर त्वचा को पारदर्शिता दे रही थीं। उस झीने अन्धकार मे भी मैं उन स्नायुओं का वक्ष की दिशा में प्रसरण देख रहा था। वह प्रसर पिण्डीभूत हो कर कण्ठ के नीचे वक्ष प्रदेश में मनोहर ढंग से जम सा ग या और पिण्ड-शिखर पर से फिर ढलान शुरू हो कर उदर क्षेत्र संकीर्णता में फैल गया था। कण्ठ से उदर तक सर्पिल रेखा सा आ अवरोह देह की सहज बनावट उभारने वाली फ़ाँक को फाड़ कर जैसे होना चाहता था। और रुथ कह रही थी कि मुझे देखने का नाटक रहे हो या....

मैं सहसा कह उठा था, "रुथ, जीवन में ऐसा भी होता है? होता है? परिचय से अपरिचय की सीमा में जाते देर नहीं अपरिचय से परिचय की सीमा में बंधते देर नहीं लगती। पर यह होता है? होता ही नहीं, होता रहता है। और प्यार क्या है?

से परिचय भी, परिचय में अपरिचय भी। किन्तु इस सब कुछ से निरपेक्ष क्यों नही ?"

मैं क्षण भर रुक कर स्वयं उत्तर देने लगा था, "जानता हूँ रुथ कि निरपेक्ष क्यों नही ? तब वह असंग हो उठेगा। भक्ति से भी कुछ अधिक, ईश्वर के कही समीप। पर वैसा उस में कुछ नही। इस भौतिक प्यार मे कुछ नही।"

मैं फिर रुका और पुन. शंकाऍं ले कर बोल उठा—"पर यदि ऐसा है तो यह आकर्षण का संघर्ष क्यों ? यह विकर्षणों की पीड़ा क्यो ? मुझे लगता है रुथ कि तुम सब कुछ जानती हो। मेरी हर शंका का समाधान तुम्हारे पास है।"

रुथ ने लेटे-लेटे अपनी गोरी भुजाएँ ऊपर को उठायी थी और फिर उस के हाथो की अंजुलि मेरे मुख की ओर बढ़ गयी थी। उस अंजुलि में ही जैसे मेरा मुख उग आया था। अपने हाथो को उसी तरह रखे हुए बोली थी, "हाँ, तुम्हारे हर प्रश्न का उत्तर मेरे पास है। कारण कि मैं ने दुनिया को तुम से ज्यादा जाना है। पर तुम भी मेरे समानधर्मा हो, कारण कि पीड़ा से तुम्हारा परिचय भी कम नही।"

दोनों के ही संवाद अति नाटकीय। पता नही स्वयं पर अयथार्थ रोपने की वह अवचेतन की प्रक्रिया थी या अयथार्थ में डूब कर यथार्थ को पा लेने की चेतना की चाल।

मैं द्विधा हो कर इन दोनों परिस्थितियों को समझने की चेष्टा कर रहा था। तभी अधिक यथार्थमयी हो कर रुथ बोली, "यों मेरी बाँहें थक जायेंगी। तुम लेट जाओ या मुझे भी उठा कर बिठा दो।"

वह अपनी बाँहें समेट सकती थी। खुद भी उठ कर बैठ सकती थी। फिर भी वैसा स्वयं नही कर रही थी। मैं ने उस की अँगुलियों में अपनी अँगुलियाँ उलझा कर उसे अपनी ओर खीच कर उठा लिया था। शिथिल ग्रीवा सिर और बालो के बोझ के सहित उस तनाव में पीछे को

थी। जैसे वक्ष के भार को सन्तुलित कर रही हो और फिर एक के साथ तन कर सिर को सीधा कर लिया था। अब रुथ भी बैठी । मैं भी बैठा था। और सच तो यह था कि पूर्व स्थिति में कोई तर न था। हम दोनों ही अपने-अपने यथार्थ को खोज रहे थे। पर ल यह थी कि समानधर्मिता के भ्रम में स्वयं अपने भीतर न खोज कर क-दूसरे में खोज रहे थे।

रुथ के बैठते ही मैं कह उठा था, "जानती हो रुथ, मैं एक प्रवंचित इनसान हूँ।"

उस ने कहा कुछ नहीं। जैसे मौन से ही ध्वनित किया हो कि कोई अचरज नहीं हुआ सुन कर। ऐसा न होता तो शायद अचरज होता।

पर मैं अब कहने के मूड में था। इसलिए उस के मौन से निरुत्साहित न हो कर कहता गया, "पर तुम ही बताओ, क्या यह मेरी भूल थी जो मैं ने एक विवाहिता से प्यार किया?"

क्षण भर को मुझे लगा कि वह मेरे मूर्खता भरे सवाल पर हँस पड़ेगी। उस के होंठों के कोणों में जो हलकी सी लहर उठ कर निकल गयी थी, पता नहीं वह उस हँसी की भ्रूण-हत्या थी या उभरने से पहले ही डूब चले व्यंग्य की आखिरी झलक। पर वह चुप ही रही। उस ने कुछ नहीं कहा। बस आँखें ओक सी खुली रहीं—प्यासे के होंठों से लगी ओक जो जलधारा के गिरने की प्रतीक्षा में हो।

मैं ने ही कहा, "मेरी यह कथा बहुत लम्बी भी है और बहुत छो भी। लम्बी इसलिए कि हम बचपन से एक-दूसरे को जानते और प करते आये हैं। हमारा प्यार भले ही स्त्री-पुरुष का प्यार न रहा हो दो अच्छे मित्रों का प्यार अवश्य था। और उस प्यार में भी यह ए कभी नहीं मिला था कि वह दिन पर दिन एक खूबसूरत तरुणी हो रही है और मैं एक युवा। छोटी यह कथा इसलिए है कि उस कहानी को शक्ल ली तो इतनी जल्दी बढ़ी, इतनी जल्दी पूरी हुई

उस अन्त के लिए तैयार तक न हो पाया।

रुथ हँसने लगी थी। पर उस हँसी में उपहास नहीं करुणा थी, आत्मकरुणा जैसे ध्वनित किया हो कि जब जीवन कहानी बनता है तो ऐसा ही होता है। सत्य कल्पना से भी अधिक विचित्र होता है। यह उक्ति जीवन के सब से बड़े सत्य का प्रतिनिधित्व करती है।

मैं सुनाता गया, "जानती हो, वह मेरी नहीं परायी है यह अहसास मुझे कब हुआ? तब जब वह विवाहित हो चुकी थी। नहीं, मैं अपनी बात ठीक से नहीं समझा पाया। हम दोनों बहन-भाई की तरह बढ़ते गये थे। बहन-भाई को एक-दूसरे से जितनी अपेक्षा होती है उतनी ही अपेक्षा हमें भी परस्पर थी। पर जब प्यार पत्नी, माँ आदि के रूपों में बँटने लगता है या पति पिता की आकृति लेता है तो भाई-बहन के सहज प्यार में दूरियाँ भरने लगती हैं। सनातन सी बात है; पर मैं क्यों बता रहा हूँ यह सब, जानती हो? इसलिए कि हम रक्त के सम्बन्ध से भाई-बहन न थे। हम स्नेह की निरपेक्षता के कारण कुछ वैसे थे। और मैं ने यह मान लिया था कि हमारा स्नेह सदा निरपेक्ष बना रहेगा। कोई परिस्थिति उस में परिवर्तन न ला सकेगी। इसी से उस के विवाह के लिए भी मैं भाई की तरह ही प्रयत्नशील रहा। और वह विवाह भी हुआ मेरे अपने माध्यम से ही : मेरे अपने एक मित्र से, भाई जैसे मित्र से।

इतना कह कर मैं ने रुथ के मुख को देखा जैसे मेरी गाथा वहीं अंकित थी और मैं उस मुख पर से ही उसे पढ़-पढ़ कर सुना रहा था। आस-पास के लोगों की नींद न भंग हो, इसलिए हम होठों ही होंठो में बातें कर रहे थे। और फिर भी चारों ओर के मीठे अन्धकार की दी हुई आत्मीयता का आभोग करते हुए दो से तीसरे की सदेह कल्पना के प्रति अनास्थ थे। रुथ का निर्भाव चेहरा ही जैसे कह रहा था : हाँ कहो, आगे कहो, मैं सुन रही हूँ।

मैं बिना सोचे ही रुथ की दिशा में कुछ और सिमिट कर कहने लगा

तव वह विदा हुई तो मुझे लगा कि मैं ने कोई भूल की है। मैं ने
प्रिय को त्याग दिया है। मैं ने किसी अदेय का दान कर दिया है।
वह पीड़ा स्वजनों की पीड़ा न थी। माँ-वाप, भाई-वहन, सगे-
न्धी सभी तो रो पड़ते हैं ऐसे अवसरों पर। कण्व जैसे ऋषि पालिता
ा की विदाई पर रो पड़ते हैं। स्वयं विदा कर ले जाने वाले रो
ते हैं। पर मेरी पीड़ा उन सब से विलक्षण थी। कर्ण ने कुन्ती को
पने जन्मना प्राप्त कवच को दान देते हुए वह पीड़ा नहीं पायी होगी जो
ैं ने तव भोगी। जैसे अपनी त्वचा को ही चीर कर किसी दूसरे को दे
दिया। फिर भी जाने क्यों उस क्षण पीड़ा के इस रूप को इतनी स्पष्टता
से नहीं जान पाया था। तव मैं ने यही सोचा था कि मैं भी ठीक वैसे ही
रो रहा हूँ जैसे उस के माता-पिता, भाई-वहन, स्वजन।

मेरा एक हाथ रुथ के घुटने के पास ही टिका था। वह मेरी कथा
सुन रही थी और उस हाथ की पीठ पर अपने लम्बे नाखून गड़ा रही थी।
पता नहीं उसे वोध नहीं रहा था कि उस हाथ का सम्वन्ध किसी प्राणवान्
से है, या मुझ में वह वोध जगाने के लिए ही यह पीड़ा दे रही थी जिस
से अतीत की पीड़ा फिर निविड न हो उठे।

पर मुझे नख की यह चुभन अप्रिय नहीं लग रही थी। उस चुभन का
एक अतीत भी था। तव ऐसा क्यों हुआ था, और अव ऐसा क्यों हो
रहा है, समझ में नहीं आ रहा था। मैं उस अतीत को पुनरुज्जीवित कर
हुए कह रहा था, "एक दिन, हाँ शादी के वाद ही, हम दोनों ऐसे ह
वैठे थे। इतने ही निकट, कुछ ऐसे ही आत्मलीन। तृतीय कोई नहीं
पर रात न थी, जेठ की दोपहरी थी। शादी के कई वर्ष वाद की वात
वह तीन वच्चों की माँ हो चुकी थी। वड़ा छह वर्ष का था। तीन
वच्चे दूसरे कमरे में सोये थे। पति दफ़्तर में थे और हम दोनों यूँ ही
थे। और तव उस ने मेरे अपने इसी हाथ की पीठ पर, जो उस
उस के घुटने के पास कुछ ऐसे ही, नहीं विलकुल ऐसे ही पड़ा था

तर्जनी के पतले-लम्बे नाखून को गड़ाते हुए कहा था, 'मैं तुम से एक बात कहना चाहती थी, जाने कब से कहना चाहती थी। पर नहीं कह पायी और अब जब कहने जा रही हूँ तो तुम मुझे कहने से रोकना मत। पूरी बात सुन लेना।'

"मैं ने उत्सुकता से पूछा था—क्या बात? उस का उत्तर था—मैं इस विवाह से खुश नहीं।"

"मुझे ताज्जुब ही हुआ। विवाह के सात वर्ष बाद यह बोध, तीन बच्चों की माँ हो चुकने पर यह अनुभूति। मेरे अचरज को समझते हुए जैसे बोली थी—ताज्जुब न करो। मैं आज से नहीं, विवाह के तुरत बाद से ही खुश नहीं। फिर भी मैं किसी तरह निबाह करती आयी हूँ—समाज के लिए, परिवार के लिए, उन के लिए, बच्चों के लिए। और इसी से अपने लिए कुछ सोचा ही नहीं। पर लगता है अब मैं इस बोझ को ढो न पाऊँगी। मुझे अपने बारे में सोचना ही होगा।"

"उस की साँस फूल उठी थी और दम कहीं फूलते-फूलते टूट न जाये, इस आशंका से जल्दी से कह उठी थी—मैं अब तुम्हारे बिना नहीं रह सकती। तुम ने मुझे दूसरे को क्यों सौंप दिया था? मैं तो तुम्हारी थी। बचपन से तुम्हारी थी। बड़ी होने पर तुम ने परायी क्यों बना दिया?"

"मैं सन्न रह गया था। फिर भी मैं कहीं प्रसन्न था। निगूढ़ मन के किसी गहरे अन्तराल में इस प्रसन्नता का बीज जाने कब से आवश्यक पुष्टि पा कर धरती को फोड़ सूरज की किरन का स्वागत करने को उत्सुक था। और तभी मुझे लगा कि शायद जो वह कह रही है वही सच था। तभी उस की विदा पर मैं उस तरह पीड़ित हुआ था, वह अन्य जनों जैसी पीड़ा न थी। तब जिस सत्य को मैं नहीं देख पा रहा था, उसी सत्य को अब रोम-रोम से अनुभव कर रहा हूँ।"

रुप ने अपने हाथ को अनजाने ही समेट लिया था और वह व्यथा भरी आँखों को दूसरी दिशा में ले जा कर जाने क्या सोचने लगी थी।

मैं भी रुथ की दृष्टि की दिशा में देखने लगा था। हम दोनों की याँ समानान्तर वह रही थीं और उन के अन्तराल में मौन भर उठा। रुथ क्यों निरपेक्ष हो उठी थी। समझ में नहीं आ रहा था। हो कता है कि वह निरपेक्षता न हो कर निर्वेद हो। पर जब मौन दीर्घ हो ला तो रुथ ने बिना मेरी ओर देखे हुए ही कहा, "चुप क्यों हो गये ?"

प्रश्न का प्रश्नमय उत्तर था, "तुम सुनना चाहती हो ?"

कोई तर्कात्मक उत्तर न दे कर उस ने कहा था, "कहो भी।"

मैं निर्भ्रान्त हुआ। स्वर में आग्रह था। वे दोनों ही शब्द आज्ञात्मक थे। और मैं ने आप-बीती सुनानी शुरू कर दी, "ज़्यादा कुछ कहने को नहीं। सभी कुछ नाटकीयता पूर्वक घटता गया। मैं ने मन से प्राणों से उस के समर्पण को स्वीकार कर लिया था। फिर भी उसे मुक्त रखते हुए कहा था—"मैं तो तुम्हारा हूँ ही, जिस रूप में भी मुझे अपना कर सुखी हो सको उसी में मेरा सुख है। पर जल्दी की कोई बात नहीं, थोड़ा और सोच लो।"

"मेरी यह उदारता उसे अपमानित कर गयी थी। उस ने तनिक तेज़ स्वर में कहा था—तुम्हारे थोड़े की परिभाषा क्या है ज़रा मैं भी तो सुनूँ? सात वर्ष क्या कुछ होते ही नहीं? तीन बच्चों की माँ बन कर क्या मैं ने सब्र से काम नहीं लिया ?"

"मैं कोई तर्क नहीं करना चाहता था। फिर भी मैं ने अनायास क दिया था—तुम्हें बच्चों से भी चिढ़ है ?"

"यह सुन कर वह ठिठकी थी। इस प्रश्न के लिए तैयार ही न थ उस क्षण मैं ने उस की आँखों में भ्रान्ति देखी थी। पता नहीं बच्च प्रति मोह की भ्रान्ति या कि डोलते हुए निश्चय की। उसी मनोदि उस ने कह दिया था—इस समय मैं टूटी हुई हूँ, मुझ से बहस मत

मुझे कमज़ोर मत बनाओ। मैं ने तुम्हारी तरफ़ सहारे के लिए हाथ बढ़ाया है। तुम मेरे पाँवों के नीचे फिसलन न पैदा करो। जानते हो माँ अपने बच्चों से यूँ ही हार जाती है। पाप की सन्तान तक को वह छोड़ नहीं पाती। फिर तुम उन बच्चों की चर्चा क्यों करते हो, जो मेरे जीवन के पवित्रतम समर्पण का फल हैं?"

"उस का यह अन्तिम वाक्य मुझे अच्छा नहीं लगा था," कहते हुए मैं ने रथ की ओर देखा। वह अभी भी मुझ से दृष्टि बचाये थी। अपनी प्रतिक्रिया पर उस की प्रतिक्रिया मैं जान ही नहीं पाया और कहता गया, "सुनती हो रथ, मैं सच ही कहीं आहत हुआ था। उस का द्विभाजन मुझे अच्छा नहीं लगा था। मैं खुश होता यदि उस ने कहा होता कि मैं किसी को कुछ नहीं जानती। माता-पिता, पति-बच्चे किसी को नहीं जानती। मेरे लिए वह अतीत मिट चुका है जिस में तुम नहीं। अब मैं तुम्हारे लिए नये सिरे से जन्मी, नयी ज़िन्दगी ले कर, सिर्फ़ तुम्हारी ही सीमाओं में रहना चाहती हूँ। मगर उस ने ऐसा कुछ भी नहीं कहा था। इसी से मैं ने भावुकता का अभिनय करते हुए कहा था—तुम यह क्यों नहीं मान लेतीं कि तुम अपने लिए जितना जी सकती थीं जी चुकीं, अब तुम्हें अपने बच्चों के लिए जीना है। बड़ा लड़का माता-पिता के सम्बन्धों को अच्छी तरह जानता है, उन्हें अपने लिए आदर्श और पवित्रतम मानता है। तुम उस के विश्वास की ही दिशा बदल दोगी अगर तुम ने अपने इस निश्चय को नहीं बदला।"

क्षण भर रुक कर मैं ने कहा था, "रथ, मैं यह सब कह तो गया, पर इन शब्दों की कृत्रिमता खुद मुझे ही अजीब लग रही थी। इस डर से कि कहीं वह इस कृत्रिमता को न पकड़ ले मैं उस की आँखों तक से बच रहा था। पर फिर भी जो हुआ वह मेरे लिए आश्चर्यजनक होते हुए भी अप्रत्याशित था। वह उस विवाह को तोड़ने पर तैयार हो चुकी थी। बल्कि उस ने मुझे चुनौती दे दी कि मैं तलाक़ का प्रबन्ध कर दूँ। क़ायदे-क़ानून वह नहीं जानती। मैं ही वकील से मिल कर सलाह-मशविरा कर दूँ और

आखिरी फ़ैसले की आखिरी तारीख भी तय कर डालूं।"

यहाँ रूथ मुझ से अचानक ही पूछ बैठी थी, "ऐसा क्यों होता है ?" प्रश्न पहेली सा था। छोटा होने पर भी उस के अर्थ का विस्तार ी भी दिशा में कर लिया जा सकता था। मैं ने उत्तर देने की चेष्टा नहीं की। चुप ही रहा।

उत्तर की अपेक्षा उसे थी भी नहीं। मुझे चुप देख कर पूछा, "हूँ, कर क्या हुआ ?"

मैं ने सिर पर तने तिरपाल की ओर जाने क्यों देखा था और कुछ क्षण उधर ही देखते हुए कहने लगा था, "हम दोनों से यथार्थ दूर जा पड़ा था। मैं ने रिसर्च के बहाने विश्वविद्यालय से छुट्टी ली और उसी के साथ रहने लगा। काफ़ी बड़ा मकान था। उस में एक कमरा मेरे लिए रिज़र्व रहता था। मेरे आने पर खुलता था और फिर मेरे जाते ही बन्द हो जाता था। बीच-बीच में बस कभी-कदाक सफ़ाई-धुलाई के लिए खुल गया तो बात दूसरी। बच्चे उस कमरे को 'अंकिल जी वाला कमरा' कहते थे। सच कहूँ तो मैं उस परिवार का अंग ही था। अगर ज्यादा दिन तक उधर न जाऊँ तो उस से अधिक बच्चे और उन का पिता, मेरा दोस्त, शिकायत करता था। फिर जब मैं ने बच्चों को यह बताया कि अब मैं कुछ महीने लगातार वहीं रहूँगा तो वे खुशी से नाच ही तो उठे थे। पूरा घर शोर से भर गया था। और यह संवाद जो ममी-पापा को पहले से ही पता था, उन में से हर एक ने उन्हें अलग-अलग बताया— हाँफते, तेज़ी से बोलते, शब्दों को खाते-तुतलाते—जिस से जैसे भी ब वैसे ही। सब से छोटी लड़की थी। उस की तुतलाहट में बंसी की मादकता थी। दौड़ में सब से पीछे रह जाने के कारण वह सब से में पहुँची थी और ममी-पापा को चिल्ला-चिल्ला कर वही बात फिर रही थी जो दूसरे बच्चों से वे पहले सुन चुके थे।

"मैं अपने कमरे से ही उस कोलाहल को सुन रहा था। म

स्थिति होती तो उस कोलाहल में मैं भी अपना कोलाहल जोड़ता। मगर मैं जानता था कि बाद में जब इन बच्चों को यह पता चलेगा कि मैं ने उन से और उन के डैडी से उन की ममी को छीन लिया है तो उन पर क्या बीतेगी? क्या इस नये सम्बन्ध को वे समझ भी पायेंगे? और जब समझने की बुद्धि पा चुकेंगे तब मेरे अपने बारे में क्या सोचेंगे?"

इतना कह कर मैं ने रुथ की ओर प्रश्नात्मक दृष्टि से देखा था। इत्तिफ़ाक़ से वह उस क्षण मेरी ओर ही देख रही थी। पर जैसे ही मेरी दृष्टि उस से उलझी तो वह होल्ड-ऑल के फीते खोलने-बाँधने लगी थी। उस का यह मनोभाव देख कर मैं पूछ बैठा था, "क्यों रुथ, क्या मैं अब अजनबी हो उठा?"

रुथ ने हँसने की चेष्टा करते हुए कहा था, "अजनबी कहाँ? अभी तो मैं तुम्हारे बारे में जानने लगी हूँ।"

मैं चौंका और आतुरता से कहा, "तो बुरा लगने लगा?"

बोली, "तुम बड़े कच्चे दिल के हो। मैं तुम्हारी कहानी सुन कर यही सोच रही थी कि दुनिया में दुख ज़्यादा और सुख कम क्यों है? और अगर सुख ही ज़्यादा है तो पूँजी की तरह वह भी थोड़ों की ही सम्पत्ति क्यों है?"

मैं नहीं जान पाया कि रुथ के इस कथन में कितनी ईमानदारी थी। पर यह स्पष्ट था कि हमारा वार्तालाप बनावटीपन की सीमा से दूर न रहा था। बस मैं उस कथानक को पूरा कर के उस कृत्रिमता से उबरने को अकुला उठा था और इसी से स्वतः कहने लगा था, "इसी तरह पूरा एक साल बीत गया था। हम दोनों अभिन्न हो कर रहे। गरमियाँ हम ने अकेले पहाड़ों पर बितायीं। जाड़ों में दक्षिण के देशाटन को निकले। बरसात में तिदरी में बैठ कर चाय पीते, पकौड़े खाते, ताश खेलते और कभी-कभी दूरी का अनुभव करने के लिए एक ही छत के नीचे रहते हुए भी एक दूसरे को पत्र लिखते। वह भी अपने पत्र डाक से भेजती, मैं भी अपने पत्र डाक से भेजता। पता नहीं उस बेवक़ूफ़ी में कौन सा आनन्द था। पत्रों में शिका-

होती कि जवाब देर से मिला, या कि पत्र इतना छोटा लिखा कि तृप्ति नहीं हुई।"

फिर क्षण भर रुक कर कहा, "सच ही हम बचपने में लौट चले थे। अपनी सही उम्र से बहुत छोटे हो गये थे। अपने ज्ञान को भुला दिया था और जो व्यवहार हमें कॉलेज में पढ़ते हुए भी नहीं करना था वह कॉलेज में पढ़ाते हुए कर रहे थे।"

इस पर रुथ ने अप्रत्याशित ढंग से कहा था, "और इसी तरह तुम्हारी कहानी खत्म हो गयी। जब तुम ने उसे नयी ज़िन्दगी की शुरुआत के लिए क़ानूनी क़दम उठाने को कहा तो उस ने तुम से समय माँगा होगा। फिर जब तुम छुट्टी बिता कर घर वापस लौट रहे होगे तो उस के पहले ही पत्र ने, जो तुम्हारे पीछे-पीछे ही बँधा सा आया था, तुम्हारे तमाम सपनों को चूर-चूर कर दिया होगा। उस ने लिखा होगा कि वह चाह कर भी तुम्हारी नहीं हो सकेगी। सचमुच ही वे बच्चे उस का सब से बड़ा धन हैं। वह उन से उन की माँ को नहीं छीन सकती। और वे, उन के पिता, भी वैसा क़दम उठाते ही आत्महत्या कर लेंगे। वे अब भी प्यार करते हैं। उन के प्यार को धोखा नहीं दे.सकती। तुम माफ़ करोगे। तुम उन के दोस्त हो, इसलिए माफ़ कर दोगे। बच्चों के अंकल हो, इसलिए उन्हीं के सुख और भविष्य के लिए माफ़ कर दोगे।"

और कोई अवसर होता तो मैं हँस पड़ता। पर तब हँस न सका। वह तो मेरा अपना ही डिस्सेक्शन हो रहा था—शल्यक्रिया। मैं उठा था, "मगर तुम्हें यह सब कैसे पता चला?"

वह बोली थी, "क्योंकि ऐसा होता आया है। तुम सोचते हो कि पहले शहीद हो जो स्त्री की इस अस्थिरता का शिकार हुए। नहीं, क़तई नहीं। तुम ने जब अपनी कहानी शुरू की थी तभी मैं इस अ... समझ गयी थी और इसी से ग़मगीन हो उठी थी। जाने क्यों ... बेवफ़ाई से मैं अपमानित हो उठती हूँ। पुरुष के लिए मैं यह अस्...

नहीं मानती। अजीब बात है, जब कि स्त्री-पुरुष दोनों ही अच्छे-बुरे हो सकते हैं! मगर फिर भी मैं औरत की एक ही तसवीर पहचानती हूँ—वफा की, दगा की नहीं। मतलब कि प्रवंचना न दी हो, प्रवंचित हुई हो।"

उस के मुख की व्यथा को देख कर मुझे लग रहा था कि अपने कथन में वह सच ही ईमानदार है।

मैं ने उस बोझ से उभरने के लिए कहा, "रुथ, चलो कुछ और बात करें। अब मुझे उस बात का कोई अफसोस नहीं।"

अन्तिम वाक्य झूठ ही था। फिर भी मैं ने उस झूठ का विस्तार कर के कहा, "अब मैं मानने लगा हूँ कि जिन्दगी अपनेआप में महान् है। उसे किसी अन्य उद्देश्य की आवश्यकता नहीं। जब हम बाहर से उद्देश्य ढूंढते हैं तभी जिन्दगी में दुख का आविर्भाव होता है।"

"सच कह रहे हो?" रुथ ने अविश्वास के साथ पूछा था।

मैं परास्त भाव से सोचने लगा था—यह जो सामने बैठी हुई स्त्री है, यह क्या मन को पढ़ना जानती है। जिस का रूप सांझ की धूप सा सही चित्र उभरने ही नहीं देता। हर क्षण पूर्व से पृथक् कुछ नया, कुछ अपूर्व। आशा में भी अप्रत्याशित। आयु जिस की पारे सी तरल। उस तरलता में हलके से आन्दोलन से तरह-तरह की आकृतियों में परिवर्तित। ठीक अवस्था के अनुमान से परे। बुद्धि ऐन्द्रजालिक सी। कभी समस्या का समाधान करती जान पड़े तो कभी स्वयं समस्या ही बन चले।

मुझ से कोई उत्तर न पा कर उस ने स्वयं कहा था, "तुम ने झूठ ही कहा है। तुम उस दुख से आज तक उभर नहीं पाये हो और मैं कहती हूँ कि कभी उभर भी नहीं पाओगे।"

उस की आँखों की चमक उस अन्धकार में भी छिपी न रही। मैं ने अँधेरे में चमकती बिल्ली की आँखों को देखा है। मगर उन में क्रूरता और हिंसात्मकता ही तो होती है। रुथ की आँखों की चमक, मुझे याद नहीं पड़ रहा था, कि किस तरह की थी। वह चमक मैं ने देखी अवश्य

मनुष्यों में ही देखी है, असामान्य स्थिति में ही देखी है। अनभिज्ञ
विक्षिप्तता का स्फुलिंग कह सकते हैं; पर नहीं वैसी नहीं। मुझे भी
छ समय पूर्व वैसी ही प्रतीति हुई थी। पर अब मैं उस अन्तर को
मझ पा रहा था। विक्षिप्त की दृष्टि पारदर्शी होती है। पर ऐसी
ारदर्शिता जिस की चमक में केवल उस के अपने अन्तर की ही अव्यवस्था
को देखा जा सकता है। पर यह तो एक्सरे किरण सी दूसरों के गुह्यतम
को प्रकाशित करने में समर्थ—हाँ दूसरों का गुह्यतम !

और तभी मुझे बचपन की वह सूरत याद आ गयी थी। हमारे ह
पड़ोस की लड़की थी। नाम केला था। पर जल्दी ही योगिनी नाम से
प्रसिद्ध हो गयी थी। प्रवाद था कि किसी देवता ने उस में अधिवास कर
लिया है। वह देवता जब उस के देह में जाग्रत् होता है तो उस का योगिनी
रूप प्रखर हो उठता है। तब वह हर किसी का अतीत ऐसे बता देती है
जैसे रंगमंच पर खेले जाने वाले नाटक पर कोई रनिंग कमेण्ट्री कर रहा हो।
भविष्य भी ऐसे पढ़ती थी जैसे विधाता ने अपनी डायरी में जो कुछ भी
आने वाले कल और उन की अनन्त सन्तानों के बारे में लिख रखा है वह
सब वह भी जानती है। योगिनी सी ही दृष्टि या कि दृष्टि की आग।

पर यह सब मेरा आरोपित चिन्तन था। मेरे सोचते न सोचते स
की दृष्टि पिघल पड़ी थी और अब मैं ज्योति के उस तीखेपन के स्थान
एक अजीब कोमलता देख रहा था। जैसे यही सब कुछ होता रहा तो
पारद प्रतिमा सी हो उठेगी। मैं ने अपनी पीड़ा भूल कर संवेदना के
में पूछा था, "यह क्या हो रहा है, तुम्हें रुथ ?"

उस का उत्तर था, "कुछ नहीं, अब सो जाओ।"

पता नहीं क्या बजा था। पता नहीं रात्रि कितने प्रहरों की
पर ढल गयी थी। पता नहीं सर्सपि घूमते हुए क्षितिज से कितने

[illegible]

[illegible]

उस के रेशमी बाल मेरे सिर के समीप ही तकिये पर फैले थे। जैसे नया हरी वाली हरियल घास हो। [illegible] हुआ जाये। और [illegible] बालों को उन [illegible] बालों से ही [illegible] हूँ। [illegible]

पर वे भारतीय नायिका के [illegible] थे। वे [illegible] पर लहर कर राज नहीं कर देते थे। वे तो [illegible] थे। [illegible] में रह कर बढ़े थे, सीमित ही रहे।

फिर भी मेरा मन उन से उलझ गया था। अब छूने [illegible] मिला तो उन्हीं में रम चला। और जाने किस दुर्बलता के आवेश [illegible] उस के केश-गुच्छ को हलके से अंगुलियों से [illegible]।

वह एक ही करवट लेटी थी। मुझे तब यह ख्याल भी नहीं रहा कि नींद उस से भी रूठ सकती है। जब मैं उस के केश-गुच्छ [illegible] था तभी बिना करवट बदले वह कह बैठी थी, "कई दिन हो गये बालों को धोये, पसीने की गन्ध समा गयी होगी।"

मैं ने तेज़ी से उन लटों से अपनी अंगुलियों को [illegible] लिया था।

वैसा करने से उस क्षण के सत्य पर परदा पड़ सकता था । पर दूसरे क्षण अपने आहत पौरुष के सम्मान की रक्षा में धृष्ट भाव से उन ढेर ढेर केशों को अपनी अँजुलि में भर कर उठ वैठा था ।

वह कह रही थी, "ऐसे कभी नींद नहीं आयेगी । जाग कर मुझे भी सोने न दोगे । मैं तुम्हारी हर करवट को गिनती रही हूँ ।"

मैं काव्यमयी भावुकता से भर कर कह उठा था, "रहस्यमयी पहले मुझे यह वता दो कि तुम कौन हो ? तुम इस जहाज़ पर मेरी खोज वन कर क्यों चली आयीं ? मेरे संन्यासी मन को तुम ने क्यों अनुराग की दिशा दी ? अव जव कि इस दूसरी वाज़ी में कुछ भी दावँ पर लगाने को शेष नहीं, तव सर्वस्वदान की आकांक्षा से भर कर क्यों चली आयीं ?"

पर स्वयं वोलते हुए भी मैं अनुभव कर रहा था कि वक्ता कोई और है । मैं मात्र श्रोता हूँ । उस वक्ता की मूर्खता भरो भावुकता पर मुझे अचरज भी हुआ और ग्लानि भी । ग्लानि तव हुई जव मुझे लगा कि वह मेरा अपना ही एक अन्य रूप है ।

यह मेरी भावुकता और वौद्धिकता का संघर्ष था । भावुकता के मूल में अतृप्ति थी, दैहिक भूख की आग थी । वौद्धिकता जीवन की निराशा थी, कटुता थी । मैं अपने संकोची स्वभाव को परास्त कर के अपने एक नये पहलू को उघाड़ रहा था ।

पता नहीं रुथ ने क्या सोचा था । पता नहीं कहीं उस का व्यक्ति भी द्विधा था ? मन कैविन में मिनेजिस के पास हो और तन यहाँ यात्रा-वन्धु के पास । उस क्षण मुझे उस की साँसों में 'मिन' की स सुनाई दे रही थी, किन्तु उस के उन केशों में अपने लिए गुम्फित निमन्त्

मैं एक अजीव पीड़ा से भर उठा था । केशों से भरी मेरी अ फिर रिक्त हो चली थी और जुड़े हुए हाथ फट कर अपने-अपने प जा चिपके थे । उस अस्वाभाविक स्थिति से मैं उवरना चाहता था अपने जिस स्वरूप का आज तक वोध नहीं हुआ था उसे इस

प्रकाशित होते देख कर सहम उठा था ।

तभी रुथ ने भी करवट ली और करवट के साथ ही उठ ... भी प्रकाश वहाँ संचित था उस मे जो कुछ भी देख सका वह ... वाला लगा । रुथ शिथिल और कहीं वयस्क दिखाई दे रही थी । अभी तक जो कुछ देखा था वह मेकअप था । रात्रि में सोने से उस मेकअप को जैसे खुद ही उस ने धो दिया था । मैं ने सहमे स्वर में पूछा, "यह तुम्हें क्या हुआ रुथ ?"

"क्यों क्या हुआ ?" उस का प्रश्न कुछ ऐसा था जैसे कि कुछ हुआ ही न हो ।

मैं ने कहा, "अगर तुम खुद को शीशे में देखो तो शायद पहचान न पाओ ।"

वह बोली, "एक शीशा तो सामने है माई डियर ग्लूकोज़ । मुझे खुद को पहचानने मे कभी गलती नहीं हुई। यह मेरा दुर्भाग्य है कि दूसरों ने मुझे कम ही ठीक पहचाना है ।"

अभी-अभी उस की जो त्वचा प्राणहीन लग रही थी, उस में फिर से प्राणों का संचार होने लगा था । रक्तहीन सफ़ेदी के स्थान पर अब गोरी लाली उमड़ने लगी थी । जैसे आंच के पास बैठने से मुँह तमतमा उठा हो । एक दूसरा ही रूप—जो अन्दर की आग से दीप्त होता है, जो उस आग के मन्द पड़ते ही राख की ढेरी सा हो जाता है । मेरे सन्देह ने उस राख की ढेरी को जैसे ठोकर मार दी थी, जिस से छुपी चिनगारी दहक उठी थी । यह रुथ कुछ क्षण-पूर्व वाली हरगिज़ न थी । यह वह थी जिसे मैं ने अनेक बार दिन में देखा है । यह वह थी जो मुझे वासनाओं से भर रही थी; यह वह थी जो एक स्त्री की प्रवंचना से परास्त मेरे मन में फिर से स्त्री के प्रति आस्था उपजा रही थी ।

तो यह भी एक नहीं दो-दो जिन्दगी जी रही है ? हर साँस ठण्डी भी है गरम भी । यह समानशीला है : मेरी सच्ची सखा-बान्धवी । जीवन

त वैसा करने से
क्षण अपने
क ढेर के
भी

...ौर अव उस के जीवन के पूर्वकाल के
...ाहट है। उसी अकुलाहट में मैं ने मूर्ख
...ाओ तुम कौन हो ?"
...गी और फिर गम्भीर हो उठी थी।
"कुछ नहीं, तुम्हारे और अपने जैसे दो
...र नहीं, इतना ही नहीं। व्यक्ति मात्र
...है खुद भी है; कहीं अपनी ही परम्परा भी
...तो जानना चाहते हो मुझ से। पर मैं क्यों
...: क्या न छिपाऊँ? और छिपाऊँ भी तो क्यों ?"

वह चुप हो चली थी। मैं उस से सव कुछ सुनने की उत्सुकता में आँखों ही आँखों में उस से याचना कर रहा था। वह फिर हँसी। इस वार वच्चे की सी निर्मल हँसी और जैसे उस हँसी की ठोकर से सिर पर लदी दुख की गठरी को नीचे डाल दिया हो। वोली, "तुम अजीव आदमी... हो। मुझे जाने क्या कर डाला है। दिन में तुम कुछ और थे। तव मैं भी... कुछ और थी। मैं वही और वनी रहना चाहती हूँ। उस से विशिष्ट कु... नहीं। और इस तरह मैं तुम्हारे ही जैसी हूँ। मतलव कि कोई रह... नहीं। हाँ एक अन्तर अवश्य है। तुम्हारी कहानी तव शुरू होती है... तुम्हारी प्रिया तीन-तीन वच्चों की माँ हो चुकती है। मेरी कहानी त... शुरू हो जाती है, जव से मैं अपनी माँ के गर्भ में आती हूँ।"

उस के होंठ हँस रहे थे पर आँखों में पीड़ाएँ वरस रही थीं।... तक सामान्य हो चुका था। सोचा इस के उस इतिहास को जा... आग्रह करना इस के साथ क्रूरता है। वस इसी से कह दिया, "... होता है व्यर्थ। पर छोड़ो इस प्रसंग को, कोई और वात करो।... वारे में कुछ वताओ। वहाँ जा कर तो सव कुछ देखूँगा ही।... पृष्ठभूमि ही तैयार कर दो।"

वह विदग्ध स्वर में वोली थी, "अव वहाँ क्या देखोगे...

जानने योग्य है भी क्या ? जानने योग्य तब था जब मैं गर्भ में आयी थी। इसलिए जानने योग्य को जानना चाहते हो तो....मुझे ही जान लो।"

कह कर वह हँसी। विक्षिप्तता भरी हँसी। धीमी होने पर भी अस्वाभाविक और कटु—उस के व्यक्तित्व की मृदुता जिस में नाम को नहीं, अनुभवों की कटुता की तलछट सी हँसी। मैं ने फिर कहा, "नहीं मैं वह सब नहीं जानना चाहता।"

उस ने स्वर को कोमल कर के आत्मीयता के साथ कहा था, "क्यों झूठ बोलते हो ? तुम अवश्य ही वह सब कुछ जानना चाहते हो। मैं भी अब सुनाना चाहती हूँ। मैं ने आज तक अपने बारे में किसी को कभी कुछ नहीं बताया। अपनी ओर से नहीं बताया। तुम इतिहासकार हो। तुम राजवंशों, उन के उद्भव, अभिभव का इतिहास लिखते रहे; आधुनिक हो कर जातियों और देशों का लिखने लगे। अधिक आधुनिक हुए तो वादों का इतिहास लिखा। मगर व्यक्ति का इतिहास कोई नहीं लिखता। जो लिखता है उसे इतिहासकार नहीं माना जाता। उसे लोग उपन्यासकार कह देते हैं। चलो कुछ भी कह लें लोग। मेरा जीवन-उपन्यास इतिहास ही है।"

इतना कह कर वह बचपन की सरलता से भर उठी थी। अब वह अपनी उम्र से कहीं छोटी लग रही थी—रूपवती आकर्षक। और मैं ने भी उतनी ही सरलता से कह दिया, "अच्छा सुनाओ।"

रुथ ने तकिया खींच लिया था। औंधी लेट कर उस ने तकिये में कोहनियाँ गड़ा ली थीं और हथेलियों में अपना मुँह थाम कर मेरी ओर देखती हुई बोली थी, "कल दस बजे तक तुम पंजिम पहुँच जाओगे। हाई टाइड का टाइम हुआ तो और भी जल्दी पहुँच सकते हो। नहीं तो अरब सागर और माण्डवी के संगम पर रुकना पड़ेगा।"

दो क्षण रुक कर वह कहती गयी, "समुद्र के साथ विलास करने

यह माण्डवी भी अद्‌भुत है। समुद्र ही जैसा स्वभाव। प्लावन कभी करती। फिर भी ज्वार आता है तो अथाह हो उठती है। और भाटा होता है तो किनारे छोड़ कर दूर भाग जाती है। मुझे उस नदी से ा ही प्यार है जैसा किसी को अपने बचपन की सहेली से होता है।"

उस ने अपने एक गाल को धीरे से हथेली से सहलाया था और सहलाते हुए भी कहती रही थी, "पंजिम इसी रिवर पोर्ट पर है। वहाँ पहुँच कर ही तुम जानोगे कि माण्डवी और जुवारी नदियों के अंकमाल में मेरी जन्मभूमि कितनी सुन्दर लगती है। दुलहिन सी सुन्दर। जल-थल पर्वत और वनस्पति का अपूर्व समागम। नदी, सागर। पश्चिमी घाट की ऊँचाइयाँ। नारियल के पेड़, काजू के पेड़, धान के खेत। दृष्टि के सीमान्त तक फैली हरियाली।"

फिर किंचिद् वेदना के साथ कहा, "इस सुन्दरता का एक और भी पहलू है। पंजिम में तुम्हें लगेगा कि यूरोप के किसी समृद्ध क़स्बे में हो। विदेशी माल से भरी दुकानें। जितने आदमी उतनी ही कारें। फ्रेंच विण्डोज़ वाले मकान। खपरैल की छतें। फ़्रॉकें और स्कर्ट। कन्धे तक कटे बाल। ड्रिंक्स : ह्विस्की, रम, जिन, शैम्पेन—सब विलायती। देशी कारें मुश्किल से देखने को मिलेंगी। कॉन्सल, ऑपेल, मर्सिडीज़, टेम्स, फ़ॉक्स और जाने क्या-क्या नाम। हर कार विलायती। ऑटोमैटिक गियर वा कारें; बड़ी-बड़ी लग्ज़री कारें। टैक्सियों में दौड़ने वाली एक से सुन्दर कारें। पक्की सड़कें। साफ़-सुथरी जगहें।—पर यह सब बद औरत के मेकप की तरह ही हमें पोर्जुगीज़ से मिला था।"

उस के शब्दों में कराह थी। दर्द के साथ उस ने कहा था, पन्द्रह साल पहले आते तो तुम्हें यह सब कुछ न दिखता! लोगों को पी कर नाचने भर का अधिकार था। कोई स्वतन्त्र अखबार नहीं। का प्रकाशन नहीं। बिना सेंसर एक पैम्फ़लेट तक नहीं छप सक एक सार्वजनिक सभा नहीं हो सकती थी। कभी-कभी तो

निमन्त्रण-पत्र भी सेंसर होते, क्योंकि विदेशी प्रभुओं को हमारी स्वामिभक्ति में सदा सन्देह था। *हमारी दासता हमारी कुरूपता थी।* *विलासिता* के मेकप से उस कुरूपता को सँवारा जा रहा था। स्वतन्त्रता के नाम पर थोड़ी बेहोशी और बाँट दी जाती थी। दस-पन्द्रह साल पहले यहाँ दस-पन्द्रह कारें ही होंगी। सरकारी कर्मचारियों का वेतन नाम का। प्रभुओं की इच्छा ही विधान थी। पर जब दादरा ने स्वतन्त्रता घोषित कर दी, जब नागरहवेली भी आजाद हो गया, तब हमारे प्रभुओं को अपशकुनों का आभास हुआ। और तब गोआ का रूप बदलने लगा। सरकारी कर्मचारियों के वेतन बढ़े। जिन्दगी की कर्मठता को मिटाने वाले आराम बढ़े। सड़कों की सूरतें बदलीं। बाजारों में रौनक भरी गयी। गुलाम जनता ने स्वतन्त्रता का आभास पाया। नशा, सिर्फ नशा। पर आजादी देने को वे तैयार न थे। हम से वे अपनेपन के साथ मिलते। गोरेपन की बू से दूर रहते। *पर तभी तक जब तक हम उन की इच्छाओं की दासता* स्वीकार करते, जब तक हम स्वतन्त्र चेतना से काम न लेते।....''

अब उस ने करवट ले ली थी। एक हाथ के बल अधलेटी कहने लगी थी, ''मैं ने ये दोनों रूप देखे हैं। और मैं ने वह रूप भी देखा है जो ईश्वर किसी को न दिखाये।''

स्वर की कटुता में स्वयं को अभिव्यक्त करते हुए रुथ बोली थी, ''तुम तो जानते ही हो पोर्चुगीज में 'मिस्तीसु' किसे कहते हैं। मिक्स्ड ब्रीड। मैं घायल लार्क जैसी तड़पने लगती जब कभी मुझे अपने बारे में कुछ वैसी भ्रान्ति हो उठती। मेरी आँखों की झलक, त्वचा की नवनीतता को देख कर जब कोई मेरे *'मिस्तीसु'* होने की *कल्पना करता तो मैं अपमानित हो* उठती। मगर फिर भी मैं तब नहीं जानती थी कि मैं किस की सन्तान हूँ। जब कभी भी फादर एन्तुइनो से पूछती थी उन का एक ही जवाब

: तुम ईश्वर की सन्तान हो । यह ईश्वर की सन्तानों का स्वर्ग है ।
जन्म लेने वाला बच्चा यीशु के आशीर्वाद को ले कर ही इस दुनिया
ाता है । तभी मैं सपने देखा करता हूँ कि एक दिन ये ही यीशु की
तानें यीशु के धर्म का प्रचार करेंगी । कोई इन में अलबुकर्क बनेगा, कोई
ट फ़ान्सिस ।

"फ़ादर एन्तुइनो से हर रविवार को मुलाक़ात हुआ करती थी । हमारा अपना चैपल था । क्रॉस पर शूलित क्राइस्ट की करुणामयी मुद्रा, नीचे मरियम सुन्दरता और कोमलता में दिव्य । और कभी-कभी मैं यही विश्वास कर बैठती कि मेरी माँ वही है । मैं भी उसी कोख से पैदा हुई हूँ जिस से यीशु पैदा हुआ है । और कभी-कभी मैं फ़ादर एन्तुइनो से भी कुछ ऐसा ही बक उठती थी । मेरी बात उन्हें अच्छी कभी नहीं लगी । फिर भी होंठों पर मुसकान ला कर कह देते : सब ईश्वर की सन्तानें हैं, मेरी बच्ची सब ईश्वर की सन्तानें हैं । उस की हर सन्तान गौरवशालिनी है ।"

कुछ रुक कर वह बोली, "फ़ादर एन्तुइनो को देख कर जाने क्यों मुझे भय और श्रद्धा दोनों ही होती थीं । दीर्घ देह, चलते तो लम्बे डग रख कर । ऊँचा माथा, तीखी नाक, बड़ी न होने पर भी बड़े होने का आभास देने वाली रहस्य भरी आँखें । मैं उन आँखों में झाँकते डरती थी । सफ़े
लम्बी दाढ़ी । आँखों का भय उस दाढ़ी को देख कर ही मिटता था । ज
वे हंसते तो हँसी सफ़ेद दाढ़ी पर झरने सी फिसल पड़ती थी और त
उस दाढ़ी में अजीब चमक भर उठती ।"

यह कह कर रुथ ने मेरी ओर कुछ ऐसी प्रसन्नता के साथ देखा,
मुझे अच्छी तरह देख कर वह फ़ादर एन्तुइनो की आकृति से उपजे भ
फिर से भुला डालना चाहती है । मेरी आँखों से मिल कर उस क
तरल हो उठी थी । वही तरलता स्वर की कोमलता में जा मिली थ
वह आहिस्ते से ऐसे बोली थी जैसे कोई रहस्य बखान रही हो, "
में पैदा हुई थी । 'निन्यु इन्फ़ेण्टिल' भी उसे कहते हैं । नाम

हैं। अर्थ है बच्चों का घोंसला। इस घर में अवैध सन्तानें जन्म लेतीं। अविवाहित माताओं का पाप। फादर एन्तुइनो पुण्य ही कहेंगे। क्योंकि इस तरह उन के धर्म का मानने वाला एक और बढ़ जाता था। माँ का धर्म कुछ भी हो, पिता का धर्म कुछ भी हो : मगर इस घर में जनमे बच्चे का धर्म एक ही होता था—फ़ादर एन्तुइनो का धर्म।"

उस के स्वर में क्षोभ था। मैं ने कहा, "तुम तो उस धर्म की अनुयायी हो, फिर भी क्षुब्ध ?"

वह बोली, "ईसाई समाज में गिनी जाती हूँ, मेरे संस्कार और आचार भी उसी समाज की व्यवस्था की देन हैं। मगर मैं धार्मिक नहीं। और सीधे कहूँ तो मैं अधार्मिक हूँ।"

मुझे लगा जैसे उस ने यह स्वयं को पीड़ित करने के लिए कहा था। इसी से कह उठा,"नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। तुम में जितनी करुणा और ममता है उतनी करुणा-ममता ले कर कोई अधार्मिक नहीं हो सकता।"

उस का उत्तर था, "तुम जाने किस धार्मिकता की बात करते हो। मैं उस धार्मिकता की बात करती हूँ जो दूसरे के लिए असहिष्णु है, जो अपने से विपरीत आचरण को धर्म नहीं मानती : शेष सब जिस के लिए गुमराह और भटके हुए लोग हैं।"

"यह तो विश्वास की बात है।" मैं ने यूँ ही कह दिया था।

पर उस ने तिक्तता के साथ कहा था, "मगर विश्वास लादा क्यों जाये ? विश्वास की विविधता क्यों न मान ली जाये ? जैसे गोरे, काले, पीले इनसान हैं; जैसे गुलाब, नर्गिस और लीली के फूल हैं; जैसे अलग-अलग भूखण्ड हैं—वैसे ही धर्म को क्यों नहीं मान लिया जाता ? क्यों नहीं मान लिया जाता कि सर्वोपरि धर्म एक है—मनुष्यता का ? और जो तथाकथित धर्म हैं, वे वाद हैं, सम्प्रदाय हैं—नदी के विविध तीर्थों की तरह। और उन विविध वादों को मान कर भी आदमी उस विराट् धर्म की ही छाया में पनपता है। क्यों नहीं मान लिया जाता यह सब ?"

मैं ने स्पष्ट अनुभव किया कि रुथ के जीवन में ताप का कोई एक
प नहीं। कभी-कभी उस के विचार ही कुछ ऐसे तप उठते हैं कि वह स्वयं के लिए असह्य हो उठती है। और यही उस की पीड़ा है। मुझे उस पर दया उमड़ आयी। कुछ क्षण पूर्व मैं स्वयं कैसा विचलित था, कैसा द्विधा था, कैसा अनास्थ था। वह सब भूल गया था। उस समय रुथ के प्रति आत्मीयता भरी कोमलता से भर उठा था।

बस मैं ने तर्क नहीं किया, चुप रहा। क्षण भर तो उस ने मेरे उत्तर की प्रतीक्षा की और फिर मुझे चुप देख कर खुद ही क्लान्त भाव से कहने लगी, "ननरी की मदर सुपीरियर की देखरेख में 'इन्फ़ैण्टिल' चलता था। वे फ़ादर एन्तुइनो के समक्ष ही विनम्र होती थीं। मेरा मतलब कि उन्हीं के महत्त्व को स्वीकारती थीं। अन्यथा और जो भी मदर उस घर में थीं वे सब मदर सुपीरियर से आतंकित ही रहती थीं। हम बच्चे भी उन से भयभीत रहते। जब वे मुसकरा कर कोमल स्वर में भी बोलतीं तब भी उन का आतंक किसी तरह कम न होता था।"

वह रुकी। जैसे उस आतंक की दीर्घ छाया से उबरने के लिए ह
चुप हुई हो। और बोली, "बातें तो शायद मुझे तब से याद हैं जब
एक ही बरस की थी, पर सुनने वाले को बात अविश्वसनीय लग सक
हैं। मैं स्वयं जब ऐसा कहती हूँ, तो अपने प्रति अविश्वास से भर उ
हूँ। फिर भी उस सच का निषेध नहीं कर पाती। मैं शब्दों में उन
को दोहरा नहीं सकती। कारण कि कुछ घटनाओं का अर्थ मेरी स
कभी नहीं आया। वे चित्र मेरी आँखों में अमर हैं। अगर मेरी अ
फ़ोटोग्राफ़िक लेन्स फ़िट कर दिये जायें तो शायद उस युग की फ़िल
हो जाये। पर जानती हूँ यह सब शेखचिल्ली का सपना है।
स्पेन के उस शेख़चिल्ली का नाम? डॉन क्विग्ज़ोट। मगर वह
काल्पनिक शत्रु से लड़ भी लेता था, मैं तो वैसा भी नहीं कर प

उस ने गहरी साँस छोड़ी और मन ही मन गिनती सी क

"तब उस घर में कुल मिला कर सोलह बच्चे थे। लड़कियों की तादाद ज्यादा थी : दस लड़कियां। पर एक सुबह जब हम लोग सो कर उठे तो बच्चे एक-दूसरे को बता रहे थे—हमारी संख्या और बढ़ी। यीशु ने एक बच्चा और भेज दिया। परसों ही रोजमारी को एक व्यापारी देखने आया था। वह चली जायेगी, इसलिए भगवान् ने उस की जगह एक बच्चा और भेज दिया।

तब मैं सात बरस की हो चुकी थी। खूब बोलती थी और खूब चुप भी रह लेती थी। हम सब से ज्यादा उम्र का जोजे था। मगर दूसरे बच्चों की राय में बेवकूफ। मजबूत होने पर भी अपने से छोटे बच्चों से पिट लेता था, शिकायत तक न करता था। मैं ने एक बार उस से मजाक में कहा भी था —तुम तो किसी पादरी की सन्तान लगते हो। अभी से सन्त हो चले हो।

"उस ने बिना बुरा माने मुझ से धीमे से कह दिया था—ऐसा नहीं कहते रुथ, पाप लगता है। हम सब ईश्वर की सन्तान हैं।

"उस के दिमाग में यह विश्वास बद्धमूल था। विश्वासी प्रकृति का था, जो भी उसे बताया जाता मान लेता। उस के अनुसार फादर एन्तुइनो और मदर सुपीरियर की बात बाइबिल की तरह मान्य थी। दूसरे बड़े बच्चे उस का मजाक ही उड़ाया करते। पर जाने क्यों मेरे मन में जोजे के प्रति गहरा आदर था। और तब मैं सोचा करती थी कि जोजे एक दिन फ़ादर एन्तुइनो से भी महत्त्वपूर्ण हो जायेगा। पर तब भी उस से कोई बच्चा डरेगा नहीं, सब उसे प्यार करेंगे।"

रुथ ने मेरी बांह छू कर मेरा ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट करते हुए कहा था, "जानते हो, मैं जोजे को कभी नहीं भूल सकती। उस की आंखें नीली थीं, बड़ी और कोमल। बाल सुनहरी थे। वह निश्चित ही 'मिस्तीसु' था। फिर भी, यह बोध पा कर भी, मैं उस का आदर करती रही हूं। 'मिस्तीसु' के प्रति मेरी सहज नफरत उस के मामले में जाने क्यों मिट जाती थी।

"सभी बच्चों का यह विश्वास था कि रात में जब सो जाते हैं तब भगवान् मदर सुपीरियर को एक बच्चा दे जाते हैं। मगर तब मैं इस विश्वास को छोड़ चुकी थी। सात वर्षों के दमित जीवन ने मुझे क्या नहीं सिखा दिया था। मेरी यह आदत थी कि मैं सहज मान ली जाने वाली हर बात का अविश्वास करती। अपनी आँखें खुली रखती। लुक-छिप कर भी अगर कुछ देख सकती और अपना अविश्वासी ज्ञान बढ़ा सकती तो वैसा करती। मैं ने एक रात देखा कि एक लड़की हमारे 'होम' में आयी। उस का पेट ज़रूरत से ज्यादा बड़ा था। वह पीली पड़ चुकी थी और घबड़ायी सी लगती थी। मदर फ़र्नेण्डिया उसे चुपचाप होम के ऊपर वाले हिस्से में ले गयी थी। उस हिस्से में हम बच्चे कभी नहीं ले जाये जाते थे। यह प्रतिबन्ध मुझे जब से समझ जागी तभी से बुरा लगता था। एक तो हम ईश्वर की सन्तान ऊपर से इतनी रोक-थाम। जाने मैं क्यों सोचा करती थी कि हम ईश्वर की सन्तान हैं तो हमें विशेष अधिकार भी मिलने चाहिए।

"मेरा विश्वास था कि यह नया बच्चा उस लड़की का ही है। तब तक मैं यह तो नहीं जानती थी कि बच्चे कैसे जन्म लेते हैं और स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों का उन के जन्म से क्या सम्बन्ध है। मगर बड़े पेट वाली लड़कियों को आते, ऊपर वाले वार्ड में चुपचाप ले जाये जाते, और उन के आने के दो-एक दिन के भीतर ही अपनी संख्या को बढ़ते देख कर मैं मन ही मन यही मान लेती कि यह बच्चा वह बड़े पेट वाली लड़की ही अपनी फ्रॉक में छिपा कर लायी है, मदर सुपीरियर को दे देगी और चली जायेगी। मगर मैं ने अपने इस विश्वास की चर्चा कभी किसी से न की थी। मुझे डर था मेरी बात कोई न मानेगा, उलटे मदर सुपीरियर को खबर लग जायेगी और तब चैपल में दिन भर भूखे-प्यासे बन्द रह कर यीशु से अपने अपराध की क्षमा माँगनी पड़ेगी। मगर मैं क्षमा की किस लिए माँगती? चैपल में बन्द रोती रहती या मदर सुपीरियर को कोसती रहती।

"पर जब इस नवागन्तुक का समाचार मिला तो मेरा मन किसी और मे उस बारे में रहस्य-चर्चा करने को विकल हो उठा था। एक बार सोचा रोजमारी से बात करूँ। आजकल में चली ही जायेगी : शायद शिकायत न करे। पर उसे अपनी सुन्दरता का इतना अभिमान था कि उस का मिज़ाज जल्दी किसी से मिलता ही न था। मुझ से ऐसी किसी बात को ले कर उस से झगड़ा तो कभी नही हुआ था, फिर भी मैं डरती थी। वैसी नौबत आने से डरती थी, क्योंकि मैं खुद को उस से कम सुन्दर मानने को तैयार न थी। मैं स्वयं जाने कब की इस 'घर' से चली गयी होती। बहुत से लोग मुझे लेने आये। मगर मुझे उन की शक्लें ही अजीब लगती और मैं उन्ही के सामने मदर सुपीरियर से कहती—मैं इन के साथ नही जाऊँगी, ये मुझे अच्छे नही लगते। रोजमारी को पसन्द करने वाला व्यापारी पहले मुझे ही ले जाना चाहता था। पर उस की नुकीली मूँछें और लाल आँखें मुझे पसन्द न थी। बस मैं ने अपना वही रूप दिखाया और रह गयी। फिर उस ने दूसरे नम्बर पर रोज को पसन्द किया था। इस पर भी रोज ने बच्चों में यही प्रचार किया था कि वह आदमी बहुत पैसे वाला है। रुथ चाहती थी जाना। मदर सुपीरियर ने भी उस की सिफारिश की थी, मगर उसे पसन्द नहीं आयी। इसी से जा न सकी। उस के बालों का रंग उस व्यापारी को पसन्द नहीं आया था।"

यह कह कर रुथ हँसी थी। शायद रोज की गर्वोक्ति सुन कर ठीक ऐसे ही वह तब भी हँसी होगी। इस हँसी में आत्मविश्वास की घोषणा थी। अनायास ही वह अपना बायाँ हाथ सिर पर ले जा कर अपने बालों पर फेरने लगी थी। जैसे अवचेतन ने उस चुनौती को स्वीकार कर के बालों को छूने की प्रेरणा दे कर यह व्यंजित किया हो कि आज भी वे बाल रेशम से मुलायम, घने और सुन्दर हैं। रोज देखे तो मात खा जाये!

बालों को सहला कर रुथ इतमीनान के साथ बोली थी, "तो मैं ने रोज से नही पूछा। कहीं अपनी सुन्दरता की बात न करने लगे! और कोई

हीं, जिस से अपनी बात कहती। जोज़े की ओर बार-बार ध्यान
। पर उस की साधुता निरुत्साहित कर देती। मगर मन की
लाहट कुछ इतनी बढ़ चली थी कि मैं अपनी खोज को अपने तक
मित रख ही नहीं पा रही थी। इसलिए शाम को खेल के वक़्त जब
ज़े निष्क्रिय सा एक ओर को बैठा था, मैं भी उस के पास ही जा कर
ठ गयी। मुझे बैठते देख कर उस ने कहा था—क्यों, खेलोगी नहीं?

"पर उस के उत्तर में मैं ने अपनी ही बात कही—आज रात के खाने से पहले ही रोज़ चली जायेगी।

"उस ने सरलता से पूछा—अफ़सोस हो रहा है? उस के जाने का या कि अपने रह जाने का?

"और कोई इस तरह से कहता तो मैं झगड़ा कर बैठती। मगर जोज़े तो मेरी समझ से चोट पहुँचाने वाले बच्चों में से था ही नहीं। इसी से मैं ने कहा—नहीं, अफ़सोस तो कोई नहीं। मैं कह रही थी कि हम सोलह थे। रोज़ के जाने पर भी सोलह ही रह जायेंगे, वह जो नया बच्चा आ गया है।

"जोज़े ने आकाश की ओर देख कर ईश्वर का गुणानुवाद करते हुए कहा—सब कुछ वही करता है। उसी को हर बात की चिन्ता रहती है। इसी से मुझे कभी कोई फ़िक्र नहीं होती। वह चाहता है कि इस घर में सोलह बच्चे हों, बस सोलह ही रहेंगे। जब वह चाहेगा कि ज़्याद[ा] बच्चे रहें तो ज़्यादा बच्चे हो जायेंगे। जब वह चाहेगा कि कम बच्[चे] रहें, फिर वैसा ही हो जायेगा।

"मैं अचानक ही कह उठी थी—तुम बुद्धू हो! पर उस ने [बुरा] नहीं माना। मुसकराता हुआ ही बोला—सब यही कहते हैं। जाने [तुम] क्यों नहीं कहती थीं। तुम ने कहा, मुझे अच्छा लगा। सच तुम [मुझे] बुद्धू ही कह कर पुकारो तो मैं कभी बुरा नहीं मानूँगा।

"इस अपने में कुछ खोयी सी बोल उठी थी—आज मैं सोच [रही] हूँ कि ऐसा उत्तर या तो एक साधु पुरुष ही दे सकता है या फि[र]

प्रेमी। पर तब जोजे मुझे केवल सीधा लगा था। भला लगा था। मैं ने भी प्यार के साथ कहा था—मेरा यह मतलब नहीं जोजे। मैं तुझ से कुछ कहने आयी हूँ। बहुत दिनों से कहने को सोचती आयी हूँ, कभी किसी से नहीं कही। आज सोचा तुम से कह ही डालूँ।

"जोजे ने संन्यासी भाव से देखा। देखने में कोई उत्सुकता नहीं। जाने कैसा बच्चा था! बोला—तो कहो?

"मैं ने उस के पास सिमट कर धीमे से कहा था—मैं तुझे बताऊँ, यह नया बच्चा कौन लाया?

"उस ने सरलता से कहा—भोली है! अरी ईश्वर भेजता है। मदर सुपीरियर को देता है। तुझे आज तक पता नहीं चला?

"मैं ने कुछ उतावली के साथ कहा—तू तो वही सुनी-सुनायी बात करता है। मैं असलियत जानती हूँ। सच कहती हूँ, ईश्वर यह सब नहीं करता। ये जो मोटे पेट वाली लड़कियाँ आती हैं न, जो सीधे ऊपर ले जायी जाती हैं, वे ही बच्चे लाती हैं। फ़्रॉक में छिपा कर लाती हैं। तू देख न, जब-जब कोई बच्चा आया, तब-तब उस से एक-दो दिन पहले बड़े पेट वाली लड़की भी आयी।

"जोजे ने विरोध में कुछ नहीं कहा। उलटे उस ने जिस तरह देखा उस से यही लगा कि वह मेरी खोज का विश्वास कर रहा है, और उस की आँखों में जो चमक है उस में मेरे प्रति प्रशंसा का भाव है। पर मैं उस का विचार शब्दों में जानना चाहती थी। इसी से कहा—तुझे यक़ीन न हो तो अगली बार देखना।

"जोजे ने दृढ़ और स्पष्ट स्वर में कहा—नहीं, तू झूठ नहीं बोलती। मैं सोचता हूँ तू कभी झूठ नहीं बोलेगी।

"पता नहीं उस ने यह विश्वास क्यों स्थापित किया मुझ में। पर तब मुझे वह सब बेहद अच्छा लगा था। उस के समर्थन से मेरा आत्म-विश्वास बढ़ चला था और तब से हम दोनों ज्यादा साथ रहने लगे थे।"

रुथ उठ बैठी थी । अंगों को स्फूर्ति देते हुए उस ने अँगड़ाई ली और टाँगों को बाँहों से बाँध कर बैठ गयी । इस से पूर्व कि वह कथा बढ़ाये मैं ने पूछा, "तो सोओगी नहीं ?"

"क्यों ऊब चले ?" उस ने कहा ।

मैं ने कहा, "यह तुम ने कैसे मान लिया ? मैं तो असल में यह ताज्जुब कर रहा था कि इतनी जल्दी में इतना अच्छा समुद्र-यात्री कैसे हो गया । कहने को तो यही प्रसिद्ध है कि अच्छे समुद्र-यात्री जन्मना होते हैं, कर्मणा नहीं । बिलकुल भारतीय जातिवाद की तरह ।"

उस ने कहा, "यह तो मेरी एवोमिन की तारीफ़ है ।"

मैं ने मुसकरा कर उत्तर दिया, "नहीं, मिस एवोमिन की ।"

वह बोली, "तुम वार्ता में इतने चतुर हो, फिर भी एक स्त्री से मात कैसे खा गये ? मेरा तो अनुभव कुछ ऐसा हो रहा है कि तुम बातों से दिल जीत सकते हो ।"

मेरा उत्तर था, "और ऐसा व्यक्ति बातों में ही दिल या कि जीवन की बाज़ी हार भी तो सकता है । समझ लो इसी से मैं ने मात भी खा ली । सोचा था वह मेरी आखिरी मात होगी, पर लगता है अभी एक और मात बाक़ी है ।"

वह मुसकरा कर बोली, "तुम्हारा उत्तर मुझे अच्छा लगा । पर ज पंजिम में किसी और से मिलोगे तब भी शायद यही कहोगे कि यह मे जीवन की आखिरी मात है ।"

मैं ने सविनोद कहा, "तुम तो वहाँ होगी ही । देखना क्या हो है । अच्छा तो फिर क्या हुआ ?"

वह उत्फुल्ल सी हँसी, "तुम तो ऐसे पूछ रहे हो जैसे ग्रैनी से क सुन रहे हो ।"

मैं ने ईमानदारी से कहा, "यह तुम मेरे प्रति नहीं, अपने प्रति अन्याय कर रही हो।"

वह बोली, "मन कर रहा है कि तुम्हारी बात सच मान लूँ, पर डरती हूँ।"

"डर किस बात का ?" मेरा प्रश्न था।

"कुछ अपना। कुछ मित्र का। और कुछ और भी।" उस ने कहा।

"वह क्या ?" मैं ने पूछा।

"एक से मात खा कर दूसरी से तो बदला नहीं लोगे ?" वह बोली।

मैं ने कहा, "तुम इतनी भीरु हो ?"

"उम्र का तकाजा है।" उस ने किंचित् चपलता से कहा।

"झूठ बोलती हो !" मैं ने कुछ कहने के लिए कह दिया।

"तो सच ही बोल दूँ ?" उस ने पूछा।

मैं ने कहा, "हाँ।"

वह बोली, "मुझे यह सब सपना लग रहा है।"

"सपना क्यों ?" मैं ने पूछा।

बोली, "मन को मैं अस्थिर और कामरूप मानती आयी हूँ। पर अपने मन के बारे में कभी ऐसा नहीं सोचा था।"

"मन ही जो ठहरा !" मैं ने चंचलता से भर कर कहा।

"तो ?" वह बोली।

"तो, कुछ नहीं।" मैं ने कहा।

"अच्छा तो सोयें ?" उस ने शायद यूँ ही कहा था।

"नहीं, तुम बोलती रहो—जब तक रात नहीं जाती तब तक तो बोलती ही रहो ?" मैं ने जैसे अनुनय की।

"उस के बाद ?" उस के प्रश्न में गम्भीरता थी।

"तुम अपनी स्वामिनी होगी, किन्तु मैं नहीं।" मैं ने कहा।

बोली, "बातूनी कहीं के !"

मैं ने फिर कहा, "श्रोता बनने का अवसर तो दो।"

"तो सुनो"—उस ने कहा और फिर चुप हो गयी। वह चुप थी र मैं उन संवादों का विवेचन कर रहा था। शब्द के लिए शब्द। ात के लिए बात। मैं जानना चाहता था कि इस सब कुछ में ईमानदारी कितनी है। पर किस से जानता? यह अन्य के प्रति अविश्वास का सवाल न था। यह तो अपने ही प्रति अविश्वास था।

इस बीच वह छूटे हुए कथासूत्र को ढूँढ़ चुकी थी और बोली, "जानते हो पोर्चुगीज शासन की हमें सब से बड़ी देन क्या है?"

मेरे हाँ या ना की प्रतीक्षा किये बिना ही वह कहती गयी, "ये इन्फ़ैण्टिल, ये रेकोलियमेन्तु और ये बार। स्कूल उन्होंने नहीं दिये। कल्चरल संस्थाएँ नहीं दीं। राजनीतिक चेतना नहीं दी। कुछ अजीब मूल्य दिये।"

समझ न पा कर मैं ने पूछा, "यह रेकोलियमेन्तु क्या?"

"ओः नहीं जानते?" अचरज से बोली, और बताया, "पंजिम जब जाओ तो वहाँ अल्तीनो पर अब भी एक जगह देखोगे जहाँ एक बोर्ड पर लिखा है : रेकोलियमेन्तु द नास्स सिन्योरा द सैर्र। अँगरेजी में चाहो तो कह लो : रिट्रीट ऑव अवर लेडी ऑव दी माउण्टेन। हिन्दी में क कहोगे, यह तुम जानो। पर शब्दार्थ यहाँ प्रधान नहीं। यह एक सं का नाम है। यहाँ अनाश्रिताएँ आश्रय पाती थीं। अपनेआप में अ बुरा नहीं। पर मेरा सवाल तो यह है कि अवैध बच्चे हों ही क स्त्रियाँ अनाश्रिताएँ बनें ही क्यों? जब तक उन के देह का शोषण जा सकता था, जब तक वे रूपाजीवा बनी रह सकती थीं, तब ठीक। पर उस के बाद? सुरक्षा का आश्वासन इस रूप में? जीवन की ट्रेजेडी की सुरक्षा का आश्वासन! इसी से मैं कहती हूँ संस्थाओं की ज़रूरत ही क्यों पड़े?"

उस की आवाज में दर्द था। वह कह रही थी, "ये जो पाँव की धूल भी नहीं, कुछ वैसा ही बनना चाहते हैं। क़या

यीशु आगे बढ़ कर खुदा से सब के गुनाहों की माफ़ी माँग लेगा। और ये जैने इसी जिन्दगी में खुद खुदा बन कर उन गुनाहों को माफ़ करना चाहते हैं। जब कि उन के लिए ये जिम्मेदार भी खुद हैं। अजीब विरोधाभास है। मैं जब यह देखती हूँ और सोचती हूँ तो उलझने लगती हूँ।"

मैं श्रद्धालुवत् सुन रहा था। वह ईमानदारी की आग में तप कर बोल रही थी, "तुम्हें वह घटना भी बताऊँ। कभी-कभी फ़ादर एन्तुइनों के बजाय एक और फ़ादर भी आता था। मैं उस का नाम कभी याद नहीं कर पायी। वह मुझे कभी अच्छा नहीं लगा। शायद इसी से स्मृति पर उस का नाम अंकित नहीं हुआ। उस के लिए फ़ादर शब्द भी मुझे अजीब लगता था। वहाँ एक लड़का था। आठ-नौ साल की उम्र होगी। सब लड़कों में सुन्दर, जब भी वह फ़ादर आता, उसे छिपा कर कुछ दे जाता। जैसे टॉफ़ी या वैसे ही कोई खाने की चीज़। एक दिन जब उस लड़के ने एक टॉफ़ी मुझे खाने को दी तो मैं ने उस से पूछा कि उस ने कहाँ से पायी यह टॉफ़ी? उस ने मुझे सच-सच बता दिया। मैं ने फिर पूछा—पर तुम्हें ही वह क्यों देता है? और भी तो बच्चे हैं—हम सब ही।

"उस का अचम्भे में डालने वाला जवाब था—वह मुझे प्यार जो करता है।

"मेरे समझ में नहीं आया। प्यार उसे ही क्यों? प्यार तो ऐसी चीज़ नहीं जो छिपा कर किया जाये। और फिर एक से अधिक को न किया जाये। मैं ने कहा—मैं समझी नहीं। स्पष्ट कहो?

"मेरे इस प्रश्न के उत्तर में उस ने बेशर्मी के साथ बहुत सी बातें मुझे बता डाली। मुझे वह सब बातें अतिशयोक्ति ही लग रही थीं। उस तरह के प्यार को मैं जानती ही न थी। जान भी कैसे सकती थी। उस लड़के को मैं ने झूठा ही समझा और कहा भी—यह नामुमकिन है। ऐसा कैसे हो सकता है? तुम झूठे ही नहीं चोर भी हो। य टॉफ़ी तुम ने चुरायी है।

"और इतना कहने के साथ ही मैं ने अपने मुंह की टॉफ़ी थूक दी थी।
झे और भी अचरज हुआ जब मैं ने उस लड़के को अनुत्तेजित ही देखा।
ह बोला—मत यक़ीन करो। वैसे मैं साबित कर सकता हूँ कि मैं सच हूँ।

"मैं चुप ही रही। मेरी चुप्पी में अविश्वास ही प्रच्छन्न था। अब वह
भी कमज़ोर पड़ा। उस कर्म में उसे कुछ अनुचित नहीं लग रहा था।
अनुचित जो था, उस का झूठा माना जाना। बस अहं से भर कर
बोला—अच्छा तो साबित कर दूँगा। जब रात में तुम सो जाओ तब
तुम्हें उठाऊँ तो बुरा तो नहीं मानोगी ?

"मैं ने कुछ नहीं कहा था। हाँ, ना, कुछ भी नहीं। पर एक दिन
उस ने मुझे रात में जगाया। अपने पीछे चुपचाप आने को कहा। चैपल
के 'आयल' में मुझे ले गया और एक खम्बे की ओट में खड़ा कर दिया।
वहाँ अन्धकार था। कुछ भी नहीं दीख रहा था। वह बहुत ही धीमे से
बोला—वह वहीं है, अब तुम उस की आवाज़ सुनोगी।

"और मेरे पास से वह चला गया। कुछ ही क्षण में मैं ने सुना वह
उसी फ़ादर से बात कर रहा था। फ़ादर का स्वर स्पष्ट था। बस मुझे
विश्वास करना ही पड़ा। मैं तत्काल लौट आयी। तेज़ी में दीवाल से
टकरायी। पैरों की धमक की भी परवा नहीं की। अगले दिन मेरी इ
हरकत पर वह लड़का बेहद बिगड़ा था। वह फ़ादर उस से नाराज़
गया था। मगर वह नाराज़गी ज्यादा दिन नहीं रही। वह ल
बराबर टॉफ़ियां खाता रहा।

"इस घटना से मेरी रही-सही आस्था भी डोल गयी। उस सब
को यथार्थ रूप में समझ सकने की मेरी उम्र न थी। बस इतना
थी कि वह सब कुछ ग़लत है। पाप है जो एक फ़ादर को हरगिज़
करना चाहिए।

जब वही फ़ादर हमें धर्म की शिक्षा देते हुए पाप से ब
बुराई से दूर रहने का उपदेश देता तो मेरा मन करता कि सब

कह डालूँ कि वह खुद पापी है। बच्चों को पाप की ओर ले जाता है, उसे बच्चों के पास तक नही आने देना चाहिए।

"पर मैं ऐसा कुछ भी नही कह सकी। पता नही क्यों? जोजे, जिस से मैं काफी घुल-मिल चुकी थी, उस तक से मैं यह बात नही कह सकी। मुझे यही लगता कि कौन मेरी बात मानेगा। मैं ने ही उस लड़के की बात कब मानी थी। जब उस ने मुझे सब कुछ दिखा दिया, तभी न मैं ने यकीन किया। पर मैं तो वैसा नही कर सकती।

बस तब से मेरा मन यही करने लगा था कि मैं जल्दी ही वहाँ से चली जाऊँ। कोई मुझे अपनी सन्तान बना कर रखे। मैं भी दूसरे बच्चों की तरह खुले मैदानों में खेलूँगी। उन्ही की तरह जीऊँगी, बढ़ूँगी। वहाँ तो मैं उस पौदे की तरह थी जो कँटीली झाडियों से घिरा हो और जिसे पानी देने की याद माली तक को न रहती हो।

रथ ने आगे कहा था—मुझे जोजे की शान्ति और धीरज पर अचरज होता था। मैं चाहती थी कि जैसे मैं अनास्थ और बेचैन हूँ वैसे वह भी हो उठे। तब हम दो होंगे और दोनों मिल कर कुछ कर भी सकेंगे। क्या कर सकेंगे, यह मैं ने कभी नही सोचा था। केवल अपने अकेलेपन से डरती थी। और जोजे की आस्था को मिटाने का कोई तरीका सूझता ही नही था। अपने बाल मन से जितनी भी बातें सोचती, बाद में खुद ही उन पर हँस लेती।

पर एक दिन मैं ने जोजे से यूँ ही पूछ लिया था—तुम्हारा मन यहाँ से भाग जाने को नही करता जोजे?

उस ने सरलता से पूछा था—तुम्हारा मन करता है?

मैं ने कहा था—हाँ?

पर कहाँ जाओगी?—उस ने पूछा था।

यह तो नही जानती।—मेरा उत्तर था।

उस ने समझदार की तरह कहा था—तो अभी यहीं ठहरो।

इतना सुना कर रुथ हँस पड़ी। और बोली—वह जोज़े कुछ ऐसा था।

जोज़े की बात पर हँसते-हँसते वह चुप हो गयी थी। जब उस ने फिर बोलना शुरू किया तो मन को वही सुख मिला जो तनाव के मिट जाने पर मिलता है। रुथ ने कहा था—रोज़मारी चली गयी थी। जो व्यापारी उसे ले गया था, जाने क्यों उस के नाम का स्मरण आते ही मुझे हँसी आ जाती थी। कॉन्सी सॉउ रोद्रीगिश ! नाम में कोई असामान्यता नहीं, फिर भी उस नाम पर मैं हँसे बिना नहीं रह सकती थी। आकृति भी उस की निराली ही थी—छोटा क़द, मोटा पेट, सँकरा माथा। लम्बी पैनी नाक, चौड़ी ठोड़ी, दोनों के बीच में बहुत पतले और लम्बे होंठ। कान कुछ ज्यादा ही छोटे। जैसे जल्दी में ग़लत या बेमेल पुरज़े एसैम्बिल कर दिये गये हों। तिस पर पैनी मूँछें : बिच्छू के डंक सी तनी। लगता कि आँखों में अब गुवाँ कि अब गुवाँ। उस की गोल-गोल आँखें लाल रहती थीं। जैसे मूँछों को आतंकित करने की कोशिश कर रही हों। सिर के बाल आधे से अधिक उड़ चले थे और जो शेष थे उन का रंग सलेटी सा था। यह सब मोटी और ढलुआ कन्धों से जुड़ी गरदन पर टिका था। पर कपड़े उस के बेहद बढ़िया थे। जिस कार में आ था वह भी मामूली न थी। उस की शक्ल पर चाहे कोई हँस ले, उस वैभव पर हँसने की किसी की हिम्मत नहीं थी।

जब वह रोज़ को लेने आया तो ढेरों खिलौने और मिठाइयां था। रोज़ अपने हाथों से वह सब चीज़ें बाँट रही थी। वह बेहद थी। ऐश्वर्य की स्वामिनी होने जा रही थी। व्यापारी के कोई सन थी। उस की पत्नी बेटा चाहती थी, पर वह बेटी। अन्त में इच्छा पूरी हुई और रोज़ बेटी बनी।

वह बाद में भी आया करती थी। ढेरों फल-मिठाई लाती। सब को बाँटती और तब उस का अभिमान उस की भँवों की कमान पर बान सा तना रहता था।

यह कह कर रुथ ने अपनी गरदन को अजीब ढंग से झटका दिया था। जैसे किसी बोझ को उतार फेंकना चाहती हो। फिर उस झटके से अस्त-व्यस्त हुए बालों को अँगुलियों से सँवारती बोली थी—रोज़ खेल-मिठाई बाँटती जोज़े तक आयी। वह मेरी ही बगल में खड़ा था। बोली—तुम क्या लोगे ?

जोज़े ने दार्शनिक भाव से कहा—मैं वही लूँगा, जो मेरा पिता ईश्वर मुझे देगा।

इस पर रोज़ ने अवज्ञा से कहा था—पर इस समय तो मैं दे रही हूँ। तुम माँग लो।

दस वर्ष के जोज़े ने जो उत्तर दिया था वह आज तक मुझे चकित कर देता है। उस ने कहा था—देना ही हो तो मुझे अपना अहंकार दे दो।

रोज़ नहीं समझ सकी थी, किन्तु मुझे उस संवाद को सुनते देख कर उस ने कुछ ऐसा भाव प्रदर्शित किया था जैसे सब कुछ समझ रही है। और बस निरर्थक सी हँसी हँस पड़ी थी। हँसते-हँसते उस ने जोज़े की ओर एक खिलौना बढा दिया था। जोज़े ने उस खिलौने को लिया और फिर वापस खिलौनों की टोकरी में डालते हुए बोला था—धन्यवाद। मैं ईश्वर से सदा यही प्रार्थना करूँगा कि तुम्हारे ऐश्वर्य में कभी कोई कमी न हो।

इस के बाद अप्रतिभ सी रोज़ मेरी ओर बढ़ी थी। उस ने मुझ से कुछ नहीं पूछा और जो पैकेट उस के हाथ में आया, मेरी ओर बढ़ा दिया। मेरी इच्छा भी वैसा ही करने की थी जैसा कि जोज़े ने किया था। पर इस संकोच से कि वह मुझे नकलची न समझे मैं ने ले लिया था। वह दूसरे बच्चों की ओर बढ़ चली थी। मैं उस पैकेट को हाथों में कुछ ऐसे थामे थी जैसे कोई अप्रिय चीज हो। तभी जोज़े को मैं ने कहते सुना

था—मुझे डर था कि कहीं तुम मना न कर दो।

मुझे जोज़े की वात अच्छी नहीं लगी थी। मैं ने कह दिया था—क्यों, क्या मैं वही करती हूँ जो तुम करते हो ?

उस ने विना उत्तेजित हुए कहा था—तुम तो समझती ही नहीं। तुम्हारे ले लेने से उस को खुशी हुई होगी। तुम भी मना कर देतीं तो उसे चोट लगती। मुझे खुशी है कि तुम ने उस का दिल नहीं तोड़ा।

मैं ने उस साधुता पर रोष ही प्रकट किया। कहा—तो तुम ने क्यों नहीं उस का मन रख लिया ?

वह सहज भाव से वोला—हाँ, तुम ठीक कहती हो। मुझे वैसा ही करना चाहिए था, कहो तो मैं अव जा कर माँग लूँ।

बुद्धू हो !—अचानक मैं ने कह दिया था। यह विशेषण तो मैं ने उसे अनेक वार दिया था, पर हर वार विनोद और स्नेह में ही। किन्तु इस वार मैं चिढ़ कर कह उठी थी। इस पर भी वह शान्त भाव से चुप हो रहा था।

दान के इस नाटक के वाद रोज़ चली गयी थी। हम सव ने रटन्तू तोतों की तरह शुभ कामनाओं के कुछ वाक्य दोहराये थे, जो हर वच्चे के जाने के वक़्त हम कहा करते थे। समय से पहले मदर फ़र्नेण्डिया हम सव को सावधान कर दिया करती थीं और कच्ची स्मृति के वच्चों से एकाध वार दुहरवा भी लेती थीं। पर जव रोज़ चली गयी तो मुझे अफ़सोस ही हुआ।

मन अजीव ढंग से भारी हो उठा था। उस की वहुत सी वुरी वातें भी अच्छे ढंग से याद आने लगीं और लगा जैसे वह जाते-जाते हम लोगों के अपने जीवन का कुछ अंश भी ले गयी है। वह अंश उसी से रक्षित था। उस के जाते ही चला गया।

मेरे मन की उदासी चेहरे पर उभर आयी थी, जो पास खड़े जोज़े से भी न छिपी। उस ने सहज कोमल स्वर में कहा था—तो रोज़ चली

हो गया।

मेरे चुप ही रहने पर वह फिर बोला था—अब मैं सोचता हूँ वह बुरी लड़की न थी।

उस की प्रशस्ति मुझे अच्छी नहीं लगी। जाने मेरे मन का यह कौन सा रूप था जो जोज़े से सिर्फ अपनी ही तारीफ सुन सकता था। मैं ने इसी से तुनक कर कहा था—तुम्हें तो यहाँ रहने वाला हर बच्चा बुरा लगता है। जब वही चला जाता है तो उपदेशक की तरह कहते हो—वह अच्छा ही था, बुरा नहीं था।

तभी मदर ने कोई विशेष आज्ञा प्रसारित कर दी थी और हम सब उसी के पालन में लग गये थे। मैं जोज़े का उत्तर तक न पा सकी। शायद उस का उत्तर हँसी के सिवा होता भी कुछ नहीं।

रुथ क्षण भर चुप रही, मन ही मन मुसकरायी, फिर बोली—तुम सोचते होगे कि मैं बड़ी बातूनी हूँ। पर सुनो। अपनी इच्छा के विरुद्ध भी मैं वहाँ रह रही थी। इसी तरह एक साल और बड़ी हो गयी। जोज़े भी अभी वहीं था। वह डील-डौल में तेज़ी में बढ़ रहा था। एक ही बरस में जैसे कई बरसों की मंज़िल तय करने की ठान ली थी। वह टॉफ़ी वाला लड़का भी अभी तक वहीं था। उस का नाम था आतुरा। वहाँ जितने भी बच्चे थे उन में वह सब से सुन्दर था। मगर इस एक साल में उस की सूरत अजीब हो चली थी। उस की चेष्टाएँ कुछ ऐसी हो गयी थीं कि सुन्दरता में जो पवित्रता दीप्ति बन कर छिपी रहती है वह एकदम मुरझा गयी थी। नाक-नक्श वही, पर प्रभाव विपरीत। मैं उस के साथ खेल तक नहीं सकती थी। वह अगर मुझे कभी छू लेता था तो मेरी इच्छा होती थी कि मय कपड़ों के जा कर नहा आऊँ। उस की दी हुई चीज़ तो मैं कभी मुँह तक ले ही नहीं जा सकती थी। लगता था

मुँह में रखी नहीं कि उबकाई आयी नहीं।

पर एक दिन उस की कहानी का भी अन्त आ गया। शायद तुम जानते हो कि गोआ में बरसात बुरी तरह होती है। बम्बई की बरसात तो कुछ नहीं उस के आगे। जब बरसना शुरू करती है तो अति कर देती है। कई-कई दिनों तक लगातार बारिश। कभी इतनी तेज़ कि आवाज़ से डर लगने लगे, कभी कम तेज़, कभी हलकी। कभी रुकती भी है तो नाम को ही। बस यही समझो कि राम जी का ताल चूता ही रहता है।

'राम जी का ताल'—अपनी इस अभिव्यक्ति पर रुथ कुछ प्रसन्न सी हुई थी। मैं ने आँखों ही आँखों में सराहना की तो वह सन्तुष्ट भाव से बोली—डैक पर यह बत्ती न होती तो मुझे अच्छा नहीं लगता। मैं बात ही नहीं कर सकती अगर दूसरे का मुँह न दिखाई दे। भटक कर चली आयी फीकी सी रोशनी की इस झलक में तुम्हारे मुख को जितना भी देख पाती हूँ वही मेरे लिए काफ़ी हो जाता है।

मैं ने कहा—पर मुझे रोशनी पसन्द नहीं। एकदम अँधेरा गुप होता तो अच्छा था। तब मैं तुम्हारे बाल छू कर तुम्हारे अस्तित्व का बोध करता और तुम....

उस ने मुझे वाक्य पूरा करने ही नहीं दिया। बोली—और मैं तुम्हारे खुर्राटे सुन कर। तब तुम जाने किस दुनिया में होते।

मुझे आश्चर्य हो रहा था कि मैं उस से कितना अभिन्न हो चला था। अपनी बात कह कर मैं चौंकता और चौंक कर दूरी अनुभव करने लगता। मगर वह उस सब कुछ को सहज मन से स्वीकार कर के मुझे आश्वस्त ही नहीं अचम्भित कर डालती थी।

मैं सोच ही रहा था कि वह कहने लगी—तुम्हारी आँखों की चमक ने मेरी कहानी का सूत्र ही तोड़ दिया। बात कर रही थी बरसात की। वह रात बादलों की मनमानी की थी। धुँआधार बारिश! बादल जैसे धरती के सागरों को आसमान में ले जा कर उलट देंगे। मैं झड़ी की

आवाज से जाग गयी थी। एक बार जो जागी तो फिर नींद कल्पनाशील मन के पास लौटी ही नहीं। बाहर हवा घुमड़-घुमड़ कर चल रही थी और हमारे बड़े कमरे की छत चूने लगी थी। खपरैल की सन्धों में पानी घुस जाता था और टप-टप मेरे सिरहाने के पास गिरता रहा।

कमरे में रात को एक हलकी बत्ती जला करती थी। मेरे अलावा सभी बच्चे सोये पड़े थे। आतुश की खाट मेरी खाट से एक खाट छोड़ कर थी। तभी मैं ने किसी के पाँवों की आहट सुनी। कोई जैसे पाँव दबा-दबा कर चल रहा था। मैं सुन्न पड़ी रही। आवाज की तरफ मेरी पीठ थी। थोड़ी देर में वह आवाज बिलकुल मेरे पास आ गयी। मैं ने आँखें बन्द कर ली थीं। वह आवाज क्षण भर को रुकी और फिर उसी तरह सधे क़दमों आगे बढ़ गयी। अब मैं ने धीमे से आँखें खोलीं। भीगे सफ़ेद लबादे में कोई आतुश की खाट के पास खड़ा था। एक बार तो मैं भय से चीखने को हुई पर फ़ौरन सम्हल गयी। मैं समझ गयी थी कि वही पादरी है, आतुश को जगा रहा है। आतुश गहरी नींद में सोया था, उठ नहीं रहा था। उस पादरी ने उसे उठते न देख कुछ ज़ोर से झिंझोड़ा। इस से आतुश नींद में घबड़ा उठा और भय से आक्रान्त उस के लबादे को ही दोनों मुट्ठियों में कस कर पकड़े चिल्लाने लगा। फ़ौरन पूरे 'होम' में तहलका मच गया। उस कमरे के सभी बच्चे जाग गये। मदर सुपीरियर की आवाज दूर से आती सुनाई दी—"क्या बात है? कौन चिल्लाया?" वह पादरी छूट कर भागने की कोशिश में था। मगर आतंकित आतुश ने उस के लबादे को कुछ ऐसे पकड़ रखा था कि वह मुक्त ही नहीं हो पा रहा था। इतने में जोज़े ने आगे बढ़ कर उसे पीठ पर से पकड़ लिया था और तभी मदर सुपीरियर आ गयी थी।

मदर सुपीरियर ने उस पादरी को देखते ही आश्चर्यात्मक ढंग से पूछा—फादर तुम? तुम इस वक़्त यहाँ?

आतुश तब तक सावधान हो चुका था। अपनी मूर्खता से वह जो

मुँह में रखी नहीं कि उबकाई आयी नहीं।

पर एक दिन उस की कहानी का भी अन्त आ गया। शायद तुम जानते हो कि गोआ में बरसात बुरी तरह होती है। बम्बई की बरसात तो कुछ नहीं उस के आगे। जब बरसना शुरू करती है तो अति कर देती है। कई-कई दिनों तक लगातार बारिश। कभी इतनी तेज़ कि आवाज़ से डर लगने लगे, कभी कम तेज, कभी हलकी। कभी रुकती भी है तो नाम को ही। बस यही समझो कि राम जी का ताल चूता ही रहता है।

'राम जी का ताल'—अपनी इस अभिव्यक्ति पर रुथ कुछ प्रसन्न सी हुई थी। मैं ने आँखों ही आँखों में सराहना की तो वह सन्तुष्ट भाव से बोली—डैक पर यह बत्ती न होती तो मुझे अच्छा नहीं लगता। मैं बात ही नहीं कर सकती अगर दूसरे का मुँह न दिखाई दे। भटक कर चली आयी फीकी सी रोशनी की इस झलक में तुम्हारे मुख को जितना भी देख पाती हूँ वही मेरे लिए काफ़ी हो जाता है।

मैं ने कहा—पर मुझे रोशनी पसन्द नहीं। एकदम अँधेरा गुप होता तो अच्छा था। तब मैं तुम्हारे बाल छू कर तुम्हारे अस्तित्व का बोध करता और तुम....

उस ने मुझे वाक्य पूरा करने ही नहीं दिया। बोली—और मैं तुम्हारे ख़ुर्राटे सुन कर। तब तुम जाने किस दुनिया में होते।

मुझे आश्चर्य हो रहा था कि मैं उस से कितना अभिन्न हो चला था। अपनी बात कह कर मैं चौंकता और चौंक कर दूरी अनुभव करने लगता। मगर वह उस सब कुछ को सहज मन से स्वीकार कर के मुझे आश्वस्त ही नहीं अचम्भित कर डालती थी।

मैं सोच ही रहा था कि वह कहने लगी—तुम्हारी आँखों की चमक ने मेरी कहानी का सूत्र ही तोड़ दिया। बात कर रही थी बरसात की। वह रात बादलों की मनमानी की थी। धुँआधार बारिश! बादल जैसे धरती के सागरों को आसमान में ले जा कर उलट देंगे। मैं झड़ी की

आवाज से जाग गयी थी। एक बार जो जागी तो फिर नींद कल्पनाशील मन के पास लौटी ही नहीं। बाहर हवा घुमड़-घुमड़ कर चल रही थी और हमारे बड़े कमरे की छत चूने लगी थी। मदरैल की सन्धों में पानी घुस जाता था और टप-टप मेरे सिरहाने के पास गिरता रहा।

कमरे में रात को एक हलकी बत्ती जला करती थी। मेरे अलावा सभी बच्चे सोये पड़े थे। आनुग की खाट मेरी खाट से एक खाट छोड़ कर थी। तभी मैं ने किसी के पाँवों की आहट सुनी। कोई अँधे पाँव दबा-दबा कर चल रहा था। मैं सुन्न पड़ी रही। आवाज की तरफ़ मेरी पीठ थी। थोड़ी देर में वह आवाज बिलकुल मेरे पास आ गयी। मैं ने आँखें बन्द कर ली थीं। वह आवाज क्षण भर को रुकी और फिर उसी तरह सधे क़दमों आगे बढ़ गयी। अब मैं ने धीमे से आँखें खोलीं। भीगे सफ़ेद लबादे में कोई आनुग की खाट के पास खड़ा था। एक बार तो मैं भय से चीखने को हुई पर फ़ौरन सम्हल गयी। मैं समझ गयी थी कि वही पादरी है, आनुग को जगा रहा है। आनुग गहरी नींद में सोया था, उठ नहीं रहा था। उस पादरी ने उसे उठते न देख कुछ ज़ोर से झिंझोड़ा। इस से आनुग नींद में घबड़ा उठा और भय से आक्रान्त उस के लबादे को हो दोनों मुट्ठियों में कस कर पकड़े चिल्लाने लगा। फ़ौरन पूरे होम' में हड़कंप मच गया। उस कमरे के सभी बच्चे जाग पड़े। मदर सुपीरियर की आवाज दूर से आती सुनाई दी—"क्या बात है? कौन चिल्लाया?" वह पादरी छूट कर भागने की कोशिश में था। मगर आतंकित आनुग ने उस के लबादे को कुछ ऐसे पकड़ रखा था कि वह मुक्त ही नहीं हो पा रहा था। इतने में जोजे ने आगे बढ़ कर उसे पीठ पर से पकड़ लिया था और तभी मदर सुपीरियर आ गयी थीं।

मदर सुपीरियर ने उस पादरी को देखते ही आतंकित ढंग से पूछा—फ़ादर तुम? तुम इस वक़्त यहाँ?

आनुग तब तक सावधान हो चुका था। अपनी मूर्खता से वह जो

मुँह में रखी नहीं कि उबकाई आयी नहीं।

पर एक दिन उस की कहानी का भी अन्त आ गया। शायद तुम जानते हो कि गोआ में बरसात बुरी तरह होती है। बम्बई की बरसात तो कुछ नहीं उस के आगे। जब बरसना शुरू करती है तो अति कर देती है। कई-कई दिनों तक लगातार बारिश। कभी इतनी तेज़ कि आवाज़ से डर लगने लगे, कभी कम तेज़, कभी हलकी। कभी रुकती भी है तो नाम को ही। बस यही समझो कि राम जी का ताल चूता ही रहता है।

'राम जी का ताल'—अपनी इस अभिव्यक्ति पर रुथ कुछ प्रसन्न सी हुई थी। मैं ने आँखों ही आँखों में सराहना की तो वह सन्तुष्ट भाव से बोली—डैक पर यह बत्ती न होती तो मुझे अच्छा नहीं लगता। मैं बात ही नहीं कर सकती अगर दूसरे का मुँह न दिखाई दे। भटक कर चली आयी फीकी सी रोशनी की इस झलक में तुम्हारे मुख को जितना भी देख पाती हूँ वही मेरे लिए काफ़ी हो जाता है।

मैं ने कहा—पर मुझे रोशनी पसन्द नहीं। एकदम अँधेरा गुप होता तो अच्छा था। तब मैं तुम्हारे बाल छू कर तुम्हारे अस्तित्व का बोध करता और तुम....

उस ने मुझे वाक्य पूरा करने ही नहीं दिया। बोली—और मैं तुम्हारे खुर्राटे सुन कर। तब तुम जाने किस दुनिया में होते।

मुझे आश्चर्य हो रहा था कि मैं उस से कितना अभिन्न हो चला था। अपनी बात कह कर मैं चौंकता और चौंक कर दूरी अनुभव करने लगता। मगर वह उस सब कुछ को सहज मन से स्वीकार कर के मुझे आश्वस्त ही नहीं अचम्भित कर डालती थी।

मैं सोच ही रहा था कि वह कहने लगी—तुम्हारी आँखों की चमक ने मेरी कहानी का सूत्र ही तोड़ दिया। बात कर रही थी बरसात की। वह रात बादलों की मनमानी की थी। धुँआधार बारिश! बादल जैसे धरती के सागरों को आसमान में ले जा कर उलट देंगे। मैं झड़ी की

आवाज से जाग गयी थी। एक बार जो जागी तो फिर नींद कल्पनाशील मन के पास लौटी ही नहीं। बाहर हवा घुमड़-घुमड़ कर चल रही थी और हमारे बड़े कमरे की छत चूने लगी थी। खपरैल की सन्धों में पानी घुस जाता था और टप-टप मेरे सिरहाने के पास गिरता रहा।

कमरे में रात को एक हलकी बत्ती जला करती थी। मेरे अलावा सभी बच्चे सोये पड़े थे। आतुश की खाट मेरी खाटसे एक खाट छोड़ कर थी। तभी मैं ने किसी के पाँवों की आहट सुनी। कोई जैसे पाँव दबा-दबा कर चल रहा था। मैं सुन्न पड़ी रही। आवाज की तरफ मेरी पीठ थी। थोड़ी देर में वह आवाज बिलकुल मेरे पास आ गयी। मैं ने आँखें बन्द कर ली थीं। वह आवाज क्षण भर को रुकी और फिर उसी तरह सधे क़दमों आगे बढ़ गयी। अब मैं ने धीमे से आँखें खोलीं। भीगे सफ़ेद लबादे में कोई आतुश की खाट के पास खड़ा था। एक बार तो मैं भय से चीखने को हुई पर फ़ौरन सम्हल गयी। मैं समझ गयी थी कि वही पादरी है, आतुश को जगा रहा है। आतुश गहरी नींद में सोया था, उठ नहीं रहा था। उस पादरी ने उसे उठते न देख कुछ जोर से झिंझोड़ा। इस से आतुश नींद में घबड़ा उठा और भय से आक्रान्त उस के लबादे को ही दोनों मुट्ठियों में कस कर पकड़े चिल्लाने लगा। फ़ौरन पूरे 'होम' में तहलका मच गया। उस कमरे के सभी बच्चे जाग गये। मदर सुपीरियर की आवाज दूर से आती सुनाई दी—"क्या बात है ? कौन चिल्लाया?" वह पादरी छूट कर भागने की कोशिश में था। मगर आतंकित आतुश ने उस के लबादे को कुछ ऐसे पकड़ रखा था कि वह मुक्त ही नहीं हो पा रहा था। इतने में जोजे ने आगे बढ़ कर उसे पीठ पर से पकड़ लिया था और तभी मदर सुपीरियर आ गयी थी।

मदर सुपीरियर ने उस पादरी को देखते ही आश्चर्यजनक ढंग से पूछा—फ़ादर तुम ? तुम इस वक़्त यहाँ ?

आतुश तब तक सावधान हो चुका था। अपनी मूर्खता से वह जो

काण्ड कर बैठा था उस से अब वह आतंकित था। इस से पूर्व कि उस से कोई कुछ पूछे वह खाट पर से उठा और बाहर की ओर भागा। किसी की समझ में नहीं आया कि वह क्या करने जा रहा है। पर वह लौटा नहीं और उस के पाँवों की आवाज़ दूर जाती हुई ग़ायब हो गयी। मदर की समझ में भी उस के भागने का रहस्य नहीं आया। जोज़े ने मदर से कहा—वह डर कर भाग गया लगता है। मैं उसे अभी पकड़ कर ले आता हूँ।

पर मदर ने उसे डाँट कर रोक दिया—नहीं। मुझे पहले से उस की इन हरकतों का कुछ आभास था। मगर मैं इस नीच को रँगे हाथों पकड़ना चाहती थी, जो उसे इस तरह नरक में धकेल रहा था।

वह पादरी कायर की तरह घिघियाता सा बोल उठा—मेरा कोई क़सूर नहीं। यह आतुश ही जिम्मेदार है। वह खुद ही रात को सब के सो जाने पर दरवाज़े की साँकल खोल देता था। तभी मैं आता था।

कहते-कहते रुथ हँस पड़ी और हँसते-हँसते बोली—मैं उस की इस घात पर तब भी हँसी थी। मदर सुपीरियर के आतंक के बावजूद हँस पड़ी थी। अब भी जब-जब उस का ध्यान आता है तो हँस पड़ती हूँ।

मदर सुपीरियर हम बच्चों के सामने बात ज्यादा बढ़ाना नहीं चाहती थीं। उस पादरी को अपने साथ आने का आदेश ले कर पुरुषवत् चल दीं। अपने-अपने ढंग से सब बच्चे यह समझ रहे थे कि कोई बहुत बुरी बात हुई है। मदर सुपीरियर और पादरी के उस कमरे से चले जाने पर मैं ने प्रश्न भरी दृष्टि स्तब्ध जोज़े के मुख पर डाली थी। जैसे उसी के उत्तर में वह दार्शनिक भाव से बोल उठा था—जानती हो, आदमी का पाप ही उसे पकड़ कर नीचे ले जाता है। इस पादरी को आतुश ने ही पकड़ा। इसी से कहते हैं कि पाप से बचो।

तभी दूर से मदर सुपीरियर की तेज आवाज़ सुनाई दी थी—बच्चो, बातें बन्द। फ़ौरन सो जाओ।

हम सब लोग तार टूटी कठपुतली से अपने-अपने बिस्तरों पर जा

लेटे थे। लगता था दूसरी मदर भी उठ आयी थीं, बारिश का जोर कम हो गया था। 'होम' के आँगन वाले बरामदे से बहुत से पैरों की आहट साफ़ सुनाई दे रही थी।

थोड़ी देर बाद सब कुछ शान्त हो गया था। मगर नींद तब भी नहीं आ रही थी। आँखें बन्द करते ही भीगे लबादे में एक भयानक सा आदमी सामने आ खड़ा होता और मैं घबड़ा कर आँखें खोल लेती। ऐसे ही एक बार जब आँखें खोली तो देखा जोजे खड़ा था। मैं ने पूछा—सोया नहीं; डर लगता है ?

मैं अपने डर को उस पर आरोपित कर रही थी। उस ने कहा—नहीं।

तो सो क्यों नहीं जाता ?—मुझे उस का नकरात्मक उत्तर बुरा लगा था। जैसे वह न डर कर मुझे अपमानित कर रहा था।

मेरे स्वर में छिपी झिड़क के बावजूद वह वहाँ से हिला नहीं था। मैं ने फिर कहा—चुप क्यों है जोजे ? बात क्या है ?

इस बार मेरे स्वर में ममता का आग्रह था। वह धीमे से बोला था—आतुरा भीग रहा होगा। वह कहाँ सोयेगा ?

मैं ने फिर डाँट बतायी—तुझे क्यों फ़िक्र पड़ी है। वह बुरा लड़का है। उस की सज़ा यही है।

जोजे का उत्तर था—नहीं, अभी वह बहुत छोटा है।

ग्यारह बरस का जोजे ख़ुद को बड़ा और ज़िम्मेदार मान रहा था। मैं एक मन से उस की इस बात पर हँसी थी और दूसरे मन से करुणा से भर उठी थी। पर क्यों, यह मेरा बाल मन तब समझने की क्षमता रखता ही नहीं था। फिर भी मैं ने उस से कहा—परेशान मत होओ।

वह मेरी ही खाट पर बैठ गया था। दूसरे बच्चे नींद की गोद में चले गये थे। मैं ने जोजे के बैठने पर कहा—मैं आतुरा को इस हरकत को पहले से जानती थी।

जोज़े को अचरज हुआ। विश्वास कर ही नहीं सका। बोला—यह
ैसे हो सकता है?

मैं ने कहा—खुद आतुश ने मुझे बताया था। जानते हो उस के पास
तनी टॉफ़ियाँ कहाँ से आती थीं?

हूँ।—जोज़े ने बड़े और गम्भीर व्यक्ति की तरह ध्वनि की। फिर
बोला—बुरा हुआ।

मैं ने पूछा—बुरा क्यों?

पर वह मेरी बात को बिना सुने ही बोल उठा था—उस फ़ादर का
अब क्या होगा?

मैं ने सर्वज्ञ की तरह कह दिया—वह भी चर्च से निकाल दिया जायेगा।

फिर?—उस ने पूछा।

फिर क्या होता?—मुझे उस का यह 'फिर' अजीब ही लगा था।

बोला—मेरा मतलब यह कि फिर वह क्या करेगा?

मैं ने झुँझला कर कह दिया—तुम तो पागल हुए हो जोज़े। जाओ
सो जाओ। ज़्यादा सोचने लगे हो।

उस ने उठने की कोई चेष्टा नहीं की। अपने बालों में अँगुलियाँ उलझाता
हुआ बोला—जानती हो, मैं उस फ़ादर की जगह होता तो क्या करता?

मैं ने कहा—बेकार की बात करते हो। तुम वह फ़ादर हो ही नहीं
सकते थे?

फिर भी जोज़े ने अपनी ही बात कही—मैं, जानती हो, आतुश क
ढूँढ़ निकालता। उसे पढ़ाता, लिखाता, अच्छा आदमी बनाता। और...

इस 'और' पर आ कर वह चुप हो गया था। जैसे अनर्थक था
'और'—यों ही जोड़ दिया हुआ। मैं मन ही मन उस जोज़े के
आदरशील हो उठी थी जो मुझे अभी से एक अच्छा, दयावान्, चरित्र
धार्मिक पादरी लग रहा था। फिर भी जाने क्यों मुझे उस के उस भ
की कल्पना से प्रसन्नता नहीं हुई थी।

अ

रुथ ने एक गहरी साँस ली और दृष्टि को डैक को रेलिंग के पार सागर के ऊपर तिरते हुए अन्तरिक्ष में फेंक दिया था और उसी तरह देखती हुई बोली थी—पर अब मैं सोचती हूँ जोजे को पादरी ही बन जाना चाहिए था।

तो वह पादरी नहीं बन पाया ?—मैं ने उत्सुकता से पूछा।

वह बोली—वह कुछ भी नही बन पाया।

है कहाँ वह आजकल, जानती हो ?—मैं ने फिर पूछा।

जानती हूँ—उस ने मन को किसी गुहा में घुस कर जैसे कहा था। उस की आवाज क्षीण और दूरागत लग रही थी। वह कह रही थी—जानती हूँ वह आज कहाँ है। पर यह नही जानती कि कल कहाँ होगा।

उस के इस उत्तर ने मेरी उत्सुकता को जाग्रत ही किया। मैं ने कल्पना भी की, पर उस कल्पना को निराधार पा कर चुप ही रहा। उस से उस बारे में तब कुछ नहीं पूछा। जाने क्यों मुझे लग रहा था कि उस व्यक्ति से अभी तक वह विच्छिन्न नही। अभी भी कहीं उस से जुड़ी है और मेरे सामने बैठी हुई *रुथ अभिधेय इस उदास मानवी प्रतिमा का* भविष्य अभी तक न वह खुद जानती है और न वह दूसरा ही। मतलब कि उस के बाल्यकाल का जोजे! अब वह जो भी हो!

रुथ ने अपनी कथा आगे बढ़ायी—अब मेरा मन वहाँ से उचाट हो चला था। मैं वहाँ से दूर कहीं ऐसी जगह चली जाना चाहती थी जहाँ मेरी अपनी इच्छा अपना विधान बन सकती। माता-पिता का सुख तो दूर उन का अस्तित्व तक नही जाना था, इस से यह भी नहीं जान पायी थी कि एक बच्चे की इच्छाओं का स्वर्ग उन्हो के आश्रय में है। फिर भी मैं वैसे ही स्वर्ग के लिए छटपटाहट से भर उठी थी। अपने इस निश्चय की घोषणा मैं ने जोजे से की। बिना कोई भूमिका बाँधे उस से कह दिया

था—अब मैं यहाँ नहीं रहूँगी।

उस का छोटा सा उत्तर था—अच्छा।

जोज़े का यह निस्संग भाव मुझे कभी अच्छा नहीं लगा। वह उत्तेजित कभी नहीं होता, यह जानते हुए भी मैं ने कहा था—तुम तो इच्छाहीन हो। तुम यहाँ रह सकते हो, मैं नहीं रह पाऊँगी।

यद्यपि वह उत्तेजित नहीं हुआ था, फिर भी मेरी आशा के विपरीत उस का उत्तर था—तो तुम चली ही जाओगी? तुम्हारे जाने के बाद मैं भी यहाँ नही रहूँगा। तब मुझे यहाँ कुछ भी अच्छा नहीं लगेगा।

मैं ने मन की प्रसन्नता को दबा कर उल्टी ही बात कही—तो मुझे इस से क्या? यहाँ से जाओगे तो किसी सैमिनरी में पहुँच जाओगे। और फिर पादरी बनोगे। पादरी से बिशप, बिशप से आर्चबिशप बनने का सपना देखोगे, कार्डिनल कहलाना चाहोगे।

कुछ और भी तो बन सकता हूँ।—उस ने अजीब भाव से मेरी ओर देखते हुए कहा था।

और क्या बनोगे?—मेरे स्वर में उपहास था।

मैं व्यापारी बन सकता हूँ। व्यापार से धनिक हो सकता हूँ।—उस ने कहा था।

मैं ने चिढ़ाते हुए जवाब दिया था—और फिर उस पैसे से सैमिनरी खोलोगे! ननरी बनाओगे! रेवरेण्ड सिस्टर, रेवरेण्ड मदर और रेवरेण्ड फ़ादरों की परम्पराएँ तैयार करोगे!

उस ने दृढ़ वाणी में कहा था—नहीं, मैं कुछ और भी तो कर सकता हूँ। मैं गृहस्थ बन सकता हूँ। मेरे सुन्दर बच्चे हो सकते हैं।

उस की इस बात पर मैं हँस पड़ी थी और हँसते-हँसते कहा था—कौन बेवक़ूफ़ लड़की तुम्हारे पाले पड़ेगी।

पर उस ने पूरी गम्भीरता से कहा था—नहीं, मैं तुम्हें ढूँढ़ निकालूँगा।

तुम्हारा मतलब?—मैं ने न समझते हुए पूछा था।

तुम्हें किसी साथी की तलाश न करनी होगी ? तुम्हें एतराज न होगा तो मैं तुम से शादी करूँगा।—उस ने निःसंकोच भाव से कह दिया था।

उस की आँखें मेरे मुख पर टिकी थीं। उस की इस बात से मेरा चेहरा लाल हो उठा था। शादी और उस के रहस्य को समझे बिना ही मैं अजीब संकोच से भर कर वहाँ से भाग गयी थी। मैं ने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि जोज़े जैसे लड़के से मैं कभी शरमा कर भाग भी सकती हूँ और न यही कभी सोचा था कि जोज़े इस तरह का स्वप्न भी देख सकता है।

दो-एक दिन मैं जोज़े से कतराती ही रही। एकान्त में उस की बातों को मन ही मन दोहरा कर खुश हो लेती। मगर सामने पड़ते ही मुझे अजीब सा संकोच घेर लेता। पर इस सब के साथ-साथ उस 'निन्यु इन्फैंण्टिल' (शिशु-नीड़) से भाग जाने की, दूर चले जाने की, मेरी इच्छा प्रबल होती ही जा रही थी।

उन्हीं दिनों इन्फैण्टिल में एक दम्पति पधारे। बड़े आडम्बर के साथ आये। मदर सुपीरियर तब हम बच्चों को बाइबिल की कहानियाँ सुना रही थीं। वे दोनों भी हम लोगों के साथ बैठ गये। मदर ने उन्हें दफ़्तर के कमरे में जा कर आराम से बैठने को कहा। मगर वे नहीं माने। पति ने यही कहा था—बच्चों के लिए तो हम दोनों तरसते हैं, फिर जब बच्चे मिले तो उन से दूर क्यों भागें।

उस कहानी को समाप्त कर के मदर ने उन से कहा था—उस की इच्छा भी रहस्यमयी है ! आप को बच्चों की इच्छा है, आतुरता है, सब साधन है, पर बच्चे ही नहीं !

इस पर पत्नी ने कहा था—ऐसी बात नहीं मदर। हमारे तीन-तीन बच्चे हैं : दो लड़कियाँ एक लड़का। मगर ये हैं कि और बच्चे चाहते हैं।

सुन कर मदर मुसकरायी थीं और कहा था—बच्चों और फूलों में ईश्वर की करुणा होती है। तुम्हारे पति भाग्यवान् हैं जो ऐसी बुद्धि पायी। ये बच्चों के बहाने ईश्वर के सरल गुणों से घिरे रहना चाहते हैं।

पतिदेव स्पष्ट ही इस प्रशंसा से तृप्त हुए थे। उन का पतला लम्बा मुख पीला होने पर भी चमक उठा था। पत्नी पति के विपरीत काफ़ी गोल-मटोल थीं। वे भी मुग्ध भाव से अपने पति को देखने लगी थीं। उन दोनों को अच्छी तरह निहार कर मदर ने कहा था—तो आप लोग तो किसी नन्हें बच्चे को ही पसन्द करेंगे। मेरे पास ऐसे भी बच्चे हैं। बड़े हो कर आप दोनों को ही अपना माता-पिता जानेंगे।

इस पर पत्नी ने कहा था—नहीं इन्हें तो बड़े बच्चे पसन्द हैं : जो शैतान हों, ऊधम मचायें, पड़ोसी भी जिन से थोड़े परेशान रहें।

मदर ने उसे विनोद के भाव में ही लिया था। और वे पति के समर्थन के लिए उन की ओर मुसकरा कर देखने लगी थीं। पति महोदय ने नाटकीय संकोच के साथ कहा था—बात अजीब सी होने पर भी सही है। मेरी श्रीमती ने जो कुछ भी कहा उस में कोई अतिरंजना नहीं। मैं जब घर वापस लौटता हूँ और बच्चों को शान्त पाता हूँ तो मेरा मन अशुभ बातों से भर उठता है। फिर जब तक हर बच्चे से मिल कर इतमीनान नहीं कर लेता कि सब कुछ ठीक-ठाक है तब तक मुझे चैन ही नहीं मिलता।

मदर ने गम्भीरता पूर्वक कहा था—खैर यह आप की पसन्द है। सब उम्र के बच्चे हमारी संस्था में हैं, जैसा आप पसन्द करें। आप के दो लड़कियाँ हैं, लड़का एक ही। शायद आप अब एक और लड़का चाहेंगे?

इस बार पति महोदय ने ही अपना अभिमत सुनाया था—नहीं मुझे लड़कियाँ ही पसन्द हैं। किसी सन्त की कृपा से मेरा यह एक लड़का भी लड़की हो जाये तो मुझे बेहद खुशी हो। लड़के अपने पिता को कम प्यार करते हैं।

मदर ने उसी गम्भीरता के साथ पूछा था—आप की पत्नी भी ऐसा ही चाहती हैं?

उत्तर श्रीमती जी ने दिया था—मुझे भी लड़कियाँ ही पसन्द हैं। माँ के काम में हाथ बँटाती हैं। लड़के तो सिर्फ़ नखरे करते और एहसान

तोड़ते हैं।

इस पर मदर ने कह दिया था—तो आप पसन्द कर लें। सब बच्चे यही हैं।

मदर के चुप होते ही उन की नजरें हम बच्चों के मुखों पर ऐसे पड़ने लगी थीं जैसे वे बच्चों का नहीं गुलदस्तों का चुनाव कर रहे हों। मुझे वह सब बिलकुल अच्छा नहीं लग रहा था। फिर भी मैं मन ही मन ईश्वर से यही मना रही थी कि वे मुझे ही पसन्द कर लें। वे कुछेक क्षण मेरे लिए अनन्त से हो चले थे। मैं साँस रोक कर उन के निर्णय की प्रतीक्षा कर रही थी। मेरी आँखें अपनेआप ही बन्द हो गयी थीं और मैं पवित्र मेरी का ध्यान लगा कर यीशु की करुणा की याचना करने लगी थी।

तभी मैं ने मदर को पुकारते सुना—रूथ बेटी, तुम भाग्यवाली हो। बच्चों को प्यार करने वाले असाधारण माता-पिता तुम्हें मिले। ये सिन्योर वाल्तज़र द चागस परेरा हैं और ये हैं इन की श्रीमती। बड़े दयावान् लोग हैं। सरकारी अधिकारी होने पर भी सरल और विनम्र हैं। ये तुम्हें अपनी पुत्री बनाना चाहते हैं।

इस डर से कि कहीं वे लोग अपना निर्णय न बदल दें मैं अपनेआप उठ कर उन के पास चली आयी थी और अप्रत्याशित आवेश के साथ श्रीमती परेरा से 'ममी' कह कर लिपट गयी थी।

उस समय मुझे खुद अपना वह आचरण अजीब लगा था। तभी मदर श्रीमान् परेरा से कह रही थीं—मुझे बेहद खुशी है आप के चुनाव पर। यह लड़की आप के गौरव और प्रतिष्ठा के अनुरूप ही रूप-गुण वाली है। स्वभाव की उद्दाम और निर्भीक है, साथ ही ईमानदार और स्नेही भी।

मदर की ये बातें मुझे अन्दर ही अन्दर विगलित किये डाल रही थीं। मदर की मूर्ति का एक ही प्रभाव मेरे मन पर अंकित था : आतंक। पर मेरी प्रशंसा करते-करते वे असाधारण रूप से कोमल हो उठी थीं। उन की उस कोमलता ने मेरे मन में उस अप्रिय स्थान के प्रति मोह जगाना शुरू

वड़ी कहे—मेरी फ़ॉक तुम्हें विलकुल फ़िट आयेगी, तुम इसे पहनो। इस का रंग तुम पर खूब फवेगा। तुम गोरी हो न ? इस फ़ॉक को मैं ने अभी एक वार भी नहीं पहना। पर दूसरी वहन यह जानते हुए भी कि उस की फ़ॉक वड़ी या छोटी है, मुझ से वही पहनने की ज़िद करेगी और कहेगी—यह फ़ॉक ज्यादा वढ़िया है। इसे लिस्वन के दरज़ी ने सिया है। मैं ने सिर्फ़ अपनी वर्थ-डे पार्टी में एक वार पहनी है। पर उस से क्या होता है। तुम पहनो। और मेरा भाई, वह तो उन दोनों को झगड़ने का मौक़ा दे कर मुझे अपने ही कमरे में ले जाना चाहेगा और अपने खिलौने दिखा कर कहेगा—इन में जापानी और जर्मनी दोनों ही खिलौने हैं। वह मगरमच्छ वड़ा प्यारा है। देखो कितना वड़ा है। चावी लगने पर जव चलता है तो सचमुच का लगता है। और चाहो तो वह रेल ले लो। वैटरी से चलती है। खूव मजा आता है जव अपनी पटरियों पर चक्कर खाती हुई दौड़ती है। टनल के नीचे से निकलती है। पुल के ऊपर भागती है। कहीं पुल रेल के ऊपर भी है। पसन्द है न ?

इतना कह कर रुथ विदग्धता-पूर्वक हँसी थी। फिर कुछ अजीव ढंग से शून्य में देख कर वोली थी—मैं इन में से किसी एक खिलौने से परिचित न थी। रोज़ जव इन्फ़ैण्टिल आती तो अपने खिलौने के वारे में वताती, अपने कपड़ों के वारे में वताती। उसी ने जो चित्र मेरे मन पर अंकित किये थे, उन्हीं चित्रों को मैं फिर से कल्पना में जीवित कर के अप्रत्याशित सुख की सृष्टि कर रही थी। उसी से लिस्वन की वातें सुनती। वहाँ के दरज़ियों की निपुणता का वह वखान करती। लगता जैसे वह वहीं पैदा हुई, वहीं पली और वहीं से आ कर वह सव कुछ सुना रही है। पर मैं कभी उस की वात का अविश्वास नहीं कर सकी। उस का वैभव अविश्वास को दूर धकेल देता था। वह सच ही होगा, जो उस के मुखार-विन्द से निकलेगा।

पर तुम जानते ही हो कि कल्पना के दो पंख हैं। एक का नाम है

सुख और दूसरे का नाम है दुख। पर उड़ती है वह एक ही पंख से। जब जो पंख जिधर ले जाये : सुख की ओर कि दुख की ओर। पर कल्पना का सुख भी तो दुख का दूसरा रूप है : वह रूप जिस की कुरूपता पर सुन्दर नकाब पड़ी हो, या कि उस अभिनय के सदृश जो एक गरीब ऐक्टर किसी राजा या लॉर्ड की भूमिका में करता है। और मेरा दुर्भाग्य कुछ ऐसा ही रहा कि मैं सदा कल्पना के पंखों पर उड़ती रही। दुख-सुख से खुद को छलती रही, या कंगाल होने पर भी रानी का अभिनय करती रही। सच ही मैं बचपन से ही महत्वाकांक्षी थी। दिन में भी सपनों की सृष्टि करती। पर पाया क्या ?

उस के स्वर में तीव्र वेदना थी। तभी कोई यात्री उठा था और जलती हुई बत्ती और रुथ के बीच ऐसे ऐंगिल पर आ गया था कि उस की परछाईं ने रुथ के चेहरे को स्याह कर दिया था। उस स्याही में मैं उस के मुख का भाव-परिवर्तन देख ही नहीं पाया था। मगर स्वर जो ध्वनि-चित्र उभार रहा था वह गहरी वेदना के रंगों में ही घुला था।

रुथ कहती गयी थी—मेरे कान उस कल्पना में भी अपने भाई-बहनों के दौड़ कर आने की आवाज़ की ओर लगे थे। गाड़ी से उतर कर भी मैं बढ़ नहीं पा रही थी। जैसे अब वे आ कर मेरे दोनों हाथ पकड़ कर खींचेंगे तभी उन की हँसी के पहियों पर लुढ़कती सी मैं अन्दर आ पहुँचूँगी और तब हम सब एक साथ एक बहुत ही बड़े कमरे में होंगे जो ढेरों खिलौनों से भरा होगा।

पर तभी मुझे आवाज़ सुनाई दी। पाँवों की नहीं मुख की। मीठी नहीं कर्कश। दूर से आती हुई नहीं, पास से उभरती हुई। श्रीमान् परेरा का स्वर था। पतले लम्बे और पीले मुख से निकला कर्कश स्वर मेरे कानों की झिल्लियों को चीर गया था। उन्होंने इतना ही कहा था—खड़ी क्यों हो, किस का इन्तज़ार है ? हमारे साथ आओ।

मेरी कल्पना का सुख नाम का पंख टूट गया था, एक ही झटके में।

-पीछे घिसटती सी चल दी। दम्पति ड्राइंग रूम में ... कालीन के एक
एक काउच पर बैठ गये। मैं ड्राइंग रूम में बिछे कालीन के एक
से कुछ हट कर सहमी सी खड़ी रही। मुझ से किसी ने बैठने तक
न कहा। तभी श्रीमान् परेरा चिल्लाये—पेड्रू, सन्तान।
और जब उधर से कोई आवाज न सुनाई दी, तो असहिष्णु हो कर
र पुकारा—पेड्रू।

अब तक पेड्रू सन्तान उपस्थित हो चुका था। एक अधेड़ उम्र
नौकर। दीन। विलम्ब के कारण घबड़ाया सा। एक आवाज़ ही जैसे
गुनाह है। दो आवाज़ देने पर आना तो अक्षम्य है। उस ने उसी
घबड़ाहट के साथ कहा—श्रीमान्।

श्रीमान् परेरा ने आँखों से अंगारे छोड़े और जलती हुई लकड़ी सा
जीभ को लप-लपा कर कहा—बच्चों को भेजो।

मैं ने उस असह्य स्थिति से घबड़ा कर श्रीमान् परेरा की ओर से
दृष्टि हटा ली थी। अब मैं श्रीमती परेरा की ओर देखने लगी थी। वे
शान्त भाव से बैठी थीं। गुलगुला वदन, मांस ने चेहरे को कुछ ज्यादा ही
गोलाई दे दी थी। फिर भी उन के पतले होंठों और सधी नाक से
सुन्दरता का आभास मिलता था। आँखें सामान्य होने पर भी अन्तर्निहित
कोमलता के कारण विशिष्ट थीं। उन्हें देख कर मुझे शान्ति सी मिली
और लगा उन के रहते कोई भय या चिन्ता की बात नहीं।

तभी बच्चे आ गये थे। शान्त और निरीह से। लगता था कि एक
दो साल से ज्यादा का अन्तर उन की उम्र में न था। उन के चेहरों
वैसी कोई दीप्ति नहीं थी जो माँ-बाप के स्नेह को पा कर स्वयं—प्रभा
उठती है। श्रीमान् परेरा ने मुझे उन की ओर ढंग से देखने ही नहीं दि
कारण कि वे कुछ कहने लगे थे और अब मेरी समस्त चेतना उ
वाणी के अंकुश से पराभूत थी। वे कह रहे थे—देखो, आज यह
आयी है। अभी हम नहीं जानते कि यह लड़की कैसी साबित होगी

वह देखा जायेगा। यह इस घर में ही रहेगी। तुम लोगों का काम करेगी। इस घर का रहन-सहन, तौर-तरीका तुम लोग जानते हो। उस को ध्यान में रखते हुए इस से बरताव करना।

सब बच्चों ने गुम-सुम भाव से सुना। इतना कहकर वे उठ खडे हुए थे और उसी टोन में श्रीमती परेरा से बोले थे—मुझे फौरन बाहर जाना है। गवर्नर-जनरल से मिलना है। गोआ का रेवेन्यु गिरता जा रहा है। सरकारी नौकरों को तनख्वाह कब तक ठीक-ठीक मिलेगी, पता नहीं। गवर्नर-जनरल ने इसी सिलसिले में मशविरे को बुलाया है।

श्रीमती परेरा ने कोई प्रतिक्रिया नहीं व्यक्त की। श्रीमान् परेरा ने भी किसी उत्तर की प्रतीक्षा नहीं की। बस कहा, उठे और चल दिये। जब पोर्च से गाडी के चलने की आवाज सुनाई दी तो बच्चों के मुरझाये चेहरे खिल उठे। छोटी लडकी ममी से पूछने लगी थी—ममी इस का नाम क्या है ? कहां से आयी है ?

ममी ने कोमलता से पूछा—बेटी अपना नाम तुम्ही बताओ ?

रुथ—मैं ने कुछ ऐसी अनिच्छा से बताया जैसे उस नाम को बता कर मैं अपनी किसी बुराई की ही घोषणा कर रही हूं। बस धक्के के साथ उन अक्षरों को धकेला जो मेरे भिंचे दांतों के बीच से मृतक की सांस से असहाय भाव से निकल पडे थे।

नाम सुन कर बच्चे मुसकराये थे। नाम में तो कुछ हंसने को न था। उन की वह मुसकराहट मेरी परेशानी पर ही थी। तभी ममी ने कहा—अब तुम लोग भी अपना नाम बताओ।

पहले छोटी ही बोली। पपीहा सी—इमैल्डा। आवाज बडी मीठी और प्यारी थी। पर सूरत माँ की न पा कर बाप की पायी थी।

तुम भी अपना नाम बताओ—ममी ने इस बार बडी लडकी की ओर संकेत किया। वह मेरी अपनी उम्र की लगती थी। क़द भी कुछ वैसा ही। मेरा मन कर रहा था कि फ़ौरन उस के पास जा कर खड़ी हो जाऊँ

ध के कन्धे से कन्धा मिला कर देखूँ कि कितना फ़र्क़ है। पर तभी यान अपने नंगे और उस के जूतों में सुरक्षित पाँवों की ओर गया। अन्तर ने हम दोनों की ऊँचाई के अन्तर को ही नहीं असलियत के र को भी जैसे समझाया।

में ने सुना बड़ी ने नाम बताया था—आल्दा। इमैल्दा और आल्दा बहनें। नाम मुझे अच्छे लगे। आल्दा इमैल्दा से सुन्दर थी। अपनी पर पड़ी थी। पर स्वर में उस के पिता वाली कर्कशता थी। धीरे-ोरे मैं सोचने लगी थी कि ईश्वर ने इमैल्दा को माँ का रूप और आल्द को माँ की वाणी क्यों नहीं दी।

इमैल्दा-आल्दा दोनों ने एक सी फ्रॉकें पहन रखी थीं। मेरी अप फ्रॉक उन की तुलना में बेहद भद्दी और मामूली थी, इस का एहसास मुझे और भी संकोच से भर रहा था।

अब ममी ने लड़के की ओर देखा और सिर के इशारे से अपना परिचय देने को कहा। लड़का अपनी उम्र से ज़्यादा लम्बा था। सूरत उस की कुछ अलग ही थी। न माँ पर, न बाप पर। पता नहीं किस पर पड़ा था। देखने में घुन्ना और ज़िद्दी टाइप लगता था। जाने क्यों मुझे वह अच्छा नहीं लगा। आवाज़ उस की भारी थी। उस ने अपना नाम बताया एमैरिक। नाम के अन्तिम अक्षर की ध्वनि कान में सुई सी चुभती थी। असल में उस ने जिस ढंग से नाम लिया था उस से मुझे कुछ वैसा ही लगा था।

इस परिचय-वार्ता के बाद ममी ने कहा—रूथ, मेरे साथ आओ। अब मैं तुम्हें तुम्हारा कमरा दिखा दूँ। पेड्रो से भी मुलाक़ात करा दूँ। वह तुम्हें तुम्हारा काम समझा देगा। उस की बात मानना और जैसा व कहे, करना।

ममी ने प्यार से कहा था। फिर भी उन की बात सुन कर आस से ज़मीन पर गिर पड़ी थी। अब मुझे अपनी वस्तु-स्थिति के बारे में नहीं रह गया था।

अ

रथ बिना रुके अपनी कहानी सुनाती गयी—पहली रात मुझे उस कमरे में बेहद डर लगा। बिजली होने पर भी कोई बल्ब वहाँ न था। कमरा भी, लगता था, बेकार का सामान रखने के काम में आता था। अब वह सारा सामान उसी कमरे में जरा तरतीब से रख दिया गया था और बाकी जगह में एक कैम्प-कॉट डाल दी गयी थी। कमरे में एक खिड़की भी थी। पर उस का आधा हिस्सा सामान से ढका था, इसलिए उस का खोलना नामुमकिन था। यों भी उस के शीशों में से बाहर का जो कुछ दीखता वह भी खिड़की बन्द रखने का पर्याप्त कारण था—खुली नालियाँ, मुरगा के पंख, सूखी हड्डियाँ। लगता था सफाई का कोई इन्तज़ाम न था। जो कुछ एक बार वहाँ पहुँच जाता, बस जमा ही होता रहता। यह बात दूसरी कि गल-सड़ कर वह कुछ और शक्ल ले लेता हो।

कमरे में सीलन थी और तरह-तरह के सामान में बसी सीलन भरी हवा अजीब गन्ध लिये थी। रात में सब खाना खा कर सो चुके थे। मैं ने सब से अन्त में पेड्रू के साथ खाना खाया था। उस ने मुझे खाने की मेज़ लगाने के बारे में शिक्षा दी। वह हर बात मुझे प्यार से समझाता। मैं जल्दी ही उस के प्रति सद्भाव से भर उठी थी। जब वह रसोई में व्यस्त था तब भी मैं उस के पास खड़ी थी। मुझे चुपचाप खड़ी देख कर उस ने कहा था—तुम परेशान मत होना बेबेज़िट। धीरे-धीरे आदत पड़ जायेगी। नयी जगह में आ कर ऐसा ही लगता है।

'बेबेज़िट'—यह प्यार भरा सम्बोधन मुझे पहली ही बार सुनने को मिला था। पेड्रू ने जिस प्यार से कहा था उस से इस प्यारे शब्द की कोमलता और बढ़ गयी थी। मुझे उस एक सम्बोधन ने आश्वस्त कर दिया था और अब मेरा आत्मविश्वास भी बढ़ चुका था। कुछ रुक कर पेड्रू ने कहा था—एक बात बताऊँ तुम्हें? मरम की बात है। किसी

धर्मपुस्तक में मैं ने नहीं पढ़ा और न किसी पादरी ने ही मुझे बताया, मेरे अपने अनुभव की बात है। हमारे प्रभु यीशु ने इस दुनिया में दो ही तरह के इनसान बनाये हैं। एक वे जो सेवा लेते हैं। दूसरे वे जो सेवा करते हैं। सेवा लेने वाले, चाहे खुश और सुखी लगें, अभागे हैं। वे ग़रीब से नहीं, यीशु से अपनी सेवा करवाते हैं। क्योंकि हर ग़रीब और दुखी में यीशु बसता है। और इस तरह वे क़यामत के दिन यीशु को अपनी तरफ़ नहीं पायेंगे। यीशु आगे बढ़ कर परम पिता परमेश्वर से हमारे अपराधों के लिए क्षमा माँगेगा और कहेगा असल में इन में से किसी ने कोई अपराध नहीं किया। इन्होंने सिर्फ़ सेवा की है। मनुष्य हो कर मनुष्यता निभायी है।

कहते-कहते पेड्रु का काला चेहरा चमक उठा था। पता नहीं वह चमक उन लपटों की थी जो चूल्हे से उपज रही थीं या कि उस धर्मानुभव की जो उस के व्यक्तित्व की रीढ़ थी। मैं अब भी पेड्रु को ठीक उसी रूप में कल्पित कर पाती हूँ। उस का जो पहला यथार्थ चित्र मेरे मन में उभरा था वह कभी धुँधला नहीं पड़ेगा। असल में उसी ने मुझे जीने का मन्त्र सिखाया है।

फिर रात को पेड्रु मुझे कोठरी में पहुँचा गया था। उस ने एक मोमबत्ती जला कर मेरे सिरहाने रख दी थी और एक दियासलाई भी। चलते-चलते कह गया था—सोओ तो मोमबत्ती बुझा देना। जलती रही तो हो सकता है इधर-उधर गिर कर आग पकड़ ले। और डरना मत। मैं बिलकुल पास सोता हूँ। बग़ल के ही कमरे में। तुम्हारी आवाज सुनते ही पहुँच जाऊँगा। डर लगे, जरूरत हो, तो पुकार लेना। मेरे सब साथी कहते हैं—पेड्रु सन्तान की नींद कुत्ते की नींद है। सोते देर न जागते देर। पर मैं इसे ईश्वर की कृपा मानता हूँ। मुझे नींद की खुशामद नहीं करनी पड़ती। करवटें बदल-बदल कर नींद के लिए अपने बिस्तर पर जगह नहीं बनानी पड़ती। बस जब मैं सोने से पहले अपने प्रभु यीशु को याद करता हूँ तो वह मेरे पास नींद को पोटली में बन्द कर ढेरों स्वर्गिक

मुख मेज देता हूँ।

रय ने बताया—पेड्रू कोंकनी में बात करता था। उस की कोंकणी में पोर्चुगीज के अपभ्रंश शब्दों की भरमार होती थी, फिर भी वह भाषा उस के मुख से प्यारी लगती थी। उस की बातें तो और भी प्यारी थीं। जाते-जाते वह दरवाजे के पास एक बार फिर ठिठका था और वहीं से घूम कर बोला था—तुम भी बेबेजिट, प्रभु की प्रार्थना करना। सोने से पहले, उठने के बाद हर काम के आदि और अन्त में हमेशा उस की करुणा का स्मरण करना। हम सब पापी हैं। हमारे पापों का बोझ वही अकेला ढोता है। वह सच ही करुणामय है। इसी से कहता हूँ कि कभी कृतघ्न न होना। उस की करुणा को स्वीकार करना उस की पूजा करना है।

उस के शब्दों में एक पादरी के शब्दों से अधिक प्रभाव था। पादरी मँजी हुई भाषा, शुद्ध उच्चारण और पाण्डित्य के द्वारा जितना प्रभावित नहीं कर पाते उतना यह पेड्रू अपनी मामूली भाषा पर स्पष्ट और ईमानदारी से भरी अभिव्यक्ति में कर पाता था।

पेड्रू चला गया। मैं अपनी खाट पर जा लेटी। कोई तकिया नहीं, कोई बिछौना नहीं, कोई ओढ़ना नहीं। कैंचीनुमा पायों पर पाड़ियों में फँसी कैनवास की पट्टी ही सब कुछ थी। मैं उचक कर उस में ऐसे जा लेटी जैसे नींद का पालना हो। पेड्रू की बातों ने मन को कुछ का कुछ कर दिया था। लेटे-लेटे मैं ने मोमबत्ती की लौ को देखा। सिर पर से वह गल रही थी, और जहाँ से गल रही थी वहीं से प्रकाश की ज्योति उग रही थी। मुझे लगा जैसे वह मेरी माँ की आँसू-भरी आँख है जिस में प्यार की जोत चमक रही है। मुझे यों निरीह पा कर मेरी माँ बोल तो कुछ नहीं पा रही, बस आँखों ही आँखों में प्यार का सागर उमड़ा रही है। इस कल्पना के साथ मेरा मन रो पड़ा। मैं खुद रो पड़ी। जिस माँ के अस्तित्व को जाना ही न था उसी माँ के लिए मैं रो पड़ी और होंठों से मेरे एक ही शब्द ग्रामोफोन रिकॉर्ड के ट्रैक बैक की तरह बार-बार निकल

—ममी, ममी, ममी !

फर थोड़ी देर में आप ही सुस्थिर हो गयी । अनाथ जीवन की यह क दीनता है कि अपने आँसुओं को खुद पोंछना पड़ता है, अपनी को आप ही सहलाना पड़ता है और फिर जब दुनिया के सामने जाते ी भी अपने ही भरोसे ।

बस मैं उस झूला-खाट में उठ बैठी थी । माँ की कल्पना वर्जिन मेरी प्रत्यक्ष हो उठी थी । वर्जिन मेरी जिस के तन की कोमलता ने यीशु की वित्रतम करुणा को जन्म दिया, जिस के रूप की सुकुमारता ने यीशु के रूप को मोहक मन्त्र दिया । वही ममता की माँ मेरी प्रत्यक्ष हो उठी थी मेरी आँखों में । बाँहों के झूलने में सफ़ेद गुलाब सा यीशु, जिस की शीतल शुभ्रता में चाँद भी फीका पड़ जाये और साँझ का सूरज ढल जाये !

इन्फ़ैण्टिल में ढेरों प्रार्थनाएँ मुझे याद करायी गयी थीं; मुझे क्या हर बच्चे को । मैं उन प्रार्थनाओं को तब अनिच्छा से ही दोहराती थी तोते की तरह । उन के पीछे आत्मा का विश्वास या मन की आस्था जैसी कोई चीज़ नहीं होती थी । पर उस रात जाने कहाँ से वह आस्था फूट पड़ी थी कि मेरा मन प्रार्थनाओं से भर उठा—सुबह की प्रार्थना अलग, शाम की अलग, रात की अलग । पर उस क्षण समय का अन्तर भी मिट गया था । प्रार्थनामय मन कहाँ से समय का विचार करे । बस मैं 'ब्लैसेड वर्जिन मेरी' को अर्पित प्रार्थना करने लगी : "माँ मेरी तू धन्य है, तुझ पर करुणामय ईश्वर की छाया है । स्त्रियों में तू अलौकिक है और अलौकिक है तेरे ग का वह दिव्य फल यीशु । पवित्र मेरी, ओ ईश्वर की जननी, हम पापि के लिए प्रार्थना कर । इस समय भी और तब भी जब हम मरण- हों । आमीन !"

इस प्रार्थना के साथ ही मेरा मन हलका हो उठा था । जैसे व जिम्मेदारी अब मैं ने माँ मेरी को सौंप दी थी । बस मैं ने मोमबत्ती बु और लेट गयी । मीठी नींद पलकों पर उतर आयी थी । पर मोम

बुझते ही मच्छर घिर आये थे और मुझे काटने लगे। उन की सम्मिलित भूँ-भूँ की आवाज़ भयावह हो उठी। जो शान्ति-सुरक्षा का भाव मैं ने माँ मेरी की प्रार्थना कर के जगाया था वह फिर अस्थिर हो चला। जहाँ-जहाँ मच्छर काटते जलन होने लगती। अंग-अंग आग से भर उठा था। मैं बेचैन हो उठी। अँधेरे में टटोल कर दियासलाई उठायी। एक सलाई जलायी। मोमबत्ती के मुँह को उस की लपट से छुआ। जाने कहाँ छिपा प्रकाश बिखर पड़ा और उस में उड़ते हुए मच्छर घृणास्पद कर्मों से दीखने लगे। मैं मन ही मन गलती जा रही थी। मन फिर प्रार्थनामय हुआ और अब मैं अपनी शयन-पूर्व की प्रार्थना दोहराने लगी थी: वह प्रार्थना जो हर अनुयायी के विश्वास के अनुसार रात्रि के अन्धकार में उस की रक्षा करती है।

प्रार्थना करते-करते मैं ऊँघ गयी थी। मोमबत्ती भी बुझाना भूल गयी, बस नींद की थपकियों से खाट पर लुढ़क गयी थी। अगले दिन सुबह उठी तो शान्त और स्वस्थ थी। मच्छरों के काटे के निशान अवश्य थे, पर पीड़ा न थी। मोमबत्ती बुझी थी। अवशेष को देख कर लगता था मेरे सोते ही बुझ गयी थी। पता नहीं किस की कृपा थी: देवदूतों की या पेड्रू सन्तान की।

एक जैसे वर्तमान में थी ही नहीं। उस के लिए चारों ओर से निद्रागत समाज का अस्तित्व चित्र लेख से अधिक कुछ था ही नहीं। वह अतीत की गुहा में बैठ कर बोल रही थी—एक अनाथ का जीवन समाप्त हो चुका था। अब मैं एक दासी का जीवन जी रही थी। पर जैसे उस पूर्व जीवन में प्रभु की करुणा के सदृश जोज़े था उसी तरह इस दासी जीवन में पेड्रू सन्तान था। दोनों ही मेरे लिए अपनी स्थिति से अधिक महत्त्व रखते थे।

धीरे-धीरे मैं उस परिवार की अभ्यस्त हो चली। उन में से हर किसी स्वभाव जान गयी। उन की आदतें जान गयी, उन के शौक़ पता चल थे। और मैं सुबह से जो काम में लगती तो उस का अन्त रात में ही होता। पेड्रो कहा करता—वेवेज़िट, यह रात न होती तो हम ग़रीबों का क्या होता? इस रात में हम स्वयं को स्वतन्त्र अनुभव करते हैं। हमारी साँसें स्वतन्त्र होती हैं। हमारे सपने स्वतन्त्र होते हैं। और फिर जब तक अगला दिन नहीं आता, नया सूरज नहीं उगता, हम स्वयं में स्थापित रहते हैं। दिन के होते ही हम दूसरों की इच्छाओं में स्थापित हो जाते हैं और फिर उन की पूर्ति कुछ ऐसे करते हैं जैसे प्रभुओं के मुख से व्यक्त होने वाली इच्छाएँ हमारी अपनी हों।

मैं तब पूरी तरह उन बातों की गम्भीरता नहीं समझती थी। फिर भी उन पर विचार करती। जितना विचार करती उतना ही पेड्रो से प्रभावित होती और अपने भीतर भी एक नयी शक्ति, नयी चेतना अनुभव करती।

इतवार को चर्च जाना ज़रूरी सा था। मैं कभी-कभी अनिच्छा से भर उठती। पर तब पेड्रो मुझ में इच्छा जगाता। कहता—नहीं वेवेज़िट ज़रूर जाओ। यहाँ तुम नौकर हो, छोटी हो। किन्तु चर्च तो हमारे प्र का घर है। वह राजाओं के राजा का मन्दिर है। वहाँ सब बराबर है और जितनी देर तुम वहाँ रहती हो, निष्पाप मेरी की गोद में ही बैठ हो। तुम ने देखा नहीं, हमारा चर्च पवित्र क्रॉस की तरह है, वही जिस का प्रभु यीशु के पवित्र रक्त ने अभिषेक किया था। इस पवित्र को तुम सिर्फ़ इमारत न मानो। वहाँ जो ऊँचा आल्टर और कोयर है हमारे मुक्तिदाता के शीश की तरह है। और जो ट्रान्सेप्ट हैं—आ के आयल (बरामदे) वे उस की भुजाओं की तरह हैं। और हैं—बीच का प्रमुख स्थान, वह उस प्रभु का देह। वहाँ नित्य 'हो होता है। वहाँ रोटी और शराब के रूप में यीशु के रक्त और

बलि दी जाती है। वेदी के पत्थर पर रखे लकड़ी के क्रॉस पर वही प्रीस्ट जीज़स क्राइस्ट उस महान् बलिदान को दोहराता है। हमारा प्रभु अपने पवित्र देह और रक्त का उत्सर्ग करता है। माउण्ट कैलवरी पर हमारे यीशु का जो क्रूर बलिदान हुआ था वह ईश्वरी न्याय था। मानवता को पाप-मुक्त करने के लिए किया गया था। और 'होली मास' के रूप में वह फिर-फिर होता है। हमारे अपने पापों की मुक्ति के लिए होता है।

मैं पेड्रु को सुनती। उस अनपढ़ में जैसे कोई पादरी की आत्मा बोलने लगती। मैं पूछती—तुम यह सब कैसे जानते हो? उस का उत्तर होता—सब ज्ञान उसी का दिया हुआ है। शुरू में मैं ने अपने गाँव के पादरी के मुँह से ये बातें सुनी थी। तब ये पुस्तक की लिखी बातें थीं। पर बाद में मैं ने इन की सचाई अपने भीतर अनुभव की।

पेड्रु के चेहरे पर वही शान्ति और दिव्य भाव था जो मैं सन्तों के चित्रों में उन के मुख पर देखती आयी हूँ। पर वह चर्च कम ही जाता था। जब मैं ने उस से इस का कारण पूछा तो उस ने बताया—मेरी बात मत करो बेबेजिट। मेरा चर्च यहीं बन गया है। मैं अपनी सेवाओं से उस प्रभु के दुलारे की पूजा करता हूँ। मुझे लगता है उस की पवित्र छाया हर वक्त मेरे साथ रहती है। तुम नहीं समझोगी। कोशिश भी मत करो। मेरा प्रभु मेरे ऊपर असीम कृपा रखता है।

पेड्रु की आँखें भर आयी थीं। आँसू ढुलक पड़े थे। उन में अवसाद नहीं, पीड़ा नहीं, पवित्रता की करुणा थी। पेड्रु उस समय एक स्टूल पर बैठा था। मैं बिना कुछ सोचे, उस के पाँवों से ज़मीन पर बैठ गयी और उस की टाँगों पर अपनी बाँहें और गाल टेक कर पूछ बैठी थी—मुझे प्रभु का चरित सुनाओ, फ़ादर।

'फ़ादर' अचानक ही मेरे मुख से निकल पड़ा था। जैसे वह पवित्र ऑर्डर द्वारा स्वीकृत प्रीस्ट हो।

पर वह हँस पड़ा था। प्यार से सिर पर हाथ फेर कर बोला था—

बावली हुई हो वेवेजिट ! मैं कहाँ फ़ादर हो सकता हूँ । जाओ चर्च जाओ । वहाँ तुम्हें फ़ादर वह सब कुछ बतायेंगे जो तुम्हें जानना चाहिए ।

बस मैं चर्च चली आया करती । आल्दा की उतरनें पहन कर आया करती । जो कपड़े उस के फट चलते वे मेरे हो जाते । अपने 'शिशु-नीड़' से मैं निकली थी तो बढ़िया मोटरकार में बैठ कर और अब डायरेक्टर फ़र्जेण्डा के बंगले से कहीं भी जाती तो पैदल, नंगे पाँव । कई बार मैं ने रोज़ की बड़ी कार को अपनी बग़ल से सर्र से निकलते देखा । कई बार मैं अपने फटे कपड़ों में उस से चर्च में मिली । कई बार उस ने मुझे ख़रीदे हुए सामान को सिर पर लाद कर जाते देख अपनी गाड़ी रोक कर घर पहुँचाने का आग्रह किया । पर मैं कभी उस की प्रार्थना नहीं मान पायी । मुझे यही लगता कि गाड़ी उस ने पुराने परिचय और प्रेम-वश नहीं, किसी अहंकार के वशीभूत हो कर रोकी है । और अब वह अपनी सम्पन्नता से मुझे प्रभावित कर के अपने दर्प का विस्तार करना चाहती है । उन मुलाक़ातों में वह मुझ से कभी नहीं पूछती कि मैं कैसी हूँ । स्वयं ही कहती—तुम ने अच्छे माँ-बाप नहीं चुने । मेरी तरह समझदारी से काम नहीं लिया ।

अजीब सी बात ! माँ-बाप के चुनाव में समझदारी ! वह तो हर हालत में एक संयोग है । पर मैं ने उसे कभी समझाने की कोशिश नहीं की । पर जब-जब मैं ने उस से पूछा—तू कैसी है रोज ? तो वह स्फीत मुसकान के साथ कहती—तुझे कैसी लगती हूँ ?

और तब मैं ने उस की ओर कुछ ऐसे देखा जैसे अभी तक देखा ही नहीं था । स्वस्थ देह में रूप निखर रहा था और यौवन तेजी से अपनी माया फैला रहा था । जैसे वह अब युवती होने ही वाली थी ।

अब मैं सोचती हूँ तो मुझे ताज्जुब होता है । मैं ने फ़र्जेण्डा डायरेक्टर के घर में कई बरस बिता दिये थे । मैं अब तेरहवाँ पार कर चुकी थी । रोज हमउम्र थी । मगर सोलह की लगती थी । अंग-अंग दर्प

से पृथुल था।

फिर जोजे तुम्हें नहीं मिला ?—मैं अचानक रथ से पूछ बैठा था।

रथ हँसी। बोली—कैसी अजीब बात है! मैं अभी कहने जा रही थी कि एक दिन रोज ने मुझ से पूछा था कि जोजे कैसा है ? पर मैं उस की बात करूँ कि तुम पूछ बैठे। जोजे कभी-कभी मिलता था। वह भी एकदम से बड़ा होता जा रहा था। ज्यादा दिनों बाद मिलता तो मुझे उसे देख कर संकोच होता। उस के शारीरिक परिवर्तन से मैं अपरिचिति की ओर जा रही थी। या यह भी हो सकता है कि उस परिवर्तन में उस भविष्य की झलक पा रही थी जो शायद कभी मेरे मन की सुप्त वासना रही हो। पर जानते हो रोज के पूछने पर मैं ने क्या कहा था ?

जैसे उसे मेरे पूछने की प्रतीक्षा थी। मैं ने कहा—बताओ ?

बोली—यही कि तुम देखो तो मुग्ध हो जाओ! पर मेरी इस बात से वह बिगड़ उठी थी। उस ने तेज स्वर में कहा था—क्या बकती हो ? मेरे लिए उस की हस्ती क्या है। तुम सोचती हो मैं ने उसे कभी देखा नहीं ? डील-डौल अच्छा है। बहुत हुआ तो फौज में नौकरी पा जायेगा।

मैं ने अपमानित हो कर भी कहा था—पर कभी तो तुम उस के बारे में कुछ और सोचती थी ?

उस ने उसी तरह क्रुद्ध स्वर में उत्तर दिया—कब क्या सोचा मैं ने री ? तब की बात करती है जब मैं दुनिया के बारे में कुछ नहीं जानती थी।

पर जाने क्यों मैं ने उस से झूठ बोल दिया था—पर वह तो तुम्हारी प्रशंसा करता है। कहता है इतना वैभव पा कर भी बदली नहीं। पहले की ही तरह कोमल और उदार है।

वह गुस्सा जैसे नकाब था जो ढीली गाँठों से मुख पर बँधी हो। मेरी बात ने उस के उस भाव को झटका सा दिया तो वह नकाब खिसक पड़ी और उस ने मुझ से आत्मीयता के साथ पूछा—सच कहती हो ?

झूठ क्यों कहूँगी—मेरा उत्तर था।

पर मेरे सामने तो वह गूँगा बना रहता है—रोज़ ने कहा था ।

मैं ने समाधान किया—यह तो उस की आदत है ।

तो आजकल वह है कहाँ ? मैं ने उसे बहुत दिनों से नहीं देखा ।—उस ने फिर पूछा ।

मैं ने बताया—हिन्दुस्तान चला गया है । एक अँगरेज़ पादरी ले गया है । शायद अब वह बिशप बन कर ही लौटे ।

यह कहने के साथ मैं खुद उदास हो गयी थी । जोज़ेका उस पादरी के साथ जाना मुझे अच्छा नहीं लगा था । मैं ने देखा रोज़ का चेहरा भी फीका पड़ चला था । क्षण भर चुप रह कर वह बोली थी—यह हिन्दुस्तान कितनी दूर है । पुर्तगाल से भी दूर है क्या ?

मुझे उस के अज्ञान पर हँसी आयी । गोआ भारत का अंग : पुर्तगाल सात समन्दर पार विलायत में ! पर वह कुछ ऐसे पूछ रही है जैसे हिन्दुस्तान विलायत हो । शायद वजह यही थी कि वह अपने धनिक पिता के साथ लिस्बन तो अनेक बार हो आयी थी, मगर भारत कभी गयी ही नहीं थी । उस ने स्कूल में जो थोड़ा-बहुत पढ़ा था:वह भी गोआ और भारत के नहीं पुर्तगाल के बारे में ही । मेरी अपनी जानकारी कुछ न थी पर पेड्र, एनसाइक्लोपीडिया की तरह था । वह कुछ साल पहले सेल
भी रह चुका था । 'कुछ' तो वह बहुत बाद में बना जब समुद्री यात्र
उस के स्वास्थ्य के अनुकूल नहीं रही थीं । वही बातों-बातों में बत
करता—गोआ पहले गोन लोगों का था । हमारे अपने देश के राजा
पर राज करते थे । फिर कैसे एक पुर्तगाली आया अलबुकर्क और उ
इस भूमि पर अपना अधिकार कर लिया ।

मैं उस से पूछती—तुम्हें सब बातें मालूम हैं ?

वह हँसता और कहता—कहाँ, कुछ भी तो नहीं जानता । प
लिख तक नहीं सकता ।

मैं फिर कहती—फिर तुम इतना सब कहाँ से सीख गये ।

क्या सीखा बेबेजिट ?—वह सरलता से कहता। जब जहाज पर काम करता था तो दुनिया देखता था। दुनिया भर के लोगों से मिलता था। दुनिया भर की बातें सुनता था। बम्बई का बन्दरगाह देखा। करांची का बन्दरगाह देखा। कलकत्ते-मद्रास का बन्दरगाह देखा। यूरोप के बन्दरगाह देखे। जापान तक गया। क्या नहीं देखा बेबेजिट ? इतना देखने पर तो पत्थर का भी दिमाग खुल जाये, मैं तो इनसान था।

ख़ैर पेड्रु को क्या तारीफ़ करूँ। वह तो कुछ अजीब ही आदमी था। मैं बात कर रही थी रोज़ की। उसे मैं ने हिन्दुस्तान के बारे में बताया। मेरा समाधान सुन कर बोली थी—तो ज्यादा दूर नहीं ?

फिर उस ने एक प्रस्ताव दिया था—चल तुझे घुमा लाऊँ ?

कहाँ ले चलोगी ?—मैं ने पूछा।

जहाँ तू कह।—वह बोली—मीरामार, डोनापावला। चाहे तो कलंगुत चलें ?

कलंगुत मैं ने तब तक देखा ही न था। मन मचल उठा। कहा—चल, पर देर तो नहीं लगेगी ?

वह बोली—कार से क्या देर लगेगी !

मैं ने फिर भी भय से कहा—पर कहीं देर लग गयी तो ?

उस ने लापरवाही से कहा—तो क्या होगा। तुझे कोई घर से निकाल तो नहीं देगा। बेदाम की बाँदी मिली है, सब काम लेते हैं। जब काम ही करना है तो कहीं भी कर सकती है। काम की कमी थोड़े ही है। मेरे ही यहाँ आ जाना। खाना, कपड़ा और जो वेतन माँगे वह दूँगी।

मुझे लगा जैसे रोज़ जान-बूझ कर मुझे अपमानित कर रही है। इसी से मैं ने कहा—तब तो यही अच्छा है कि मैं तुम्हारे साथ न जाऊँ। कहीं तुम्हें बाद में अफ़सोस न हो कि नौकरानी को लिये घूमा करती थी।

इस पर रोज़ ने मेरा हाथ अपने हाथों में ले कर प्यार से कहा था—बुरा मान गयी। क्या करूँ मैं बात बनाना जानती नहीं। गलती-

बात कह देती हूँ। तू मेरी सब से प्यारी सहेली है। जो कुछ
हेली ही बनी रहेगी।

उस दिन मैं ने पहली बार हठी और दम्भी रोज़ में एक स्नेही सहेली
दर्शन किये थे। बस मैं सब कुछ भूल उस की गाड़ी में बैठ गयी थी।

फ़ैरी तक पहुँचते दो मिनट भी न लगे। फ़ैरी तैयार थी। ड्राइवर ने
री पर गाड़ी को चढ़ाया। तीन कारें पहले से उस पर सवार थीं। मैं
उस सब कुछ में अपूर्व 'थ्रिल' अनुभव कर रही थी। यह मेरा पहला
मौक़ा था जब इस तरह मुक्त भ्रमण के लिए कार में निकली थी। फ़ैरी
पर तब तक न बैठी थी। दूर-दूर से देख लेती और कल्पना करती कि
फ़ैरी पर सवार हो कर पार जाने में कितना मज़ा आता होगा। फ़ैरी पर
कार और कार में खुद, इस की तो मैं ने कल्पना तक न की थी।

कोई दस मिनट में ही फ़ैरी से माण्डवी पार कर के हम पंजिम से
वेतिम पहुँच गये थे। वेतिम से हमारी कार कलंगुत की तरफ़ भाग
चली। तब वह सड़क कच्ची और ऊँची-नीची थी। पर कार के स्प्रिंग
बढ़िया थे। दूसरे हम बातों में कुछ ऐसे खोये थे कि उन गड्ढों का तो दूर,
रास्ते तक का पता नहीं चला। रोज़ बार-बार जोज़े की ही चर्चा करती।
उस ने पूछा—वह तुझ से मिलने नहीं आता था?

मैं ने बताया—आता था। पर मेरे 'घर वालों' को उस का आन
पसन्द न था।

यह कह कर रुथ मेरी ओर देख कर बोली—जानते हो 'घर वा
शब्द का प्रयोग करते मुझे कितनी तकलीफ़ हुई थी? हालांकि उन्होंने
गोद लिया था और मैं एक तरह से उन की सन्तान ही थी और
अधिकार से उन्हें 'घर वालों' की संज्ञा दे सकती थी; मगर असलि
वह न थी। खुद को मैं नौकर भी न कह सकी। इसी से जब उस श
सहारा लिया तो मुझे लगा जैसे मैं ने झूठ बोला और वह झूठ
जानती थी। बस शर्म से मेरी आँखें झुक गयी थीं और मैं चुप हो

पता नही रोज़ मेरे मन की इस दशा को कितना समझ सकी थी। फिर भी उस ने कहा—क्या सोचने लगी? जोज़े का आना उन्हें क्यों पसन्द नही था?

मैं ने किसी तरह सम्हल कर बताया था—जोज़े उन्हें अवान लगने लगा था। एक दिन जब वह मिलने आया तो सिन्योर परेरा कही बाहर जा रहे थे। पोर्च में जोज़े मिला। मैं भी वहां थी। बातें कर रहे थे हम दोनों। बस वे बिगड़ उठे। वहीं से श्रीमती परेरा को चिल्ला कर बुलाया और कहने लगे—यह गुण्डा कौन है। रुथ इस से किस की आज्ञा से मिलती है। लगता है यह बराबर आता है। तुम ने भी कभी नहीं रोका?

इस से पहले कि कोई कुछ भी कहे जोज़े बोल उठा था—माफ करें। मैं अभी जाता हूँ। हम दोनो साथ-साथ पले हैं। उसी अधिकार से चला आता हूँ।

बस वह बिना कुछ कहे चला गया था। सिन्योर परेरा भी गाड़ी में बैठे और मुझे क्रुद्ध दृष्टि से देखते हुए चले गये थे। श्रीमती परेरा ने कुछ नही कहा। आल्दा-इमैल्दा भी वहाँ चली आयी थी। वे भी धीरे-धीरे आपस में ही बातें करती रही। एमैरिक ड्राइंग रूम की खिड़की से सब कुछ देख-सुन रहा था। वह सिन्योर परेरा के जाते ही खिड़की के चौखटे से अदृश्य हो गया था। मैं अपमानित और पीड़ित रसोई-घर में लौट आयी थी। मुझे उदास देख कर पेड्रु ने कहा था—बेबेजिट, रोती हो? साहब चिल्ला रहे थे। क्या तुम पर डाँट पड़ी? उन की बात का बुरा न मानो। वे अपने आपे में कम ही रहते हैं। दिन भर पानी की जगह शराब पीते हैं। बिअर तो पानी ही है उन के लिए। इस के अलावा कौन सी शराब नही पीते। बिअर तो, तुम देखती हो, हर कोई पीता है इस घर में। बच्चे भी। लंच-डिनर से पहले बिअर हो। सब पैसे का फ़ितूर है। ऐसे ही तो पैसा खाया जाता है।

रोज़ बोली—यह पेड्रु कौन है? पादरी है क्या? शराब से तो कोई

नहीं। कौन नहीं पीता यहाँ—गोरे भी, काले भी—सभी तो
।
ने बताया—पेड्रू सन्तान कुक है सिन्योर परेरा का। पर बड़ा
आदमी है। दुनिया भर की बातें जानता है।
रोज़ अवज्ञा के साथ हँसी—ओह कुक है! बड़ी-बड़ी बातें करता है।
मैं ने रोज़ की उस बात का कोई जवाब नहीं दिया था। उस ने
र पूछा था—फिर जोज़े नहीं आया?
नहीं।—मैं ने कहा।
फिर कभी और कहीं मिला भी नहीं?—उस ने पूछा था।
मिला था, एक बार।—मैं ने बताया—कहता था अब मैं कुछ ऐसा
बनूंगा कि सिन्योर परेरा भी मेरा सम्मान करें।
रोज़ ने फिर पूछा था—पर वह किसी पादरी के साथ चला गया
यह तुझे किस से पता चला?
मैं ने बताया—एक बार मैं इन्फ़ैण्टिल गयी थी। वहीं मदर से पता
चला।
रोज़ ने फिर पूछा—वह पादरी क्यों बनना चाहता है?
मैं क्या उत्तर देती। पर उस के इस प्रश्न से स्पष्ट था कि रोज़ नहीं
चाहती थी कि जोज़े पादरी बने। इतना कह कर वह चुप हो गयी थी।
पर यह चुप्पी क्षणिक ही थी। वह फिर बोली—वह पादरी हो कर
लौटेगा तो हम लोगों से जाने कैसी-कैसी बातें करेगा। ख़ैर यह सब
सोचने से फ़ायदा भी क्या। शायद जिसे जो होना होता है उस की
भावनाएँ भी कुछ वैसी ही बन जाती हैं। मैं तो हमेशा से ही बहुत ध
बहुत आराम और बहुत-बहुत शराब की बोतलों की कल्पना किया कर
थी। वह सब यहाँ है। मेरी कल्पना से भी अधिक है। शराब के
सेलर हैं। डैडी के पास गोआ की सब से क़ीमती और पुरानी श
मिलेगी। हाँ, कोई भी शराब।
अ

मैं ने अचरज से कहा—तो तुम शराब पीती हो ?

क्यों; यह भी कोई बड़ी बात है।—वह बोली—तुम्हारे मालिक के बच्चे नहीं पीते ?

उस ने मालिक शब्द का प्रयोग अनायास ही कर दिया था। मैं ने भी बुरा नहीं माना और यह भी मान लिया कि जब आल्दा-इमैल्दा बिअर पीती हैं तो रोज क्यों न पिये। और मैं ने पूछा—कैसी लगती है शराब ? स्वाद बहुत अच्छा होता है न ?

वह कुछ ऐसे हँस पड़ी थी जैसे कोई फव्वारा फूट पड़ा हो। उस हँसी में उस के अंग उस की कसी फ्रॉक में बहुत ही मनोहर ढंग से हिल रहे थे। मुझे रोज पहली बार इतनी सुन्दर लगी कि मैं क्षीण सी ईर्ष्या से भर उठी थी। हँसी के थमने पर वह बोली थी—चल, आज तू शाम का खाना भी मेरे साथ ही खा। तब तू जान लेगी कि शराब कैसी लगती है।

नहीं, नहीं।—मैं ने बड़े भद्दे ढंग से अपना विरोध प्रकट किया।

वह बोली—ओह देर से डरती है। खैर शराब तो यहाँ कलंगुत के बीच पर भी मिलती है।

मैं ने फिर कहा—मैं नहीं पीने की।

वह बोली—अच्छा मत पीना। तू लैमन पीना, मैं ब्रैण्डी ले लूँगी।

और तभी कलंगुत आ गया था। गाड़ी 'बीच' के पास पहुँच कर रुक गयी थी।

रुप की कथा जारी थी—कलंगुत : सुन्दर 'बीच', मोटा स्वच्छ बालू। मुट्ठी मे भर कर बन्द करो तो मुट्ठी खाली ही रह जाये। बालू की वह बहुलता मेरे मन में गुदगुदी पैदा कर रही थी। मन कर रहा था उस बालू में खूब लोटूँ, अपने सिर मे भरूँ, मुट्ठियों से उछाल-उछाल कर आसमान में एक 'बीच' बना दूँ। सामने मुक्त सागर प्रसार था। ज्वार की

हीं । कौन नहीं पीता यहाँ—गोरे भी, काले भी—सभी तो
। पर बड़ा
ने बताया—पेड्रू सन्तान कुक है सिन्योर परेरा का ।
दमी है । दुनिया भर की बातें जानता है ।
रोज़ अवज्ञा के साथ हँसी—ओह कुक है ! बड़ी-बड़ी बातें करता है ।
मैं ने रोज़ की उस बात का कोई जवाब नहीं दिया था । उस ने
पूछा था—फिर जोज़े नहीं आया ?

नहीं ।—मैं ने कहा ।

फिर कभी और कहीं मिला भी नहीं ?—उस ने पूछा था ।

मिला था, एक बार ।—मैं ने बताया—कहता था अब मैं कुछ ऐसा
बनूंगा कि सिन्योर परेरा भी मेरा सम्मान करें ।

रोज़ ने फिर पूछा था—पर वह किसी पादरी के साथ चला गया
यह तुझे किस से पता चला ?

मैं ने बताया—एक बार मैं इन्फ़ैण्टिल गयी थी । वहीं मदर से पता
चला ।

रोज़ ने फिर पूछा—वह पादरी क्यों बनना चाहता है ?

मैं क्या उत्तर देती । पर उस के इस प्रश्न से स्पष्ट था कि रोज़ नहीं
चाहती थी कि जोज़े पादरी बने । इतना कह कर वह चुप हो गयी थी ।
पर यह चुप्पी क्षणिक ही थी । वह फिर बोली—वह पादरी हो कर
लौटेगा तो हम लोगों से जाने कैसी-कैसी बातें करेगा । ख़ैर यह सब
सोचने से फ़ायदा भी क्या । शायद जिसे जो होना होता है उस की
भावनाएँ भी कुछ वैसी ही बन जाती हैं । मैं तो हमेशा से ही बहुत धन
बहुत आराम और बहुत-बहुत शराब की बोतलों की कल्पना किया करत
थी । वह सब यहाँ है । मेरी कल्पना से भी अधिक है । शराब के
सेलर हैं । डैडी के पास गोआ की सब से क़ीमती और पुरानी श
मिलेगा । हाँ, कोई भी शराब ।

अस

मैं ने अचरज से कहा—तो तुम शराब पीती हो ?

क्यों; यह भी कोई बड़ी बात है।—वह बोली—तुम्हारे मालिक के बच्चे नहीं पीते ?

उस ने मालिक शब्द का प्रयोग अनायास ही कर दिया था। मैं ने भी बुरा नहीं माना और यह भी मान लिया कि जब आल्दा-इमेल्दा बियर पीती हैं तो रोज क्यों न पिये। और मैं ने पूछा—कैसी लगती है शराब ? स्वाद बहुत अच्छा होता है न ?

वह कुछ ऐसे हँस पड़ी थी जैसे कोई फव्वारा फूट पड़ा हो। उस हँसी में उस के अंग उस की कसी फ्रॉक में बहुत ही मनोहर ढंग से हिल रहे थे। मुझे रोज पहली बार इतनी सुन्दर लगी कि मैं क्षीण सी ईर्ष्या से भर उठी थी। हँसी के थमने पर वह बोली थी—चल, आज तू शाम का खाना भी मेरे साथ ही खा। तब तू जान लेगी कि शराब कैसी लगती है।

नहीं, नहीं।—मैं ने बड़े भद्दे ढंग से अपना विरोध प्रकट किया।

वह बोली—ओह देर से डरती है। खैर शराब तो यहाँ कलंगुत के बीच पर भी मिलती है।

मैं ने फिर कहा—मैं नहीं पीने की।

वह बोली—अच्छा मत पीना। तू लैमन पीना, मैं ब्रैण्डी ले लूँगी।

और तभी कलंगुत आ गया था। गाड़ी 'बीच' के पास पहुँच कर रुक गयी थी।

. रुथ की कथा जारी थी—कलंगुत : सुन्दर 'बीच', मोटा स्वच्छ बालू। मुट्ठी में भर कर बन्द करो तो मुट्ठी खाली हो रह जाये। बालू की वह बहुलता मेरे मन में गुदगुदी पैदा कर रही थी। मन कर रहा था उस बालू में खूब लोटूँ, अपने सिर में भरूँ, मुट्ठियों से उछाल-उछाल कर आसमान में एक 'बीच' बना दूँ। सामने मुक्त सागर प्रसार था। ज्वार की

ने चार ह्विस्की का ऑर्डर दिया। मैं ने जाने किस अनवधानता
क आॅर्डर को सुना ही नहीं था। मैं वार के दृश्य को ही देख रही
चारों ओर छोटी-छोटी मेज़ें और फ़ोल्डिंग चेयर्स पड़ी थीं। कहीं-
मेज़ों पर नीली-पीली छतरियाँ भी तनी थीं। खुला वार था, उस
पर वाँसों के सहारे रंग-विरंगी झण्डियाँ लगी थीं। जैसे कोई मेले
स्टॉल हो। एक मेज़ पर वड़ा सा ग्रामोफ़ोन रखा था। उस पर डान्स
ज़िक के रिकॉर्ड वज रहे थे। उस म्यूज़िक को सुन-सुन कर वहुत से
ग यों ही हिल रहे थे: किसी का पाँव, किसी की कमर, किसी के
न्धे, किसी का समूचा देह ही। फ़िमाल्यु यत्नपूर्वक मेरे पास ही वैठा
था। वोला—कितना प्यारा म्यूज़िक है। आओ हम लोग डान्स करें।

उस ने कहा मुझ से था, पर उठ खड़ी हुई जेमा कुटीनो। और वे
नाचने लगे। कुरसियों के वीच के उस थोड़े से रिक्त स्थल में दो-चार
चक्कर लगा कर वे अपनी-अपनी सीटों पर आ वैठे थे। वैठते ही
फ़िमाल्यु ने मुझ से कहा—तुम नहीं नाचोगी?

मैं ने कहा था—मुझे नहीं आता।

तो सीख लो।—उस ने प्रस्ताव किया और साथ ही मेरा हाथ पकड़
कर हलके से खींचता हुआ उठ खड़ा हुआ। पर मैं नहीं उठी। एक कड़ुवा
सा 'नहीं' भर कह दिया। फ़िमाल्यु को वुरा लगा। यह उस के चेहरे के
वदलते ढंग से ज़ाहिर था। उस का यह भाव किसी से छिपा न था।
जेमा भी मुसकरायी और रोज़ भी। फलतः यह हुआ कि वह और भी
क्रुद्ध हुआ। पर कह कुछ न पा रहा था। फिर झेंप मिटाने के लिए रो[illegible]
से वोला—तो तुम आओ न?

रोज़ ने मज़ाक़ किया—रिजैक्ट हुए के साथ क्या नाचूँ!

फ़िमाल्यु चिढ़ कर वोला—किस लड़की की मजाल है जो ऐसा [illegible]
की हिम्मत करे।

जेमा ने चुटकी ली—क्यों? एक तो यहीं मौजूद है।

इस पर वह खिसियानी हँसी के साथ बोला—ओह तुम रुथ की बात करती हो। मैं नहीं चाहता था कि सच बात कहूँ। रुथ को अपने नंगे पैरों की शर्म है।

स्पष्ट ही उस ने अपने अपमान का बदला लेने के लिए मुझे अपमानित करना चाहा था। इस में वह सफल भी हुआ। कहीं मैं ने गहरी चोट महसूस की। अपने पाँवों को अनजाने ही सिकोड़ा और बैठे-बैठे फ्रॉक को घुटनों के नीचे कुछ ऐसे खींचा जैसे वहीं मेरे पाँव ढक लेगी।

जेमा अपनी गरदन के झटकों में बालों को हिलकोरती सी बैठी रही, जब कि रोज़ कुछ गम्भीर हो गयी थी। मगर मुख से कोई कुछ नहीं बोला। तभी ड्रिंक्स आ गये : चार।

मैं ड्रिंक नहीं लेना चाहती थी। पर डर था कि अनिच्छा दिखाते ही फ़िमाल्यु कुछ और अपमानजनक बक बैठेगा। बस मैं ने भी अपना गिलास ले लिया और उस नन्ही उम्र में ह्विस्की का पहला घूँट भरा। सोडा मिले होने के बावजूद गला छिल सा गया। स्वादहीन अजीब सा असर! और मैं जल्दी से गिलास खत्म कर गयी। दूसरे सब धीरे-धीरे सिप ले कर पी रहे थे। रोज़ जानती थी कि मैं इस मामले में गँवार हूँ। उस ने आँख से इशारा भी किया, पर मैं नहीं समझी। उलटे और घबड़ा उठी। मेरा गिलास खत्म हो गया था और आखिरी घूँट के साथ फन्दा भी लग गया था।

फ़िमाल्यु ने कहा तो कुछ नहीं, पर व्यंग्य भरी नज़रों से मुझे अस्थिर करता रहा। फिर उस ने एक शरारत और की। मेरे लिए एक और पैग का ऑर्डर कर दिया और बोला—यह भी कोई बात कि तुम गिलास ख़ाली कर के बैठ जाओ और हम लोग पीते रहें?

रोज़ ने मना भी किया—नहीं फ़िमाल्यु, उस से ज़िद मत करो। वह ड्रिंक्स की आदी नहीं। ज्यादा ठीक नहीं रहेगा।

फ़िमाल्यु खलनायक की तरह हँसा था। पर जाने मुझे क्या सूझा,

ज ने चार ह्विस्की का ऑर्डर दिया। मैं ने जाने किस अनवधानता
के ऑर्डर को सुना ही नहीं था। मैं वार के दृश्य को ही देख रही
चारों ओर छोटी-छोटी मेज़ें और फ़ोल्डिंग चेयर्स पड़ी थीं। कहीं-
मेज़ों पर नीली-पीली छतरियाँ भी तनी थीं। खुला वार था, उस
ऊपर वांसों के सहारे रंग-विरंगी झण्डियाँ लगी थीं। जैसे कोई मेले
स्टॉल हो। एक मेज़ पर वड़ा सा ग्रामोफ़ोन रखा था। उस पर डान्स
यूज़िक के रिकॉर्ड वज रहे थे। उस म्यूज़िक को सुन-सुन कर वहुत से
लोग यों ही हिल रहे थे : किसी का पाँव, किसी की कमर, किसी के
कन्धे, किसी का समूचा देह ही। फ़िमाल्यु यत्नपूर्वक मेरे पास ही वैठा
था। वोला—कितना प्यारा म्यूज़िक है। आओ हम लोग डान्स करें।

उस ने कहा मुझ से था, पर उठ खड़ी हुई जेमा कुटीनो। और वे
नाचने लगे। कुरसियों के वीच के उस थोड़े से रिक्त स्थल में दो-चार
चक्कर लगा कर वे अपनी-अपनी सीटों पर आ वैठे थे। वैठते ही
फ़िमाल्यु ने मुझ से कहा—तुम नहीं नाचोगी?

मैं ने कहा था—मुझे नहीं आता।

तो सीख लो।—उस ने प्रस्ताव किया और साथ ही मेरा हाथ पकड़
कर हलके से खींचता हुआ उठ खड़ा हुआ। पर मैं नहीं उठी। एक कड़ुवा
सा 'नहीं' भर कह दिया। फ़िमाल्यु को वुरा लगा। यह उस के चेहरे के
वदलते ढंग से ज़ाहिर था। उस का यह भाव किसी से छिपा न था
जेमा भी मुसकरायी और रोज़ भी। फलतः यह हुआ कि वह और
क्रुद्ध हुआ। पर कह कुछ न पा रहा था। फिर झेंप मिटाने के लिए र
से वोला—तो तुम आओ न?

रोज़ ने मज़ाक़ किया—रिजेक्ट हुए के साथ क्या नाचूं!

फ़िमाल्यु चिढ़ कर वोला—किस लड़की की मजाल है जो ऐसा
की हिम्मत करे।

जेमा ने चुटकी ली—क्यों? एक तो यहीं मौजूद है।

इस पर वह खिसियानी हँसी के साथ बोला—ओह तुम रुथ की बात करती हो। मैं नहीं चाहता था कि सच बात कहूँ। रुथ को अपने नंगे पैरों की शर्म है।

स्पष्ट ही उस ने अपने अपमान का बदला लेने के लिए मुझे अपमानित करना चाहा था। इस में वह सफल भी हुआ। कहीं मैं ने गहरी चोट महसूस की। अपने पाँवों को अनजाने ही सिकोड़ा और बैठे-बैठे फ़्रॉक को घुटनों के नीचे कुछ ऐसे खींचा जैसे वही मेरे पाँव ढक लेगी।

जेमा अपनी गरदन के झटकों में बालों को हिलकोरती सी बैठी रही, जब कि रोज़ कुछ गम्भीर हो गयी थी। मगर मुख से कोई कुछ नहीं बोला। तभी ड्रिंक्स आ गये : चार।

मैं ड्रिंक नहीं लेना चाहती थी। पर डर था कि अनिच्छा दिखाते ही फ़िमाल्यु कुछ और अपमानजनक बक बैठेगा। बस मैं ने भी अपना गिलास ले लिया और उस नन्ही उम्र में ह्विस्की का पहला घूँट भरा। सोडा मिले होने के बावजूद गला छिल सा गया। स्वादहीन प्रजाब सा असर! और मैं जल्दी से गिलास ख़त्म कर गयी। दूसरे सब धीरे-धीरे सिप ले कर पी रहे थे। रोज़ जानती थी कि मैं इस मामले में गँवार हूँ। उस ने आँख से इशारा भी किया, पर मैं नहीं समझी। उलटे और घबड़ा उठी। मेरा गिलास ख़त्म हो गया था और आख़िरी घूँट के साथ फन्दा भी लग गया था।

फ़िमाल्यु ने कहा तो कुछ नहीं, पर व्यंग्य भरी नज़रों से मुझे अस्थिर करता रहा। फिर उस ने एक शरारत और की। मेरे लिए एक और पैग का ऑर्डर कर दिया और बोला—यह भी कोई बात कि तुम गिलास ख़ाली कर के बैठ जाओ और हम लोग पीते रहें?

रोज़ ने मना भी किया—नहीं फ़िमाल्यु, उस से ज़िद मत करो। यह ड्रिंक्स की आदी नहीं। ज़्यादा ठीक नहीं रहेगा।

फ़िमाल्यु खलनायक की तरह हँसा था। पर जाने मुझे क्या सूझा,

कह दिया—आने भी दो रोज़। एक और सही।

एक डबल पैग मेरे गिलास में डाल दिया गया था। मैं इस बार शेष सब की तरह सिप ले-ले कर पीने लगी थी। पर मेरे अंग-प्रत्यंग आग से भर उठे थे। आँखों में अजीब जलन महसूस होने लगी थी। सिर भारी हो चला था और अपने चारों ओर के वातावरण में एक ऐसी अस्पष्टता अनुभव करने लगी थी जो प्रकाश से अन्धकार की ओर जाने में होती है।

साँझ डूब चली होगी। स्टॉल वालों के गैस के हण्डे जल उठे होंगे। कुछ लोग आये होंगे, कुछ लोग गये होंगे। पर मैं दूसरे पैग की समाप्ति पर काफ़ी अनियन्त्रित और चंचल हो उठी थी। मुझे ठीक से याद नहीं, फिर भी आभास सा है जैसे मैं ने रिकार्डु फ़िमाल्यु का कन्धा पकड़ लिया था और अजीब उत्तेजना के साथ कहा था—तुम शैतान हो रिकार्डु, भारी शैतान!

फ़िमाल्यु के जवाब का मुझे इतना अंश आज भी याद है—गैब्रियल फ़रिश्ता तो मैं कभी बनने की सोचूंगा भी नहीं, ज़िन्दगी का मज़ा फिर कौन लूटेगा!

और मुझे याद है कि इस पर जेमा बहुत ज़ोर से हँसी थी और फ़िमाल्युके पीछे जा कर सिर पर से झुकती हुई बोली थी—तुम सचमुच ही शैतान हो! आओ डान्स करें।

वे फिर डान्स करने लगे थे। उन के डान्स के स्टैप्स को देखते-देखते मुझे लगा जैसे मेरे अपने पांव धरती पर से उठ रहे हैं और उन के नीचे की ज़मीन भी मुझे सन्तुलित करने के लिए हिल-डुल उठती है। मैं अपनी कुरसी पर से ही गिर पड़ी होती अगर रोज़ ने सम्हाल न लिया होता। मुझे कन्धों पर से पकड़ कर वह झिड़कती हुई कह रही थी—तू इतनी बेवक़ूफ़ है, मैं ने कभी सोचा तक न था। जब तू ने कभी बिअर तक नहीं पी तो किस ने कहा था कि ह्विस्की के पैग पर पैग पी।

मैं ने कुछ नहीं कहा था। सिर्फ़ यही अनुभव कर रही थी कि मेरे

तन और मन की अस्थिरता बढ चली हैं। फिर जैसे सम्हलने के लिए मेज पर सिर टेक दिया था। उधर रोज फ़िमाल्यु और कुटीनो से कह रही थी—रिकार्डु चलो, जेमा चलो अब चलें।

बस हम धीरे-धीरे कार की तरफ चले। फ़िमाल्यु मुझे सहारा दे रहा था। मैं बार-बार उस का हाथ झटक देती, पर वह फिर सट कर अपनी बाँह मेरी कमर में दे कर बढने लगता और कभी-कभी उसी बाँह को कमर से काफी ऊपर ले जा कर आगे की ओर बढ़ी हुई अँगुलियों को मेरे कोमल मांस में गड़ा देता। मैं खीज सी उठती। पर वह सब मेरे नियन्त्रण से बाहर था। इसी तरह हम कार तक आ गये। कार अँधेरे में खड़ी थी। कार के बाहर खड़े-खड़े रोज ने कहा—तुम्हारी अपनी गाडी है रिकार्डु ?

बोला—है तो। उसे ड्राइवर पीछे-पीछे ले आयेगा। हम लोग सब साथ चलेंगे।

रोज ने कह दिया था—मुझे कोई एतराज नही।

बस फिर हम चारों उस बड़ी गाडी में साथ ही बैठे। पहले मुझे अन्दर किया गया। मेरे साथ ही फ़िमाल्यु अन्दर चला आया था। फिर उस के बाद रोज बैठी कि जेमा, मुझे ध्यान नही।

बस अँधियारे रास्तों से गाड़ी भाग चली थी। अधपहाड़ी सा रास्ता, गहरे मोड़ : तब या तो मैं फ़िमाल्यु पर लुढ़क जाती थी या वह मुझ पर लुढ़क आता था—घुमाव का जो भी ऐंगिल हो। मैं ने यह भी अनुभव किया कि फ़िमाल्यु का हाथ अब अधिक स्वतन्त्रता से मेरे शरीर से परिचय बढा रहा था। पर मेरी इच्छा-शक्ति इतनी समाप्त हो चली थी कि उस ग्लानि भरे स्पर्श को मैं सहती रही। कभी फ़्रॉक के ऊपर, कभी फ़्रॉक के अन्दर।

पर कोई आधे रास्ते पहुँच कर जाने रोज को क्या सूझा कि फ़िमाल्यु से बोली—रिकार्डु तुम इधर आओ। रथ के पास मैं बैठूँगी।

फ़िमाल्यु ने कहा था—ठीक तो है । मैं मज़े में हूँ ।

इस पर भी मैं ने रोज़ को दृढ़ता के साथ कहते हुए सुना था—नहीं मैं ठीक ही कह रही हूँ ।

स्पष्ट ही फ़िमाल्यु अनिच्छा से उठा था । पर उठते-उठते भी उस ने मेरी जंघा पर अपने नाख़ून गड़ा दिये थे । रोज़ मेरे पास आ गयी थी । मेरी बग़ल में बैठ कर उस ने फिर कहा था—तू बेहद गँवार है रुथ ।

मैं ने कुछ नहीं कहा था । उस ने भी फिर कुछ नहीं कहा । कार अँधियारे रास्तों से बढ़ती गयी । बीच-बीच में किसी रास्ते के गाँव की कोई रोशनी पड़ जाती और फिर वही अँधियारा । और मैं आँखें फाड़-फाड़ कर सब कुछ देखने की चेष्टा करती रही । जैसे कहीं वह मेरे अवचेतन का प्रयत्न था स्वयं पर अधिकार पाने का । पर फिर भी मेरी पलकें झपक जातीं । सिर एक ओर को लुढ़क जाता : कभी दरवाज़े की ओर तो कभी रोज़ की ओर । और मैं फिर प्रयत्न करती । तन कर बैठती । कुछ देर गरदन सीधी रखती, आँखें खोलती, पलकें ऊपर को तानती । दृष्टि अन्धकार में खो जाती या सामने सड़क पर कार की बत्ती की रोशनी में भुनगे सी तड़फने लगती । मुझे आज भी वह सब याद है फ़िल्म में देखी हुई घटना सी याद है । रोज़ ने बाद में जब वह स बताया तो मुझे कुछ नयापन नहीं लगा था । मुझे तो वह सब याद था । मैं ने कहा भी था—मैं वह सब जान रही थी, मगर कहीं अपने से परास्त थी ।

रोज़ ने यही कहा था—नहीं, तू बेवक़ूफ़ है । निरी बेवक़ूफ़ ।

वेतिम से रिकार्डु फ़िमाल्यु और जेमा कुटीनो हम से अल थे । वे उस पार वहीं कहीं रहते थे । दोनों ने मुझ से हाथ फ़िमाल्यु ने मेरा हाथ कुछ ज़्यादा ही मसोसा । वे अपनी गा

गये। हमारी गाड़ी क्यू में लग गयी फ़ैरी पर चढ़ने के लिए।

एक फैरी आयी, दूसरी आयी, मगर किसी पर भी गाड़ी न चढ़ी। मैं रोज़ से बार-बार पूछती—फ़ैरी में कितनी देर है?

वह कह देती—फैरी में तो देर नहीं। गाड़ियाँ नहीं जा रही हैं। नदी में ज्वार ज्यादा है। तख्ते नहीं लग पा रहे हैं जिन पर से हो कर गाड़ी फ़ैरी में पहुँचे। लहर आती है और तख्तों को बेतरतीब कर देती है या पानी में डुबो लेती है। कुछ देर लगेगी। ज्वार उतरना शुरू हो गया है।

कितनी देर?—मुझे फ़ज़ेन्दा के डायरेक्टर सिन्योर परेरा का पीला, पतला, लम्बा और क्रूर चेहरा याद आने लगा था और उस की स्मृति से उस नशे में भी मैं काँप उठती थी। मैं ने पूछा—क्या बजा होगा?

रोज़ ने बताया—आठ बजा है। दस तक हम लोग पहुँच ही जायेंगे। भूख लगी है? यहीं से कुछ मँगा लेते हैं। केला, बिस्कुट, केक सभी कुछ मिल जायेगा।

भूख तो अब जैसे लगती ही नहीं थी। वैसे ही रात के नौ-दस के बाद खाने को मिलता था। वही आदत पड़ गयी थी। आदत देर से खाने की नहीं, आदत भूख सहने की! और उस समय तो भय का भूत सवार था मुझ पर। मैं ने कहा—रोज़, मुझे जल्दी पहुँचा दो। दस तो बहुत देर से बजेंगे। मालिक नाराज़ होंगे।

इस बार मैं भी सिन्योर परेरा को डैडी कहने का नाटक नहीं रच सकी थी। भय ने सत्य को प्रकाशित कर दिया था। रोज़ ने मुझे समझाया—बिना गाड़ी कैसे जायेंगे। बावली हुई है क्या? बैठी भी रह। कह देना, देर हो गयी।

रोज़ मेरे भय को नहीं समझ पा रही थी। मैं ने फिर अनुनय की—नहीं प्यारी रोज़, तू कुछ भी कर मुझे पहुँचा ही दे।

मैं ने रोज़ के दोनों हाथ अपने हाथों में थाम लिये थे और मेरी दृष्टि उस से याचना कर रही थी। चिढ़ती हुई बोली—तू भी अजीब

है ! जाने इतनी डरपोक कब से हो गयी । अच्छा तो चल
इसी पार छोड़ देते हैं । फ़ैरी पार कर के टैक्सी ले लेंगे । ड्राइवर
ं गाड़ी ले आयेगा ।

मैं ने कृतज्ञ भाव से कहा था—मेरी प्यारी रोज़ !

उस ने मुसकरा कर मेरी कृतज्ञता स्वीकार कर ली थी । हम फ़ैरी
ने का इन्तज़ार करने लगे । फ़ैरी आयी कोई साढ़े आठ के बाद ।
ड्राइवर टिकट ले आया था । फ़ैरी पर से पहले उधर से आने वाले
ात्री उतरे । कारें थीं नहीं, इसलिए जल्दी ही सब लोग उतर गये । फि
हम लोग भी चढ़े । तख्ते लहरों में डोल रहे थे । फ़ैरी भी अस्थिर थी

रोज ने मुझे सम्हाल रखा था । तख्ते पर अगला पाँव रखते हुए बोली
थी—सम्हल कर आना । मेरा सहारा लिये रखना ।

मैं ने कुछ नहीं कहा । बढ़ चली । एक तेज़ लहर आयी । तख्ता
डोला । बीच का हिस्सा पानी में जा डूबा । मेरे पाँव टखने तक पानी में
चले गये । पिण्डलियाँ काँपीं । पर रोज़ के कन्धे के सहारे सम्हल गयी
और फिर हम फ़ैरी पर चढ़ गये ।

ज्यादा पैसेंजर न थे । जल्दी ही सब चढ़ गये । कुछ मछली भरे टोकरे
भी रखे गये । उन से तेज़ गन्ध आ रही थी । मैं और रोज़ एंजिन रूम
के पास पड़ी बेंचों पर जा कर बैठ गये । फ़ैरी चलने का इन्तज़ार करते
रहे । मैं उस विलम्ब पर हर दूसरे क्षण अस्थिर हो उठती । अब नशे से
अधिक भय का भूत सिर पर सवार था । पर रोज़ ने जाने क्यों फिर से
नशे की ही बात की—तुझे दूसरा पेग हरगिज़ नहीं लेना था । रिकार्डु को
मैं खूब जानती हूँ । लड़कियों के पीछे भागता है । उस की राय में को
भी लड़की पहली नज़र में ही उस के समीप आने की कोशिश क
लगती है । बेवक़ूफ़ है । तीन साल से उसी क्लास में पड़ा है । पोर्चुग
ऐसे बोलता है जैसे कोंकणी बोल रहा हो । तुम उस की बातों मे
गयीं । वह तो तुझे पूरी बोतल पिला देता और फिर शरारत क

अ

पर तुझे तो कुछ सोचना चाहिए था ?

मैं चुपचाप सुनती रही। मुझे रोज की बात बुरी नहीं लगी। आज मैं ने पहली बार उस में अपने प्रति सच्चा सद्भाव अनुभव किया था। मेरा मन उस के प्रति कृतज्ञता और प्यार से भरता आ रहा था।

आखिर फ़ैरी के इंजन ने सीटी दी। फिर तख्ते हटे। खम्भों में फन्दों से उलझे रस्से खुले और उन को गेंडुई फ़ैरी में जमा हो गयी। मैं मन की बेचैनी में रेलिंग के सहारे खड़ी हो कर उस सारी क्रिया को देखने लगी थी। एक जोर की आवाज़ के साथ फ़ैरी चल दी। रोज ने कहा—अभी रिवर्स गियर में है; जब सीधे गियर में आयेगी तो आवाज़ कम होगी।

कुछ देर बाद गियर बदला। फ़ैरी का रुख बदला और हम पंजिम की रोशनियाँ देखने लगे।

फ़ैरी से उतर कर जब सड़क पर आये तो रोज ने कहा—नौ बज गये। तुझे तो सचमुच ही देर हो गयी। डैडी मुझ पर भी बिगड़ेंगे, उन्हें बिना बताये जो आयी हूँ। चुपचाप खाने की मेज पर बैठे होंगे या बार-बार पोर्च में आ कर देखते होंगे। किसी भी मोटर की आवाज़ से चौंक उठते होंगे। हो सकता है तमाम नौकरों को मेरी खोज में दौड़ा रखा हो।

उस का यह कहना था कि उस के एक नौकर ने सलाम कर के कहा—आप ने बड़ी देर कर दी। साहब बेहद परेशान हैं। जल्दी चलिए। अपनी दूसरी गाड़ी पास ही है। अच्छा हुआ आप मिल गयीं।

रोज ने बताया—चलो; अपनी गाड़ी अभी उस पार ही है। उसे आने में वक्त लगेगा।

फिर मुझ से बोली—चल, पहले तुझे छोड़ आऊँ। कहाँ जाना है तुझे ?

मैं ने कह दिया था—कैम्पाल।

कोई ज्यादा दूर नहीं। यही तो है। दो मिनट में पहुँच जायेगी।—उस ने मुझे चिन्तित देख कर आश्वस्त किया।

पर मुझे इन दो मिनट की चिन्ता न थी। चिन्ता थी उन घण्टों की

जैसे दूर गये और फिर मुझ पर सामूहिक आक्रमण किया। अनेक जगह दंशन : गाल, माथा, हाथ, पाँव। सारे में जलन होने लगी। मैं भीतर की जलन से परास्त रोती रही।

थोड़ी ही देर उस हालत में रही होऊँगी कि हलकी पदचाप के साथ रोशनी आती नज़र आयी। पाँवों की आहट मेरे पास आ कर रुक गयी थी और वह रोशनी आलोकचक्र सा बन कर मेरे सिर के चारों ओर जमा हो गयी थी। मैं ने गरदन को थोड़ा सा उठा कर देखा : पेड्रु सन्तान—बायें हाथ से मेरी पीठ को सहलाते हुए, दायें से मोमबत्ती थामे हुए। आँखों में गहरी करुणा, होंठ कुछ कहने की अभिलाषा से भरे : हिलते और स्थिर से होते।

फिर पेड्रु ने मोमबत्ती यथास्थान रख दी। प्रकाश की सघनता फैल गयी और मेरे पास अपनी कोमलता भर छोड़ गयी। मच्छर भी तिरोहित हुए। पेड्रु मेरी खाट पर ही बैठ गया। उस ने मुझे उठाया और अपनी गोद में समेटते हुए पीड़ित स्वर में बोला—तुझे मालिक ने मारा ?

उत्तर में सिर्फ़ कुछ हिचकियाँ उठीं। पेड्रु फिर बोला—कहाँ रह गयी थी तू बेबेज़िट ?

मैं चुप ही रही। उस ने फिर कहा—कौन लड़का है वह ?

वह सिन्योर परेरा के आधार पर ही पूछ रहा था। मैं ने इस बार हिचकियों में अटकते-अटकते कहा—लड़का नहीं था, मेरी सहेली थी रोज़मारी।

ओह !—उस ने विश्वास भरे स्वर में कहा; फिर मेरी पीठ सहलाते हुए बोला—चुप हो जाओ। मालिक ने तुम्हारे भले के ही लिए डांटा।

'डांटा' शब्द पर वह कुछ झिझका था। जैसे वह अपने में झूठ था। डांट से अधिक भी कुछ हुआ था : मार। पर उस ने मार का जिक्र ही नहीं किया। बोला—ज्यादा देर बाहर नहीं रहते बेबेज़िट। यहाँ तो आठ के बाद ही सन्नाटा हो जाता है। अफ्रीकी सिपाही रात में सड़कों

पर मनमानी करते हैं।

मैं ने उसे वस्तुस्थिति नहीं बतायी। रोज़ की गाड़ी न होती तो शायद मुसीबत हो होती। कहीं उस ने मुझे अकेले घर भेज दिया होता तो पता नहीं उस कर्फ्यू जैसी स्थिति में घर पहुँच भी पाती या नहीं। इस पक्ष पर मैं ने विचार किया ही नहीं था। अब जो पेड्रू ने बताया तो अफ़्रीकी सिपाही की कल्पना से सहम उठी। पेड्रू को मैं ने फिर कहते सुना—और देखो बेनेडिक्ट, अब फिर शराब मत पीना। शराब ऑल्टर पर बलि के लिए है। यह प्रभु योशु का रक्त है। तुम फिर कभी न पीना।

मैं उत्तर में पेड्रू से कस कर लिपट गयी थी।

रुथ कुछ देर स्तब्ध भाव से बैठी रही। फिर बोली—मुझे पेड्रू से लिपट कर वही सुखानुभूति हो रही थी जो किसी भी बच्चे को अपने पिता के अंक में सिमट कर हो सकती है। पता नहीं कितनी देर उस स्थिति में रही। फिर पेड्रू ने मुझे धीरे से अपने से अलग किया और "अभी आया बेनेडिक्ट" कह कर चला गया। वह फिर जल्दी ही लौट आया। साथ में एक ट्रे में कुछ खाने को था। उस ने ट्रे एहतियात के साथ खाट पर ही रख दी थी। गोश्त का शोरबा, चावल, सब्ज़ी और डबल रोटी के टुकड़े। ट्रे को खाट पर रख कर उस ने कहा था—लो खाओ, मैं पानी लाता हूँ।

भूख का समय तो भरपूर था, पर उस सारे काण्ड में भूख मर गयी थी। ह्विस्की के नशे ने भी एक अजीब माया कर रखी थी। मगर पेड्रू ने जिस ढंग से खाने को कहा, उस के बाद मैं उस की आज्ञा के विपरीत कुछ नहीं कर सकती थी। मैं ने शोरबा पिया, जल्दी से ब्रेड और सब्ज़ी खायी। पेड्रू पानी का गिलास लिये खड़ा था और कह रहा था—इतनी जल्दी-जल्दी नहीं बेनेडिक्ट। भोजन और प्रार्थना दोनों में कभी जल्दी नहीं करनी चाहिए।

डबल रोटी गले में फँसने लगी थी, मैं ने पानी का गिलास ले कर एक ही साँस में खत्म कर दिया। मैं गिलास नीचे रखने को हुई कि उस ने हाथ बढ़ा कर बीच में ही थाम लिया और बोला—थोड़ा चावल लाऊँ वेवेज़िट ? दिन का है इसलिए नहीं लाया था।

मैं ने सिर हिला कर मना कर दिया। फिर ट्रे उठाते ही खुद उठने का उपक्रम किया। पर पेड्रु आज मुझे स्वयं अपनी जूठन भी उठाने देने को तैयार न था। उस ने ट्रे ले ली और मैं डगमगाते क़दमों से वॉशबेसिन तक गयी, हाथ धोये और दीवाल के सहारे स्वयं को स्थिर करती हुई लौट आयी।

भोजन ने मन को एक स्थिरता सी दी। और मैं निढाल शरीर से लेट गयी। पेड्रु फिर आया और बोला—वेवेज़िट, कहो तो मोमबत्ती अभी बुझा दूँ। कहीं तुम भूल न जाओ।

मैं ने कहा—नहीं, आज जलने ही दो। अँधेरे में डर लगता है।

पेड्रु ने कन्धे पर रखा नैपकिन ठीक से सम्हाला, अपनी बरसों पुरानी जैकेट को नीचे को खींचा और प्रभु यीशु का नाम लेता हुआ चला गया। किवाड़ उस ने हलके से भिड़का दिये थे।

पता नहीं कब मुझे नींद आ गयी थी। आँख खुली तो पता नहीं कितनी देर हो चुकी थी। आँख अपनेआप नहीं खुली थी। किसी अजनबी स्पर्श को मैं ने अपने देह पर अनुभव किया था। पहले तो लगा कोई चीज़ मेरी बाँहों पर रेंग रही है। फिर वही सरसराहट गले और छाती की ओर बढ़ी। साथ ही मुझे लगा मेरी छाती पर कुछ बोझ सा आ पड़ा है।

पहले सब सपना सा लगा। पर जब वह स्पर्श अधिक वास्तविक हो चला तो आँखें खुल गयीं। टूटी नींद और ह्विस्की के नशे में मैं ने जो देखा उस पर विश्वास नहीं हुआ। स्लीपिंग सूट में सिन्योर परेरा मेरे ऊपर झुके हुए थे। उन का खुरदुरा सा हाथ मेरे अंगों को कंटकित कर रहा था। मेरी आँख खुल जाने पर भी उन्होंने कोई संकोच नहीं दिखाया

और मैं भी उस असामान्य स्थिति से उबरने की कोई चेष्टा नहीं कर सकी थी। आँखों में अचरज और अप्रत्यय था। उसे शायद उन्होंने समझा। निर्लज्ज हाथ रुका। मेरे पास हो बैठ गये। फिर मेरे माथे पर हाथ फेरा। गालों को प्यार से थपथपाया। बालों में अँगुलियाँ ले गये। फिर ठोड़ी के नीचे गले को सहलाते हुए बोले—तुम्हें चोट तो नहीं लगी रुथ ?

एक बार को मैं नहीं समझ पायी किस चोट की बात वे कर रहे थे। उन का थप्पड़ तत्काल मुझे याद ही नहीं आ रहा था। मेरे चुप रहने पर वे खुद ही बोले—जाने क्यों मुझे इतना गुस्सा आ गया आज। तुम मुझे बहुत अच्छी लगती हो। तुम्हें बेहद प्यार करता हूँ। शायद वह प्यार का ही गुस्सा था। तुम्हें बहुत देर तक न लौटता देख मैं अधीर हो उठा था। बुरे-बुरे खयाल आने लगे थे। तुम्हें देख कर जाने क्या हुआ कि—मुझे बेहद अफसोस है रुथ डार्लिंग।

यह कहते हुए वे मेरे ऊपर झुके थे और उन्होंने मेरे उस गाल का स्पर्श अपने मोटे होंठों से किया जिस पर अभी भी उन की अँगुलियों के निशान थे। गाल का होंठों से स्पर्श कर वे मेरी आँख, नाक, ग्रीवा को चूमने लगे। एक अजीब उतावली थी उन में। मैं उन के मुँह का गीला स्पर्श अपने माथे से ले कर फटी हुई फ्रॉक से झाँकते हुए अंगों तक अनुभव करने लगी। मेरे अंगों में एक तनाव आया, फिर मैं सिकुड़ने भी लगी। दोनों मुट्ठियाँ ठोड़ी के नीचे आ जुड़ी थीं और घुटने छाती तक मुड़ आये थे। जैसे मैं अनजाने ही अपने शरीर को अतिक्रमण से बचाने के लिए आत्मरक्षा का प्रयत्न कर रही थी।

सिन्योर परेरा जाने क्या सोच कर रुक गये थे। फिर बोले थे—मैं ने तुम्हें शराब के बहाने बेकार ही मारा। शराब बुरी चीज थोड़े ही है। मैं खुद पीता हूँ। मेरे बच्चे पीते हैं। देखो मैं यह बहुत ही बढ़िया शराब लाया हूँ। तुम्हें अपने हाथ से पिलाऊँगा। जो ग़लती मैं ने की है उस की माफ़ी इस तरह माँगूँगा तुम से।

सिन्योर परेरा के स्वर में एक अजीव खुरदरापन था। वे जव स्वर को कोमल करने का प्रयास करते तो उस में जैसे और कड़ी सलवटें पड़ जातीं जो कानों में गड़ने लगतीं। उस मनःस्थिति में जव मैं अपने नियन्त्रण में न थी, उन के स्वर की वह खरखराहट और भी असह्य लग रही थी। मगर मैं उस से उवरने की कोई कोशिश कर ही नहीं पा रही थी।

सिन्योर परेरा ने एक गिलास में शराव उँडेली और मेरे होंठों से लगाया। जाने कैसी एक अजीव विवशता सी थी कि गिलास की शराव गले के नीचे उतरती चली गयी। कोई मीठी शराव थी। मैं नहीं जानती कौन सी।

पीते ही मेरे गाल जलने लगे थे और एक घनी जड़ता मुझे भर चली थी। जैसे नींद में घुली हुई मूर्च्छा मेरे ऊपर उतर आयी हो। सहसा कोठरी में अँधेरा हो गया। क्षण भर को लगा नींद का अँधेरा है। पर चेष्टा पूर्वक आँख खोल कर देखा तो सचमुच का ही अँधेरा था। जैसे मोमवत्ती वुझायी गयी थी। पर मेरे सोचने की क्षमता मिटती जा रही थी और मैं सारा ज्ञान खोती हुई नींद और सपने के सघन सागर में नीचे को वैठती जा रही थी। कभी-कभी अनुभव करती कि कहीं मेरे अंग टूट रहे हैं, दुख रहे हैं, कोई वाहरी स्पर्श उन पर वोझ वना है। पर सव मेरे संज्ञान से वाहर की चीज था। एक क्षण मैं ने तेज दर्द का भी अनुभव किया, फिर मैं निद्रित हो गयी कि मूर्च्छित, मुझे पता नहीं।

कहते-कहते रुथ का स्वर कराहट से भर उठा था। जैसे उस की पवित्रता पर निरंकुशता ने जो गहरे और भद्दे दाग़ वना दिये थे उन से स्वयं को आज भी अपमानित अनुभव करती है। तभी अनायास ही उस की आँखें भर आयी थीं। जव उस ने पुनः वोलने का प्रयास किया तो गला रुँधा हुआ था। मैं ने ममता से भर कर उस की हथेली को अपने हाथ से

सहलाना शुरू कर दिया था। हथेली तप रही थी। मैं उस की तपती हथेली को अपने हाथों में लिये बैठा रहा और उस की कथा सुनता रहा।

उस ने कहा था—अगले दिन सुबह मैं बहुत देर से उठी। बन्द खिडकी के शीशों से रोशनी भीतर आ रही थी। मैं ने उठना चाहा, पर अंग जकडे रहे। रात की घटना दु:स्वप्न सी टूटी हुई कड़ियों में याद आने लगी। अंग-अंग की दुखन, मन की तडपन—दोनों ही असह्य। प्रयत्न कर के खड़ी हुई। चलने का प्रयत्न किया। पर अजीब सा दर्द हुआ चलने में। उसी पीडा में मैं ने फटी फ्रॉक और एक ओर पड़े अण्डरवियर को देखा। फ्रॉक और खाट के कैनवास पर काले-काले धब्बे से थे। मेरे गले से एक चीख निकल गयी थी। चीखते ही मैं घबरायी भी : कोई देखेगा तो क्या होगा ? तभी पेड्रु रसोई-घर से दौड़ा-दौड़ा आया।

मैं उस पवित्र पुरुष के सामने नहीं पड़ना चाहती थी। मगर उस कमरे में अब इतना अन्धकार नहीं रह गया था जिस की मैं शरण ले सकती। मैं भीतर-भीतर दीन से दीनतर होती चली जा रही थी। तभी किवाड़ खुले और पेड्रु सामने था। मेरे पास आते-आते वह धक् से बीच में ही रुका रह गया। उस की दृष्टि मुझ पर पड़ी। मेरी मलिनता को देखा, खाट की मलिनता को देखा, मेरे कपड़ों की मलिनता को देखा। देख कर होंठ काँपे, फिर आँसुओं के सोते उमड़ पडे। उस ने आगे बढ़ कर मुझे छाती से लगा लिया था। उस के गरम-गरम आँसू मेरे सिर पर पड़ रहे थे। कानों तक को उन्होंने छुआ। मैं खुद अपने आँसुओं से उस की छाती को भिगोते हुए कहती गयी—मैं कुछ नहीं जानती। मैं कुछ नहीं जानती पेड्रु। सिन्योर ने....

मैं वाक्य पूरा नहीं कर पायी, पेड्रु ने मुझे अपनी छाती से कुछ ऐसे कस कर भींचा जैसे भीतर के तूफान को उसी के दबाव से परास्त कर लेना चाहता हो। जैसे जो विष मेरे भीतर प्रवेश कर गया था वह उस दबाव से निचुड़ कर बाहर बह जायेगा और मैं लिली सी पवित्र निष्पाप हो उठूँगी।

उस हिस्से में मेरे और पेड्रु के सिवा कोई नहीं रहता था। तीसरा प्राणी जो उधर प्रायः आता था, लम्बे कानों वाला झबरैला कुत्ता था जिसे सब 'लुई' कहते थे। कुछ देर उसी स्थिति में रहने के बाद पेड्रु ने कहा—बेवेज़िट, आँसू पोंछ लो। नहान घर में चलो और इस मैल को धो डालो। दूसरी फ़ाॅक मैं ले आता हूँ।

पेड्रु चला गया तो मैं उस एकान्त भाग में भी चोर की तरह सहमी हुई, कहीं अपनेआप से ही छिपती सी नहान घर में पहुँची और नल के नीचे जा बैठी। पास ही एक ईंट का टुकड़ा पड़ा था। मुझे लग रहा था कि मेरे अंगों पर जो पाप की परत चढ़ गयी है वह सिर्फ़ पानी से नहीं धुलेगी। बस मैं उस ईंट के टुकड़े से अपनी त्वचा को रगड़ने लगी, यहाँ तक कि होंठ को भी।

पानी ने तन को ही नहीं मन को भी एक शीतलता दी। मन उस पानी से अलग होने को कर ही नहीं रहा था।

बहुत देर होती देख पेड्रु ने बाहर से दरवाजा खटखटाया और बोला—बस करो बेवेज़िट, ज्यादा भीगोगी तो बीमार पड़ जाओगी।

उस के दो बार मना करने पर मैं ने नल बन्द किया, फिर थोड़ा सा किवाड़ खोल उस के बढ़े हुए हाथों से तौलिया और फ़ाॅक ली। साफ़ तौलिया! पता नहीं कहाँ से ले आया था। मैं ने रगड़-रगड़ कर बदन को पोंछा, बालों को सोखा और फ़ाॅक पहन, सिर को तौलिये से लपेटे बाहर आयी।

अपनी कोठरी की तरफ़ बढ़ी। पर चौखट से आगे बढ़ने की मुझे हिम्मत नहीं हुई। उस की हवा में जैसे दुर्गन्ध समायी हुई थी और खाट के कैनवास पर पड़े धब्बे किसी खूंखार पशु की अंगारे सी आँखें थीं, जो अब निर्जीव था मगर फिर भी आतंकित करने की क्षमता रखता था। पर कहीं और जाने का ठौर भी तो न था। सब लोग चाय पी चुके होंगे। देर का कारण क्या बताऊँगी? सब कोई तो सारी बात जान चुके होंगे और मैं जब

आल्दा-इर्मेल्दा के पास पहुँचूँगी तो वे अपनी-अपनी फ्रॉक का घेर इसलिए समेट लेंगी कि कहीं मुझ से छू न जायें। एमरिक जो मेरे समीप आने का इच्छुक लगता था वह भी अब दूर भागेगा। और सिन्योरा परेरा, जिन्होंने आज तक कभी ऊँचे स्वर में बात तक नहीं की, वह मेरा नाम ले-ले कर धिक्कारेंगी। और वह बूढ़ा पग्गु परेरा जब मेरे सामने पड़ेगा तब मैं उस तमाम तिरस्कार को सहते हुए कैसे संयम करूँगी?

मैं इसी दुविधा में पड़ी थी कि पीछे से पेड्रू की आवाज सुनाई दी—वेवेज्रिट, अभी सिर से तौलिया लपेटे ही खड़ी हो।

मैं ने घूम कर देखा, फर्माबरदार बैरे की तरह ट्रे में चाय और टोस्ट लिये पेड्रू खड़ा था। उस ने मुझे देखा और मेरे कन्धे पर से होती हुई उस की दृष्टि भीतर गयी और फिर जैसे मेरे मन की पीड़ा और ग्लानि को उस ने पहचाना। बोला—आओ, मेरी कोठरी में आओ। वहीं चाय पीना।

मैं उस के पीछे-पीछे चल दी। चार कदम पर ही उस की कोठरी थी। छोटी सी स्वच्छ कोठरी। सामान के नाम पर एक मामूली सा बक्स। ज़मीन पर बाँस की चटाई। पर वातावरण में कुछ ऐसी पवित्रता जो गिरजाघरों में ही होती है। लगा जैसे उस वातावरण में साँस लेने से मेरे भीतर की मलिनता भी गायब हो रही है। बगल वाली दीवाल पर नज़र गयी तो देखा: पवित्र मेरी की मूर्ति, गोद में नन्हा यीशु: प्रकाश के चक्र से घिरा यीशु का मुख। पर जैसे पवित्र मेरी का अंग-प्रत्यंग ही दिव्य प्रकाश की किरणों से बना था। मैं भक्ति से भर उठी। घुटने टेक कर बैठ गयी और होंठों ही होंठों बुदबुदाने लगी—माँ मेरी तू धन्य है। तुम पर करुणामय ईश्वर की छाया है। स्त्रियों में तू अलौकिक है और अलौकिक है तेरे गर्भ का वह दिव्य फल यीशु। पवित्र मेरी, ओ ईश्वर की जननी, हम पापियों के लिए प्रार्थना कर। इस समय भी और तब भी जब हम मरणमुख हों। आमीन।

प्रार्थना के शब्दों को रुथ ने कुछ ऐसी श्रद्धा के साथ दोहराया था जैसे आततायी की दी वह मलिनता अभी भी कहीं उस से लिपटी हो और उस का प्रक्षालन मात्र प्रार्थना, सतत प्रार्थना में हो। उस प्रार्थना के वाद दीर्घ निःश्वास के साथ उस ने कहा था—उस दिन मैं पेड्रु के कमरे में ही वन्द रही। मुझे मालूम था कि खाली समय में खुद मेहनत कर के पेड्रु ने मेरी कोठरी को ठीक किया है। वहाँ पड़ा सामान तरतीव से लगाया। खराव सामान को वहाँ से हटा दिया। फलतः पहले से अधिक जगह निकल आयी और जो एकमात्र खिड़की उस सामान से आधी ढँकी थी वह अव पूरी खुल गयी। खाट को भी उस ने धोया। फ़र्श को भी फ़िनाइल के पानी से साफ़ किया। फिर एक कोने में ढेरों धूप जला दी। जैसे उस कमरे में कोई प्रेतात्मा हो जिस की निष्कृति का यही विधान हो।

वह दिन भारी जुगुप्सा, आत्मग्लानि, आक्रोश, दुविधा, दीनता और अनिश्चय में वीता। फिर ज्यों-ज्यों शाम क़रीव आयी, मेरी चिन्ता वढ़ी। आने वाली रात मुझे भयावह लग रही थी। मैं चाहती थी कि दिन कभी न डूवे, रात कभी न उगे। पर समय तो फिर भी सरक रहा था। रात फिर भी क़रीव आ रही थी।

उस शाम को जव पेड्रु मेरे लिए चाय लाया तो मैं ने वड़ी दीनता के साथ उस से कहा—पेड्रु सन्तान, मैं अव यहाँ नहीं रहूँगी।

उस ने विचारवान् की तरह कहा था—पर यहाँ से जाओगी कहाँ?

यह ऐसा प्रश्न था जिस का उत्तर मैं दिन भर विचार कर के भी नहीं खोज पायी थी। फिर भी मैं ने कह दिया—मैं वापस निन्यु इन्फ़ैण्टिल चली जाऊँगी।

पेड्रु ने दीन मुसकान के साथ कहा—वहाँ अव नहीं जा सकतीं वेवेजिट। उन के कागज़ों के मुताविक़ सिन्योर परेरा तुम्हें गोद ले चुके

हैं और वे ही तुम्हारे अच्छे-बुरे के जिम्मेदार हैं।

तो मुझे और कहीं भेज दो।—मैं ने अनुनय भरे स्वर में कहा।

वह विवशता भरी मुसकान के साथ बोला—पर कहाँ? कौन सी जगह है जहाँ सिन्योर परेरा जैसे लोग नहीं हैं या नहीं पहुँच सकते?

पेड्रू ऐसा चित्र खींच रहा था जिस के अनुसार मेरा निस्तार न था। मैं स्तम्भित थी। लगता था मेरे अंग जड़ होते जा रहे हैं। सिन्योर परेरा की छत्रच्छाया के बाहर मेरा अस्तित्व हो नहीं। और जितना ही मैं ने इस दिशा मे सोचा उतनी ही दीन होती गयी। उसी दीनता से आच्छन्न स्वर में मैं ने कहा—पर मैं यहाँ नहीं रह सकती पेड्रू। मैं यहाँ रही तो मर जाऊँगी। सिन्योर मेरे प्राण ले लेंगे।

निराश मत होओ बेवेजिट, निराश मत होओ।—पेड्रू ने दुखी स्वर में दोहराया। ईश्वर पर भरोसा रखो। उसे सब की चिन्ता है: तेरी, मेरी, उस की, सब की। फिर क्यों परेशान होती हो?

मैं ने तिक्तता के साथ उत्तर दिया था—इसलिए कि कल रात उस ने मेरी चिन्ता नहीं की।

मेरे इस अभियोग का उत्तर पेड्रू के पास न था। वह चुप ही रहा।

बातों में मेरी चाय ठण्डी हो गयी। पेड्रू को चुप और चिन्तित देख कर मैं ने एक साँस में प्याला खाली कर दिया था। फिर बोली थी—मेरे बारे में किसी ने कुछ नहीं पूछा?

पेड्रू बोला—सिन्योरा ने पूछा था। मैं ने कह दिया, "तबीयत ठीक नहीं।' उन्होंने फिर कुछ नहीं पूछा।

तुम ने उन से सच-सच क्यों नहीं बता दिया पेड्रू।—मैं ने अधीर स्वर में कहा।

वह बोला—उस से लाभ क्या होता बेवेजिट?

पर सिन्योरा मुझे देखने क्यों नहीं आयीं?—मैं ने कहा—इन्फ़ैण्टिल में जब कोई बच्चा बीमार पड़ता था तो मदर सुपीरियर खुद उस को

करती थीं। उस समय मुझे इन्फ़ैण्टिल ही इस पृथ्वी ...
स्थान लग रहा था।

... इस बात के जवाब में भी पेड़्रो चुप ही रहा। मुझे इस बात की
... कि घर भर में किसी ने मेरी ग़ैरहाज़िरी की चिन्ता न की।
... मार जान कर भी नहीं की। आल्दा, इमैल्दा, एमैरिक किसी ने
... पर तभी मैं यह सोच कर सहम उठी थी कि कहीं वे सच बात
... हीं जानते ? इसी से पेड़्रो पर मैं ने अपना भय व्यक्त किया—मुझे
... ता है कि वे सब इस बात को जानते हैं।

पेड़्रो ने कहा—यह नामुमकिन है वेवेज़िट। जानती हो मैं ने सिन्योर
तुम्हारे बारे में बात की है। मैं ने उन से कहा है कि किसी ने रात में
तुम्हें बेहोश कर के तुम्हारे साथ अमानुषी कृत्य किया है। वह आदमी
कौन हो सकता है ? रुथ की तबीयत तभी से बेहद ख़राब है। मुझे लगता
है वह कई दिनों तक काम के लायक़ नहीं हो सकेगी। सिन्योरा पूछें तो
मैं क्या कहूँ ?

मैं ने उत्सुकता से पूछा—तो सिन्योर क्या बोले ?

पेड़्रो ने बताया—घड़ी भर चुप रहे। उन का चेहरा पहले से भी
कठोर पड़ गया। मुझे तो यही लगा कि वह अभिनय था। अपनी
कमज़ोरी को छिपा रहे थे। मुझ से कहा कि फ़िक्र मत करो। सिन्योरा से
भी कह देना कि रुथ बीमार है। मैं भी कह दूँगा कि उसे अभी काम के
लिए न बुलायें, कल की डाँट से सहम गयी लगती है।

यह सुन कर मुझे लगा कि सिन्योरा को इस से भी अधिक कुछ कहा
गया है। शायद यही कि मेरी बात न पूछी जाये। पूछने पर मैं और
बिगड़ सकती हूँ। मुझे कल जो सज़ा मिली ठीक है। दहशत खा गयी
है। ठीक ही हुआ। दो-एक दिन में अपनेआप ठीक हो जाऊँगी।

पर सत्य जो भी रहा हो, मैं कभी नहीं जान सकी। इसी उलझ...
में रात आ गयी। रात का खाना मुझ से खाया नहीं गया। सोने ...

अस्त...

वक्त होने पर भी मैं पेड्रु की कोठरी से न गयी। जब पेड्रु काम खत्म कर के आया तो मैं ने उस से कहा—अब मैं अकेली नहीं सोऊँगी पेड्रु। जहाँ तुम सोओगे वहीं मैं सोऊँगी।

पेड्रु ने समझाया—घबराओ मत बेवेंजिट। अब वैसा फिर नहीं होगा। कल तुम ने शराब न पी होती तो वैसा कभी न होता। फिर मैं अब हर रात सावधान रहूँगा। कुछ भी भय हो तो मुझे पुकार लेना, मैं फ़ौरन पहुँच जाऊँगा।

मैं ने फिर कहा—पर तुम मुझे अपने साथ क्यों नहीं सोने देते पेड्रु ?

उस ने दुखी स्वर में कहा था—वह ठीक नहीं है बेवेंजिट। वह सच-मुच ही ठीक नहीं है। अब तुम जाओ और अपनी खाट पर सोओ। मैं निगरानी रखूँगा। मैं यह भी कोशिश करूँगा कि तुम यहाँ से किसी अच्छी जगह चली जाओ।

पेड्रु के इस आश्वासन से मुझे बल मिला और इच्छा न होते हुए भी मैं अपनी कोठरी में चली आयी थी जहाँ पेड्रु के द्वारा की गयी स्वच्छता, धूप की गन्ध और मोमबत्ती के प्रकाश के बावजूद मुझे रक्त के धब्बे और हिंसक छायाएँ नज़र आ रही थीं।

उस के चुप होने पर मैं ने सहानुभूति के स्वर में कहा—तुम ने बड़े दुख भोगे हैं रुथ।

उस का उत्तर था—पर जितना ही मैं ने दुनिया को देखा उतना ही जाना कि दुख ज़्यादा लोगों के भाग में पड़ा है। मेरी तकदीर वाले बहुमत में हैं। यह भाग्य का दोष नहीं, ईश्वर का विधान नहीं। ये हमारी कमज़ोरियाँ हैं : कभी सामाजिक, कभी व्यक्तिगत। कभी आर्थिक विषमताएँ ज़िम्मेदार हैं तो कभी राजनीतिक पक्षपात। जब-जब ऐसी

अवस्थाएँ जन्म लेती हैं जिन में मनुष्यता का अवमूल्यन होता है तब-तब कुछ ऐसा ही, कुछ इस से भीषण होता है। दक्षिण अफ्रीका को ही ले लो। एक गोरी स्त्री के प्रति किया गया ऐसा अपराध जघन्य माना जायेगा जब कि एक काली स्त्री के प्रति किया गया वैसा ही अपराध नहीं। और मैं सोचती हूँ कि मानवता इतनी प्रौढ़ हो चुकी है कि अब हम मूलभूत सत्यों को सार्वभौमिक स्वीकृति दे दें। हम वह सब सत्यासत्य जानते हैं पर जान कर भी दुराग्रहों का आश्रय लेते हैं। दूसरे की ग़लती से हम सीखते नहीं और अपनी ग़लती को ग़लती मानते नहीं। एक हास्यास्पद सी स्थिति है। इतने सारे धर्मग्रन्थ, उन के मसीहा, उन के प्रचारक, उन के अनुयायी,—पर उपलब्धि कितनी ? कुछ भी तो नहीं।

मैं अभिभूत सा सुनता रहा। इतना कह कर उस ने फिर अपनी कथा का सूत्र पकड़ा और बोली—बस दिन बीतते गये। उन्हीं के साथ मैं उस दमे को सहने की शक्ति पैदा करती गयी। मैं फिर अपने काम में लग गयी : चाय, लंच, सपर, सब पर उसी तरह तैनात रहती। पर सिन्यो परेरा के आचरण में अब एक अजीब अन्तर था। वे अब मुझ पर बिगड़ते नहीं थे। मेरे सामने किसी और पर भी गुस्सा नहीं करते थे। मेरे लिए कुछ नये सुविधाओं की ओर भी ध्यान दिया जाने लगा। मेरे लिए कुछ नये भी बने। एक दिन मुझे एकान्त में पा कर उन्होंने कहा भी—हथ मुझे परायेपन से मत बरतो। मैं तुम्हारे सब से निकट हूँ, तुम्हारा वि अपना। अपनी कोई भी इच्छा बिला हिचक मुझ पर ज़ाहिर कर हो। मेरे सामर्थ्य में होने पर वह ज़रूर पूरी होगी।

वे कह रहे थे और मैं सुन रही थी, सिर नीचा किये। उन के चुप होते ही मैं ने जाने कैसे कह दिया था—मैं पढ़ना च

वे कृपा भाव से बोले थे—यह तो अच्छी बात है। तुम ज आल्दा-इमैल्दा को जो टीचर पढ़ाने आता है, मैं उस से पोर्चगीज़ है वह। तुम उस से भाषा और साहित्य पढ़ो।

में प्रसन्न हो उठी थी। क्षण भर को मुझे यह भी लगा कि शायद वह व्यक्ति उतना बुरा नहीं जितना मैं मान चुकी हूँ। उसी शाम को मुझे टीचर ने बुला भी भेजा। मुझ से बातचीत कर के उस ने मेरी पोर्चुगीज की योग्यता का पता लगाया जो मैं ने इन्फ़ैंटिल में प्राप्त की थी और फिर उस से आगे की पुस्तकों की एक लिस्ट तैयार कर के सिन्योर परेरा के लिए मुझे दे दी थी।

सिन्योर का कुछ ऐसा आतंक था घर में कि उन के किसी भी निश्चय पर कोई टीका नहीं की जा सकती थी। वे जो कुछ भी करते थे उस को उसी रूप में सही और उचित मान लिया जाता था। जब मेरी शिक्षा की यह व्यवस्था हुई तब भी किसी ने कुछ नहीं कहा या पूछा। बस उस नयी परिस्थिति को स्वीकार कर लिया गया।

भाषा में मेरी गति अच्छी थी। प्रगति और भी अच्छी हुई। टीचर ने बड़ा सन्तोष प्रकट किया। उस अध्ययन के साथ-साथ मेरे भीतर एक नया व्यक्तित्व जन्म लेने लगा। दिन पर दिन वह व्यक्तित्व पुष्ट होता गया। उस रात की दुर्दान्त घटना को मैं कभी नहीं भूली और जब भी वह याद आती तो मेरी समस्त आस्था को हिला जाती। फिर भी मैं अपनेआप को अनुसन्धानित करने में लगी थी। दूसरे शब्दों में, यही मेरा भावात्मक और बौद्धिक विकास था। धीरे-धीरे घर के दूसरे सदस्यों में और मुझ में बहुत ज्यादा अन्तर नहीं रह गया था। अब मुझे बंगले के मुख्य भाग में ही एक छोटा सा कमरा मिल गया था। काम भी मेरा नौकरानी वाला न रह कर परिवार के किसी भी वयस्क सदस्य जैसा हो गया था। अब मैं आल्दा-इर्मेल्दा के साथ अधिक स्नेह भाव से मिलती-जुलती थी। एमेरिक से भी ऐसे बातें करती जैसे उस की और मेरी स्थिति समान हो।

और इसी तरह मैं एक स्वस्थ, सुन्दर और सुसभ्य युवती का रूप ले चुकी थी। पेड्रू अब भी उस घर में था, उसी रूप में। वह अब भी मुझे

वेवेजिट ही कहता था। मैं भी पहले की तरह उसे पेड़ु या पेड़ु-सन्तान ही कहती थी। पर उस के प्रति मेरा आदर भाव और गहरा हो गया था। उस में मुझे सन्त भाव के दर्शन होते थे : ऐसा सन्त जो जीवन और उस की सांसारिकता के संघातों से गुज़र कर भी कहीं किसी आध्यात्मिक धरातल पर स्थिर रहता हो।

इस वीच मुझे जोजे का कोई समाचार नहीं मिला था। काफ़ी पहले एक छोटा सा पत्र आया था जिस में न अपने वारे में कुछ लिखा था उस ने न मेरे वारे में कुछ पूछा था; सिर्फ़ इतना सूचित किया था कि वह कुछ ऐसा वनने की कोशिश कर रहा है जिस से सिन्योर परेरा उस के सम्पर्क को अवहेलना की दृष्टि से न देखें। लिफ़ाफ़े पर मुहर भी इतनी अस्पष्ट थी कि पत्र कहाँ से आया यह भी पता नहीं चल सका था। स्टैम्प भारतीय था। इस से इतना ही जाना जा सकता था कि वह अभी भारत में ही है। जब कभी मुझे उस का ध्यान आता, मैं उस के पास पहुँचने को विकल सी हो उठती।

वे दिन वड़े अजीव थे। सव कुछ एक क्रम से चल रहा था। इन्फ़ैण्टिल जाती। वहाँ नये-नये वच्चे जरूर नजर आते, पर मदर सुपीरियर कुछ नयी झुर्रियों के वावजूद अपरिवर्तित ही लगतीं। कुछ वैसे ही लगते फ़ादर एन्तुइनो जिन की सफ़ेद दाढ़ी की चमक और वढ़ चली थी और जिन का अट्टहास भी उतना ही भीषण था।

और रोज ? वह अपनेआप से सन्तुष्ट थी। पूर्ण युवती थी अव और मेरे प्रति वड़ा सद्भाव रखती। जव मिलती तो जल्दी पिण्ड न छोड़ती। कई वार सिन्योर परेरा के यहाँ भी मेरे पास आयी, और हर वार उस ने मुझ से एक प्रश्न अवश्य पूछा—क्या शादी आवश्यक है ? शादी के विना पति-पत्नी सम्वन्ध में क्या कोई वुराई है ?

सेक्स से मेरा परिचय अत्यन्त पाशविक ढंग से हुआ था, अतः मैं किसी भी सेक्स सम्वन्ध को जव तक कि वह समाज की स्वीकृति न पा चुका

हो, गर्हित मानती थी। उस के अन्यथा रूप की कल्पना भी मुझे त्रस्त कर डालती थी। इसलिए मेरे उत्तर कुछ वैसे ही होते। पर रोज़ का उन से समाधान न होता। वह बार-बार यही कहती—लगता है तुम ने इस समस्या पर विचार नहीं किया। बात ऐसी नहीं जैसी तुम सोचती हो। जिस नैतिकता की तुम चर्चा करती हो वह हमारे संस्कारों पर आरोपित है। पशु से अपनेआप को विशिष्ट सिद्ध करने के लिए हम अपनी सहज वासनाओं को प्रतिबन्धित करते हैं। मुझे इस तरह के विचारों पर हँसी आती है। मैं तो सोचती हूँ कि देश भर में खूब सारे निन्यु इन्फैण्टिल खुलें। हर माँ, कुँआरी या विवाहिता, वहाँ जा कर बच्चे को जन्म दे और वे बच्चे धान के पौदों की तरह फिर से नये परिवेशों में रोपे जायँ और मेरी और तुम्हारी तरह बढ़ें।

पर तब मैं यह सोच ही नहीं सकी थी कि आखिर उस की इस जिज्ञासा के मूल में है क्या। वह चली जाती और मैं उस की बातों को भूल जाती।

रिकार्दु फ्रिमाल्यु और जेमा कुटीनो से भी दो-एक बार भेंट हुई। उन दोनों ने शादी कर ली थी। शादी कर के जेमा पहले से सुन्दर लगने लगी थी, पर फ्रिमाल्यु की लम्पटता में कोई अन्तर नहीं आया था।

और तब मैं यह सोच भी नहीं पाती थी कि यह सामान्य स्थिति सहसा बदल भी सकती है। भविष्य का सम्बन्ध संगति, स्वाभाविकता, उचित और प्रत्याशित से शायद उतना नहीं जितना कि अकल्पित, अतर्कित और अवांछित से है।

रय निर्वेद भरे स्वर में कह रही थी—कभी-कभी मैं अनुभव करती हूँ कि मनुष्य पूर्व-नियोजित के सम्पादन के लिए ही आता है। उस का रोल उस के जन्म के साथ ही निर्धारित हो जाता है। चाहे घटनाएँ, उन से सम्बन्धित व्यक्ति और स्थान न निश्चित हों, किन्तु सम्भावनाएँ किसी मूल योजना का ही अंग होती हैं। जो परमाणु व्यक्ति-विशेष के निर्माण

प्रयुक्त होते हैं वे ही उस की प्रकृति और प्रवृत्ति का स्वरूप निर्धारित
रते हैं। इसी से ऐसे व्यक्ति, जिन्हें साधु पुरुष होना चाहिए था, मनसा
ानी प्रकृति से साधु होते हुए भी प्रवृत्ति से विलासी हो जाते
हैं। मैं इस का कारण परिवेश नहीं मानती, मनोबल का अभाव नहीं
मानती। हो सकता है वे प्रवृत्ति के पथ को प्रशस्त करते हों। मैं यह भी
नहीं मानती कि बृहस्पति, शुक्र, चन्द्र या शनि की स्थितियां उन के
भविष्य का निर्धारण करती हैं—अच्छा या बुरा। मैं केवल यह मानती हूँ
कि मानवी निर्माण को आकृति देने वाले परमाणु ही उस का भाग्य बनते
हैं। तभी न मैं जिस राह पर भूले भी क़दम रखना नहीं चाहती थी
उसी राह पर योजनापूर्वक बढ़ी हूँ।

उस की साँस कुछ तेज़ हो चली थी, जैसे इस समस्त तर्क के बावजूद
वह स्वयं को आश्वस्त नहीं कर पायी थी और जो कुछ अभद्र और अप्रशस्त
हुआ था उस के दंशन से अभी भी मुक्त न थी। क्षण भर को उस ने
आँखें मूँद ली थीं, जैसे उन में उभर आये चित्रों को मिटा कर दूसरे चित्र
खोजना चाहती थी। जब उस ने फिर आँखें खोलीं तो विद्ध स्वर में क
रही थी—वह घड़ी पता नहीं शुभ थी या अशुभ जब मुझे अपने सौन्
का कुछ असाधारण रूप से अहसास हुआ। अब मैं अपने लिए ही बनी प्र
पहनती थी और उन के बनाव-चुनाव में मेरी अपनी राय ही सर्व
होती थी। अब मैं अपने मनभाते कपड़ों में सब के साथ चाय या भ
के लिए डाइनिंग टेबुल पर बैठती थी। वह लड़की जो दीन भ
सेविका रूप में आल्दा की उतरनें पहने परेरा परिवार के भोजन के
एक कोने में खड़ी रहती थी, उस के स्थान पर अब रूप और स्व
दीप्त, बुद्धि की प्रखर, कहीं शान्त और कहीं असहिष्णु एक यु
जो दूसरों के मुखस्थ भाव ही नहीं उन के हृदयस्थ भाव भी प
थी और सब के बीच अहंकारपूर्वक स्वयं को स्थापित कर रही
मैं मानती हूँ मेरे रक्त में, मेरी मांस-मज्जा में, मेरी

हड्डियों में यह सब तब भी रहा होगा जब मैं पेड्रू सन्तान की बग़ल वाली कोठरी में सामान से बचे हिस्से में एक पुरानी कैनवास की खाट पर सोती थी जिस के कैनवास पर मेरी पवित्रता की हत्या हुई थी। पर अहसास तब हुआ जब यौवन रूप को पुरस्सर कर के आया और उस रूप के साथ-साथ लोभी दृष्टियों का संसार बढ़ा।

सिन्योर परेरा हमेशा मेरे सामने की ही कुरसी पर बैठते थे और मेरी आँख बचा-बचा कर गूढ़ भाव से देखने की चेष्टा करते थे। उन की इन दृष्टियों में एक तृषा थी, एक भूख थी। मैं उन दृष्टियों से जाने क्यों उत्साहित होने लगी थी। शायद इसलिए कि उस पुरुष को बेचैन करने में मुझे प्रतिहिंसा का सुख मिलता था। मैं जान-जान कर अनवधान हो कर उन की भिखारिन दृष्टि को अपने अत्यन्त समीप तक आने का अवसर देती। ऐसा नहीं कि यह संस्कार मुझ में किसी एक दिन अनायास जाग गया हो, उस वातावरण में मैं ने जितनी भी साँसें लीं उन में से हर साँस ने उस के निर्माण में योग दिया था।

बिना रुके रुथ कह रही थी—फिर वह समय भी आया जब सिन्योर परेरा के बैठने का स्थान बदल चला था। अब वे मेरी बग़ल में होते: दायें या बायें। किसी को उस में अस्वाभाविक कुछ न लगता। अस्वाभाविक मुझे भी न लगता, पर मैं उस में प्रयोजन देखती थी: सिन्योर का प्रयोजन भी और अपना प्रयोजन भी—हिंसा भरा प्रयोजन।

और वे मुझ से बात करने की कोशिश करते। यह नहीं कि उन के कुछ कहने पर मैं उत्तर न देती, बल्कि वह कोशिश कुछ ऐसी होती थी जिस के द्वारा वे मुझ से अन्तरंग होने की कोशिश करते। फिर भी किसी अन्य ने इस में कुछ विशेषता नहीं देखी। पर मैं स्पष्ट अनुभव करती थी कि सिन्योर परेरा के अहंकार पर पड़ी एक और परत उठी और उन की नग्नता की अपारदर्शिता उतने ही प्रमाण में कम भी हुई। मेरी भी चेष्टा यही थी कि वे परतें उघरती जायें और उघरते-उघरते वह स्थिति आ

जब वे नग्नता को ही आवरण मानने लगें। तभी मेरी प्रतिहिंसा
क होगी।

मजा यह था कि उस बढ़ती हुई नग्नता को सिन्योर परेरा अपनी
जय मानते थे और मैं अपनी विजय। परिवारों की पवित्र सीमाओं के
तर जब पापाचार प्रबल होता है तो वह कुछ उसी ढंग से जिस ढंग से
म दोनों के बीच सभ्यता का उपहास भरा यह नाटक चल रहा था।
धीरे-धीरे यह स्थिति आ गयी कि सिन्योर परेरा सब के सामने मेरे सुन्दर
बालों पर हाथ फेरते हुए कहते—मेरे दो नहीं तीन बेटियां हैं और यह
बताना मेरे लिए नामुमकिन है कि कौन मुझे सब से प्यारी है।

पर मुझे देख कर ही उन का ये उद्गार प्रकट करना यह स्पष्ट कर
देता था कि तीनों में मैं ही सब से प्यारी हूं। पर किस रूप में, यह भी
मैं जानती थी। अकसर वे कहते—रुथ अब विवाह योग्य हुई। मैं देखता
हूं इसे उस में कोई दिलचस्पी नहीं। लगता है मुझे ही इस बारे में भी
फ़ैसला करना होगा।

यह कहते हुए वे अपनी लम्बी बांह से मुझे बांध लेते। देखने वाले
उन के निःस्वार्थ स्नेह की प्रशंसा करते, पर मैं मन ही मन उस चाल की
काट सोचती।

वह अजीब पाप-लीला थी। मैं सोचती हूं उस कर्म से भी भयानक
वह था जो मेरे अपने साथ हो चुका था। वह अन्धी वासना की आंधी
टूटे फल जैसा था, पर यह हवा में बसे विष जैसा जो क्षणों का ग्रास न
करता बल्कि जीवनों को लीलता है।

इधर वे पामिस्ट्री की किताबें पढ़ने लगे और फिर मेरा भवि
बताने के बहाने मेरे हाथ को अपने खुरदुरे हाथों में ले कर देर तक
रहते। मैं उस नाटक पर हँसती। स्पष्ट हँसती। उसे वे मेरी प्रसन्नता
सहयोग मानते और मैं उसे उन की मूर्खता। फिर जब एक
उन्होंने हाथ की रेखाएँ बांच कर भविष्य-वाचन किया तो परि

दूसरे लोग तो गम्भीर हो चले थे, पर मैं खिलखिला कर हँस पड़ी थी। उन्होंने कहा था—तुम किसी भद्र परिवार में विस्फोटक स्थिति पैदा कर दोगी। तुम्हारी वजह से एक प्रौढ़ अपनी पत्नी को डाइवोर्स करेगा और तुम उस के समस्त सुख की स्वामिनी बन जाओगी।

तब मैं ने हँसते-हँसते ही दुष्टतापूर्वक उन से पूछा था—और उस प्रौढ़ की पहली पत्नी के बच्चे कितने होंगे?

मेरे इस प्रश्न ने उन्हें अस्थिर कर दिया था। चेहरे का रंग बदला था। आँखें अपनेआप से छिपने जैसी कोशिश करने लगी थीं। उन्हें जैसे लग रहा था कि उन के रहस्य को इस प्रश्न के निरुत्तर रहने पर भी सब ने जान लिया: उन की अपनी पत्नी ने, उन के अपने बच्चों ने।

पर फिर मैं ने ही उस प्रश्न का विष हर भी लिया था। मैं ने कहा था—पर मुझे एक बहुत ही अच्छे पामिस्ट ने बताया है कि मेरी शादी होगी ही नहीं। कोई पुरुष मेरे जीवन में आयेगा ही नहीं।

बात मैं ने पूरी गम्भीरता से कही थी। उसे सिन्योर परेरा ने सच माना। पर जैसे यह फल उन्हें पसन्द न था। बोले—यह भी हो सकता है। कुछ हद तक यह भी हो सकता है। एक रेखा इस ओर भी इशारा करती है। यही कि तुम्हारी शादी हो ही न। पर यह नामुमकिन है कि तुम्हारी जिन्दगी में प्रेम का अवसर न आये।

यह कह कर उन्होंने मेरी ओर कुछ ऐसे देखा जैसे अपने इस सांकेतिक प्रस्ताव की स्वीकृति माँगते हों। मैं ने जान-बूझ कर दुष्टता के साथ कह दिया था—हाँ, यह भी हो सकता है।

मेरे इस उत्तर से सिन्योर परेरा के मुख पर चमक आ गयी थी जिसे दूसरों ने हाथ पढ़ने की विद्या की सफलता पर हुआ हर्ष ही माना। और तब श्रीमती परेरा ने भी हाथ बढ़ा कर पूछा—मेरे बारे में तो बताओ।

सिन्योर परेरा ने उपेक्षापूर्वक कह दिया था—अब तुम्हारी जिन्दगी में और क्या शेष है?

मुझे फिर दुष्टता सूझी और कहा—नहीं ममी, ऐसी बात नहीं। मुझे दिखाओ। मैं भी कुछ-कुछ जानती हूँ। मृत्यु के पहले कोई कहानी खत्म नहीं होती।

सिन्योरा परेरा ने सरल भाव से अपना हाथ मेरे आगे बढ़ा दिया था। मैं ने गम्भीरता से अभिनय करते हुए उस रक्तहीन हथेली को देखा। मेरा अन्तर्मन उस में उन के उस भविष्य को पढ़ रहा था जो किसी भी ऐसी पत्नी का हो सकता है जिस का पति अबोध बच्ची की पवित्रता तक को छीन सकता है। वह हथेली देखते-देखते मैं भीतर ही भीतर कठोर हो चली थी। मेरी वह कठोरता अवश्य ही मेरी आँखों में उभर आयी होगी; क्योंकि सिन्योर परेरा देख कर कुछ सहम से उठे थे और उन की यह प्रतिक्रिया मुझ से छिपी न थी। पर दूसरे ही क्षण कोमल पड़ कर मैं ने कहा था—ममी, तुम बड़े भाग्य वाली हो। तुम्हारे पति तुम्हारे रहते कभी दूसरी स्त्री के बारे में सपने में भी न सोच सकेंगे। ऐसा हाथ कोई भाग्य वाली स्त्री ही पाती है।

इतना कह कर मैं ने सिन्योर परेरा की ओर देखा था। वे ऊपर से अपनी प्रसन्नता प्रकट कर रहे थे। पर उस प्रसन्नता के पीछे जो अस्थिरता और झेंप थी उसे मैं ही नहीं वे खुद भी समझ रहे थे और इसी से परेशान थे।

तो सुनते हो तुम—इस तरह की फ़िज़ूल सी दीखने वाली बातें जाने कितनी होती थीं। पर मैं जानती हूँ उन में से हर बात सिन्योर परेरा के लिए एक प्रयोजन रखती थी। मेरे लिए भी वे निष्प्रयोजन न थीं। हम दोनों एक-दूसरे के प्रति हिंसक थे। सिन्योर परेरा की हिंसा में लोभ था, मेरी हिंसा में बदला।

उस दिन सब को अचरज हुआ जब सिन्योर परेरा ने समुद्र-स्नान का प्रस्ताव किया। मेरे अपने रहते आज तक उन्हें इतना उत्साह कभी नहीं हुआ था। समुद्र के पानी को उन्होंने कभी पाँव से छुआ भी था या नहीं,

मुझे तो मालूम नहीं। यह प्रस्ताव कर के उन्होंने मुझे देखा था। मैं चुप थी। किन्तु आल्दा-इमैल्दा में उत्साह था। एमैरिक ज्यों-ज्यों बड़ा होता जा रहा था त्यों-त्यों घुन्ना। श्रीमती परेरा भी चुप ही रही। इमैल्दा बोली—पर डैडी, हम बिना स्विमिंग कॅस्ट्यूम के नहीं नहायेंगे।

सिन्योर परेरा ने कहा—पर आज तो बाजार बन्द है।

अब आल्दा भी बोली—डैडी, मजा तो तभी आयेगा। नहाने भी चलें और ऐसे ही, तो बात क्या बनी?

वे कृत्रिम अनिच्छा के साथ बोले—तब तो यह नहाना महँगा पड़ेगा। एक नहीं तीन-तीन सेट चाहिए।

तीसरी मैं थी, यह उन्होंने मेरी ओर देख कर स्पष्ट कर दिया था। तभी मैं ने भी कहा—तीन ही नहीं, छह चाहिए। ममी, एमैरिक और आप क्या ऐसे ही नहायेंगे?

वे बोले—मेरा और एमैरिक का क्या, कच्छा भर ही तो चाहिए।

श्रीमती परेरा उत्साहित न थीं—मुझे तो समुद्र का नहाना पसन्द नहीं। मुझे तो आप लोग माफ ही करें। एक बार जाने कब नहायी थी। तीन दिन तक नमक के पानी की चिपचिप बदन से नहीं गयी थी।

सिन्योर परेरा उस बात से उत्साहित ही हुए। फिर भी बोले—तुम भी चलती तो अच्छा था। पर मैं ज़िद नहीं करूँगा। तुम जाओ भी और तुम्हें मजा भी न आये तो बात ही क्या हुई।

आल्दा फिर बोली—तो डैडी, नहाने के कपड़ों का क्या होगा?

सिन्योर परेरा हँसे। बोले—घबड़ाती क्यों हो बेटी। फ़ाइनेन्स के डायरेक्टर के लिए यह बहुत ही मामूली बात है। एमैरिक जरा टेलीफोन पर 'कासा इण्टरनेशनल' के मालिक को तो बुलाओ। घर पर फोन करना। देखो अभी उस से कहता हूँ कि अपने स्टोर को खुलवा कर तीन सेट भेजे।

मैं ने फिर कहा—अपने और एमैरिक के लिए भी।

मेरे इस उत्साह से वे खुश ही हुए और बोले—तुम कहती हो तो यह भी होगा।

इतना कह कर रुथ ने व्यंग्य-विद्ध मुसकान छोड़ी। फिर बोली—फ़र्ज़ैन्दा के डायरेक्टर के प्रताप से घण्टे भर के भीतर ही सब सेट आ गये। बस फिर जल्दी ही सब जनें गाड़ी में बैठने को चल दिये। गाड़ी का दरवाजा खोलते न खोलते मैं कह बैठी—मगर ममी को भी हमें ले चलना चाहिए। न भी नहायें, साथ तो रहेंगी।

सिन्योर परेरा को अच्छा न लगा था। बोले—जब नहाना नहीं तो चलने से क्या फ़ायदा? वहाँ धूप में ही तो बैठेंगी।

मैं ने कहा—वहाँ फ़र्ज़ैन्दा के डायरेक्टर को क्या छतरी भी नहीं मिलेगी?

उन्होंने अनिच्छा पूर्वक कह दिया—तुम्हारी जैसी मर्ज़ी। वे चलें तो बुला लो।

बस मैं तेज़ी से भीतर आयी। सिन्योरा परेरा एक बार के कहने से ही राज़ी हो गयीं। दो मिनट भी तैयार होने में नहीं लिये।

पोर्च में आयी तो देखा सब लोग गाड़ी में बैठ चुके थे। आल्दा-इमैल्दा पीछे। एमैरिक ड्राइवर के पास आगे। मैं भी एमैरिक के पास जा बैठी। परेरा दम्पति पीछे की सीट में समा गये और गाड़ी चल दी।

जानते हो, गाड़ी के चलते ही मेरे मन में एक अजीब भाव आया था, एमैरिक को अपनी बग़ल में बैठा देख कर ही वह भाव पैदा हुआ था। प्यार का भाव नहीं, कोमलता का भी नहीं—षड्यन्त्र का भाव।

मैं आराम से नीचे को सरक कर बैठ गयी थी और आँखें बन्द कर के उस योजना पर विचार कर रही थी जिस की शतरंजी चाल के दो मोहरें उसी कार में मौजूद थे।

उस समय मीरामार पर नहाने वालों में सिर्फ़ हम ही लोग थे। नाटे के वक्त जितना बालुका-प्रसार दीखता है, उस का एक चौथाई जल-मग्न हो चुका था। लहरों के कोलाहल के अतिरिक्त वह समस्त प्रसार सोया हुआ था। समुद्र की दिशा में जल-प्रसार। बायीं ओर समुद्र-मांडवी का मिलन और उस मिलन के पास ही अगुआद का किला। वह किला जेलखाने के काम में आता था। पोर्तुगीज साम्राज्य को जिन स्वतन्त्र विचारों के व्यक्तियों से खतरा होता था वे उस किले में पहुँचा दिये जाते थे। सागर-कूल को एक ओर से अगुआद किले की चट्टान ने बाँध रखा था तो दूसरी तरफ़ से गवर्नर-जनरल के भवन काबू पैलेस ने जो डायमंडनुमा कोण पर समुद्र से काफ़ी ऊँचाई पर बना हुआ था। इन दो सीमाओं के आगे मुक्त सागर-प्रसार था। गवर्नर-जनरल के काबू पैलेस की ओर से ऊँची-ऊँची लहरें उठ कर आ रही थीं और मुक्त सागर की उन्मत्तता का चित्र प्रस्तुत करती थीं। बालुका-प्रसार के एक ओर यह सब था तो दूसरी ओर गैस्पर्डियस के एस्प्लानेड होटेल की सूनी काटेज। सड़क पर गोआ-विजेता अल्बुकर्क का स्तम्भ और दूसरी तरफ़ वास्कोडिगामा कबल की ऊँची-ऊँची मस्तूली छतें। क्षण भर को मैं सिल्वीर परेरा और उन के परिवार को भूल गयी थी और उस परिवेश में स्वयं को कुछ वैसा ही अनुभव कर रही थी जैसा कि कोई एकाकी विहग मध्याह्न के सूने नभ में उड़ान भरते हुए करता हो।

आल्वा-डमैस्का कपड़े बदल चुकी थी। एलैरिक अभी कमीज़ ही उतार रहा था और सिल्वीर परेरा जूतों में बालू भर जाने के कारण उन्हें झाड़ रहे थे। श्रीमती परेरा एक जगह साफ़ सी बालू पर बैठ गयी थीं। तभी इनैस्का ने मुझे पुकार कर कहा—तुम कपड़े नहीं बदलोगी क्या?

उस की आवाज़ से मैं चौंकी। जैसे शान्त वातावरण में अवांछित शोर मच उठा हो। उस चौंकने में एक अजीब सी प्रतिक्रिया हुई। पर फिर वास्तविकता का एहसास होते ही मैं अपने होंठों पर हल्की मुस्का

थी थी। स्विमिंग कॅस्ट्यूम में आल्दा-इमैल्दा दोनों बहनें प्यारी लग रही । उन का निर्दोष रूप जैसे वस्त्रों में विकृत हो जाता था। मैं भी कपड़े दलने में लग गयी।

मगर उस सार्वजनिक स्थान में चुस्त कपड़ों को उतार कर उन से भी अधिक चुस्त कपड़ों को पहनना समस्या थी। पता नहीं उन लड़कियों ने क्या किया था। नारियल तक का कोई पेड़ आसपास न था। दृष्टि इधर-उधर घूम कर लौट आयी और तब मैं ने बड़े तौलिये की ही शरण ली।

नीले रंग की कॅस्ट्यूम थी। उस के पहनते ही आत्म-सम्मोह से भर उठी। मैं स्वयं को जितना भी देख सकती थी उतने से ही स्फीत दर्प और आनन्द की अनुभूति हुई। जब तौलिये को बालू में छोड़ कर मैं मात्र स्विमिंग कॅस्ट्यूम में खड़ी हुई तो क्षण भर को मेरा मन फिर से आवरणों की ओर दौड़ा। पश्चिमी वातावरण में पल कर भी जैसे मेरे भीतर कोंकण के गांव की कोई संकोची लड़की ही प्रबल थी। पर यह मनोभाव ज्यादा देर न रहा। ज्यों ही सिन्योर परेरा पर दृष्टि पड़ी मैं स्वयं को उस अर्द्ध-नग्न रूप में सन्नद्ध योधेय सी महसूस करने लगी थी जो अपने कवच प नाज़ करता हुआ आक्रमणशील हो उठना चाहता हो।

आल्दा-इमैल्दा घुटनों-घुटनों पानी में पहुँच चुकी थीं। सिन्योर प भी अब कच्छे में आ गये थे। भीतर से उन का देह काग़ज़ सा स निकला। जैसे शिला के नीचे दबी घास बरसात में भी फीकी मुरझायी लगे। स्नायु-जाल उन की त्वचा को पारदर्शिता दे रह लगता था हाथ-पांव में नीले सपोलिये दम भर रहे हों। उन्हें दे अजीब जुगुप्सा हुई। उन नीली नसों में वासना का विष जो दौड़ त्वचा जिन हड्डियों को कस कर यथास्थान रखे थी उन के निरंकुशता साकार हो रही थी। मेरी ओर देखते हुए वे धीरे-ध की ओर बढ़ रहे थे। मैं भी कुछ धीमे से बढ़ी और जब वे पा कर चुके तो एमैरिक की तरफ़ लौट पड़ी थी।

एमेरिक नहाने के लिए तैयार हो कर भी जैसे सोच नहीं पा रहा था कि अब क्या करे। उस की देह में भी हड्डियाँ ही प्रधान थीं, पर उन में सिन्योर परेरा वाली जुगुप्सा न थी। मैं उस की तरफ बढ़ी तो वह कुछ चौंका, पर जब बिलकुल पास आ गयी तो मुसकराया। बोला—चलो नहायें।

मैं ने कहा—नहीं, पहले रेत में किला बनायें।

उस ने चतुरतापूर्वक उत्तर दिया—किला तो हवाई अच्छा होता है।

एमेरिक में वचन-कुशलता है यह मैं ने कभी कल्पना भी न की थी। अपने इस उत्तर से वह मुझे अच्छा ही लगा। मैं ने कहा—अच्छा तो मैं बालू का महल बनाती हूँ, तुम हवाई किला बनाओ।

इतना कह कर मैं जहाँ खड़ी थी वहीं बैठ गयी और दोनों हाथों से बालू समेटने लगी। उधर वह कह रहा था—तुम्हारे इस महल में कौन रहेगा?

मैं ने कहा—मेरा प्रेमी।

उस ने फिर चुटकी ली—तब तो वह केकड़े का वंशज होगा।

अचानक ही मेरी दृष्टि सिन्योर परेरा पर चली गयी थी, जो मुझे साक्षात् मानवी केकड़ा जान पड़े। मैं ने उधर देखते हुए ही कह दिया—एक तो अच्छाई होगी उस प्रेमी में कि पकड़ कर छोड़ेगा नहीं।

तो तुम सहारा खोजती हो?—एमेरिक ने जैसे ही कहा मैं गरदन घुमा कर उसी को देखने लगी थी। आज पहली बार मैं ने जाना कि उस की आँखों की पुतलियों का रंग जिस नीलेपन को लिये हुए है वह कुछ अलग ही है। मुझे यह भी लगा कि अब तक जो कुछ भी मैं ने उस के बारे में सोचा वह वास्तविकता से दूर ही है।

उत्तर में मैं ने कह दिया था—तुम उसे सहारा कह लो, मैं उसे न छूटने वाला साथ कहूँगी। पर यह बताओ तुम अपने हवाई किले में किसे रखोगे?

वह तब रेत पर आड़ी-तिरछी लकीरें खींच रहा था। बोला—अपनी ज़िन्दगी के सपनों को रखूँगा।

जिस एमैरिक को मूर्ख, चुप्पा या कभी-कभी घुन्ना मानती आयी थी उस के इस उत्तर ने मुझे चमत्कृत कर दिया। मैं ने पूछा—तुम्हारे पास सपने हैं? बाँटना पसन्द करोगे?

नहीं।—उस ने कुछ ऐसी दृढ़ता से कहा जैसे किसी वास्तविकता के बँटवारे का प्रश्न हो।

मैं ने कहा—ऐसा? क्यों?

उत्तर था—जिस ने वे सपने दिये उस से बाँट सकता हूँ, मगर किसी की दी हुई चीज़ को उसे ही देने में क्या मज़ा! और किसी दूसरे को मैं हक़दार नहीं मानता।

मुझे भी नहीं?—जाने किस प्रेरणावश मैं कह गयी। शायद मेरे अवचेतन में कुछ उग रहा था और उसी का यह प्रतिफल था।

उस ने बिना सकपकाये कहा था—यह तो वही बात हुई, तुम्हारी चीज़ तुम्हीं को दूँ!

उस ने स्थिर दृष्टि से मुझे देखा। क्षण भर को मुझे लगा मैं विचलित हो जाऊँगी। मगर फिर अपनी योजना को सोच कर मैं सँभली और बोली—तो तुम मेरे साथ यों मनमानी करते रहे हो?

उस का जवाब था—यह मैं क्या जानूँ। यह तो 'वह' जाने और 'यह' जाने।

मुझे हँसी आ गयी—'वह' यानी मैं और 'यह' यानी तुम्हारा मन?

इस व्याख्या से उस की आँखों की नीलिमा गहरी हो चली थी और समुद्र की ओर देखते हुए भी वह बालू में बहुत सी समानान्तर रेखाएँ खींच गया था।

तभी श्रीमान् परेरा का प्रादुर्भाव हुआ। अंगों से पानी टपकाते हुए और अपनी बौनी छाया से हमें ग्रहण सा लगाते खड़े कह रहे थे—तुम

लोग नहाओगे नहीं ?

इस से पहले कि हम दोनों में से कोई कुछ उत्तर दे, मुझ से बोले—रुथ, चलो मेरे साथ चलो। तुम समुद्र में कभी नहायी नहीं। अकेले आनन्द नहीं ले पाओगी।

मैं ने कहा—नहीं, अकेली कहाँ हूँ। एमेरिक तो है।

और मैं एमेरिक का हाथ पकड़ कर उठ खड़ी हुई थी। फिर सिन्योर परेरा की ओर देखे बिना हम दोनों दौड़ते हुए जल की ओर बढ़ गये थे। थोड़े जल में भी हम दौड़ते रहे। पर जब जल बढ़ा तो रुके। एमेरिक पूछ रहा था—तुम्हारे बालू के महल का क्या हुआ ?

मैं ने कहा—जल-दानव ने ढहा दिया।

व्यंग्य का लक्ष्य समझते हुए वह हँसा। फिर मैं ने पूछा—और तुम्हारा हवाई क़िला ?

बोला—वह दुर्भेद्य है। उसे न कोई जल-दानव तोड़ सकता है न कोई गगन-दानव।

मन का दानव भी नहीं ?—मैं ने उसे गहरे जल की ओर खींचते हुए पूछा।

उस ने उत्तर देने के बजाय रोका—डूबने चली हो क्या ?

इस से पूर्व कि मैं कुछ कहूँ एक ऊँची लहर आयी और हम दोनों की आँख-नाक में नमकीन जल भर गया। मैं परेशान हो उठी। वह मुसकरा रहा था—क्यों कैसा लगा ?

मैं अब सम्हल चुकी थी। बोली—मैं ने अब डूबने का इरादा बदल दिया है। आदमी डूबे भी तो मीठे जल के कुण्ड में।

वह बोला—यह तो अरब सागर का अपमान करना हुआ।

' मुझे बातों में सुख सा मिल रहा था। मैं उत्तर देने ही जा रही थी कि उस ने अचानक मुझे कमर से पकड़ कर ऊपर उठा लिया। फिर हाँफता सा बोला—लो बच गयीं। फिर लहर का चपेटा पड़ता। समुद्र

ड़ी हो कर समुद्र की बुराई मत करो।

तभी आल्दा दौड़ी-दौड़ी आयी और एमैरिक को खींचती हुई बोली—
ा, चलो हमें तैरना सिखाओ।

इमैल्दा तैर रही थी। मैं ने कहा—अजीब बात, इमैल्दा जानती है
ौर तुम नहीं ?

आल्दा ने बताया—उस ने स्कूल के टैंक में सीख लिया था। मैं ने
टैंक में मेढक देख लिये थे इसलिए उस में घुसी ही नहीं।

एमैरिक ने चिढ़ाते हुए कहा था—यह भी खूब है, केकड़े को खा
लेती है और मेढक से डरती है।

एक क्षण रुक कर एमैरिक ने मुझ से पूछा—तुम्हें तो तैरना आता
होगा रुथ ?

मैं ने कहा—मैं तो सिर्फ़ डूबना जानती हूँ। खुद भी डूबूँ और जो
साथ दे उसे भी डुबो दूँ।

तो कोशिश करो !—आल्दा से मुक्त होते हुए वह मेरी ओर
बढ़ा था।

मैं पीछे को हटी। पर हटते ही मैं गहरे पानी में जा पहुँची। तभी
एक तेज लहर आयी और उस के साथ मैं अनायास ही किनारे की ओ
खिसक गयी। तब तक एमैरिक ने बढ़ कर पकड़ लिया था।

इस आकस्मिक स्थिति से मुझे सदमा सा लगा था। मन की घबड़ा
आँखों में तिर आयी थी। एमैरिक कह रहा था—वाह, तुम तो रिह
में ही नाटक की स्थिति ले आयी थीं।

स्वयं को उपेक्षित देख आल्दा चिढ़ी—यह कैसी बातें करते हो
घर में चुप्पे बने रहते हो और यहाँ आये तो नहाना बन्द, बस बा
बातें !

इतने में इमैल्दा भी इधर आ गयी थी। आते ही उस ने
उछालना शुरू कर दिया। चट से दो दल बन गये और एक

नमकीन पानी से पस्त करने में जुट पड़े, मैं और आल्दा एक ओर, एमेरिक और इर्मेल्दा दूसरी ओर !

सिन्योर परेरा की उपस्थिति को हम सब जैसे भूल गये थे। हमारे उस ऊधम में वे भी आ मिले। मगर अब परिणाम यह हुआ कि सब मिल कर उन पर छींटे उड़ाने लगे और मैं एक तरफ़ को अलग जैसी हो गयी थी। वह सब प्रसन्नता की क्रीड़ा थी। उसी व्यक्ति के साथ की जा सकती थी जिस का सम्पर्क सुख दे।

जल्दी ही वह ऊधम बन्द हो गया। सिन्योर परेरा मेरी तरफ़ बढ़े। मैं ने अनदेखा किया और दूर हटती गयी, तब उन्होंने आवाज़ दी—सुनो रुथ !

मैं बराबर दूर हटती गयी, तो उन्होंने फिर पुकारा—नहीं सुनोगी रुथ !

इस बार मैं रुक गयी। पर भाव ऐसा दिखाया जैसे पहले कुछ सुना ही न था। वे मेरे पास आ गये थे। और कुछ कहने की बजाय बेशर्मी से मेरी ओर देखते रहे। मैं उन की निगाहों से बचने के लिए पानी में घुटनों के बल बैठ गयी थी जिस से अब गले से ऊपर का भाग ही पानी के बाहर था।

वे बोले—मैं तुम्हारी वजह से नहाने आया और तुम हो कि दूर-दूर भागती हो।

मैं ने अनजान बनने का अभिनय किया।

वे फिर बोले—अपने बारे में एक बात जानती हो ?

उन की आँखों को मैं ने न देखा होता तो उन के इस प्रश्न का मैं कुछ और ही आशय लगाती। पर उमड़ी आती लिप्सा से प्रकट था कि वे क्या कहेंगे। और जाने मन की किस ढिठाई के आग्रह पर मैं ने स्वयं ही कह दिया—यही कि मैं बेहद सुन्दर हूँ।

जो बात वे ख़ुद कहने जा रहे थे वही मुझ से सुन कर अपमानित से हुए। उन के सूखे चेहरे पर पानी की तरलता के बावजूद एक कड़ापन

उभरा पर तुरत ही वह उन के अपने गालों के गर्त में किसी गहरे इरादे के साथ जा छिपा। उन के इस विचलन और फिर उसे छिपाने की चेष्टा करने पर मैं विजय उल्लास से भर उठी थी। उधर अपने को सम्हाल कर वे कह रहे थे—नहीं मैं यह कहने वाला नहीं था। मैं तो यह कहने जा रहा था कि एमैरिक को तुम से ज्यादा मैं जानता हूँ। वह एकदम बेवक़ूफ़ लड़का है।

सुन कर मैं हँस पड़ी। उन्होंने अचम्भे और खीज के साथ पूछा—इस में हँसने की क्या बात?

मैं ने उसी तरह कहा—यही कि आप मुझे मेरे बारे में कुछ बताने जा रहे थे पर बता गये अपने बारे में।

इस उत्तर से सिन्योर परेरा का मुँह तमतमा गया था। पर वे बोले कुछ नहीं। उन की पतली खाल के नीचे जो पशु छिपा था उस के पंजों के नाख़ून जैसे उस खाल को खरोंचते हुए ख़ून की लाली से भर उठे थे।

पर उस से मेरे मन में भय का संचार नाम को न हुआ। मैं तो स्वयं उस नाटक को खेलने जा रही थी। बस नाटक के दूसरे ऐक्ट के रूप में मैं ने आगे बढ़ कर उन का झुर्रियों से खुरदुरा हाथ पकड़ लिया था और किनारे की ओर चलते हुए कहा था—चलिए सिन्योरा अकेली ऊब गयी होंगी।

सिन्योर परेरा एक क्षण को तो अपनी प्रतिक्रिया निर्धारित नहीं कर पाये। फिर साथ हो लिये, बिना कुछ बोले। किनारे पहुँच कर मैं ने उन का हाथ छोड़ते हुए कहा था—तो आप सिन्योरा के पास चलें। मैं थोड़ा और नहा लूँ। एमैरिक-आल्दा-इमैल्दा सब अभी पानी में ही हैं।

इतना कह कर मैं उन की ओर देखे बिना एमैरिक की दिशा में दौड़ गयी थी और मेरा विश्वास था कि मेरे इस आचरण से उन की सूखी हड्डियाँ कड़कड़ा उठी होंगी।

रुथ के चेहरे पर सन्तोष का भाव झलक आया था ! जैसे उस की कथा में अब वह स्थिति आ गयी थी जब अपनी हिंसा के लिए आहार जुटा सकती। उसी भाव से वह कहती गयी—हम लोग नहाते ही रहते अगर सिन्योरा परेरा बुलाने न आ गयी होतीं। मुझे लगा कि वे अपने पतिदेव के संकेत पर ही आयी थीं। उन्होंने गोली बालू तक आ कर आवाज़ दी—बच्चो जल्दी करो, लंच के लिए बहुत देर हो रही है।

पर उस समय भूख और वक़्त का होश किसे था। इमैल्दा ने चिल्ला कर कहा—'अभी आये' और फिर हमारा जल-विलास शुरू हो गया।

सिन्योरा परेरा ने तब उत्तेजित स्वर में पुकारा—चलो, डैडी बुला रहे हैं।

डैडी का उल्लेख होते ही आल्दा ने कहा—चलो-चलो, नहीं तो अब सारा मज़ा किरकिरा हो जायेगा।

हम लोग लौट पड़े। आगे-आगे आल्दा, फिर मैं और एमैरिक, सब से पीछे इमैल्दा। एमैरिक और मैं एक-दूसरे का हाथ पकड़े हुए थे और हम दोनों अपने बँधे हुए हाथों को धीरे-धीरे झुलाते बढ़ रहे थे। मैं ने एमैरिक से कहा था—मैं ने आज एक अनुसन्धान किया है।

उस ने पूछा—क्या ?

यही कि तुम लड़कियों को आकृष्ट करना जानते हो।—मैं ने निःसंकोच कह दिया था।

वह हँस कर बोला—मेरे बारे में यह राय रखने वाली पहली लड़की तुम ही हो।

हो सकता है।—मैं ने फिर कहा—शायद इसलिए कि तुम्हारे साथ समुद्र-स्नान करने वाली पहली लड़की भी मैं ही हूँ।

तभी इमैल्दा पीछे से हम दोनों के कन्धों पर हाथ रख कर उछल पड़ी थी और ढेरों छींटे उड़ाती कह रही थी—हर छुट्टी को यह प्रोग्राम रखना चाहिए।

...चलती हुई आल्दा बोल उठी—डैडी मानें तब ना !
...ल्दा ने कहा था—जरूरी थोड़े ही है कि वे भी साथ आयें ।
...ने एमेरिक से कहा—तुम चुप क्यों हो ? तुम्हारी राय क्या है ?
उस ने चपलता से कहा—छुट्टियाँ तो देर-देर से आयेंगी, मैं तो रोज़
... के पक्ष में हूँ ।

किनारा आ गया था । श्रीमती परेरा हम सब के लिए वहीं रुकी
...ड़ी थीं । इमैल्दा गीले वदन ही उन से लिपट गयी थी । उन्होंने उस से
...चने का व्यर्थ प्रयत्न करते हुए कहा—अरी री, मुझे क्यों भिगो रही है ?

मचलती सी वह वोली -- तुम नहायी जो नहीं ।

अच्छा छोड़ अगली वार नहा लूँगी ।—उन्होंने वचने के लिए ही
जैसे कह दिया ।

इमैल्दा कपड़ों की तरफ़ दौड़ गयी । श्रीमान् परेरा कहीं दिखाई नहीं
दिये । मैं ने पूछा—सिन्योर कहाँ चले गये ।

श्रीमती परेरा ने विना किसी विशेष भाव के कह दिया था—कार में
जा वैठे होंगे । यहाँ तो धूप वहुत है ।

अव एमेरिक भी चुप्पा सा अपने कपड़ों की दिशा में वढ़ गया था ।
आल्दा भी तेजी दिखाने लगी थी । जैसे सिन्योर परेरा के उस भाव से
सव आतंकित थे । मैं भीतर-भीतर प्रसन्न थी और धीरे-धीरे चल रही
थी । श्रीमती परेरा स्वभावतः धीरे चलती थीं । वस हम दोनों साथ ...
गये । वगल में चलती हुई भी वे रह-रह कर मेरी ओर कुछ ऐसे भाव...
देखतीं जैसे नया परिचय हो । मेरी वायीं जंघा के निशान पर उन...
दृष्टि कई वार गयी । एक वार चलते से रुक कर उन्होंने पूछा भी—
कैसा निशान है ?

मैं ने लापरवाही से उत्तर दिया—पता नहीं कैसा है । जव ...
सम्हाला तव से देखती आयी हूँ ।

किसी चोट या घाव का भी तुम्हें स्मरण नहीं ?—उन्होंने

उत्सुकता से पूछा ।

मैं ने सिर हिला कर नकारात्मक उत्तर दिया । वे कुछ अस्थिर हुईं । फिर बोलीं—कितने बरस की थी तुम जब 'निन्यु इन्फेंण्टिल' में आयी ?

मैं ने वैसे ही कहा—मुझे कुछ पता नहीं । मैं तो सोचती हूँ कि मैं पैदा ही वहाँ हुई ।

उन्होंने फिर पूछा—तुम्हारे माता-पिता के बारे में वहाँ भी किसी को कुछ पता नहीं ?

मैं ने कहा था—मुझे तो बचपन से यही बताया गया कि यीशु मेरे पिता हैं ।

हम दोनों अभी तक खड़ी ही थीं । मैं ने श्रीमती परेरा में एक तीव्र विचलन सा अनुभव किया । आँखों में बेचैनी और शरीर में कम्पन । उन्होंने मेरे कन्धे पर हाथ रखा और धीरे-धीरे चलने लगीं । कुछ पग चल कर बोलीं—यह भी कैसी बात है कि माता-पिता के पाप का दण्ड सन्तान भोगे !

बात स्पष्ट ही उसी सन्दर्भ में थी । मेरे प्रति दया और पीड़ा भी थी । फिर भी मैं ने उस उक्ति के प्रति कोई विशेष भाव नहीं दिखाया । चलते-चलते सिन्योरा मेरी पीठ सहलाने लगी थीं । एक बार उन्होंने अपने गुदगुदे हाथ से मेरे भुजमूल को भी कस कर दबाया । जब तक कि मैं अपने कपड़ों के पास नहीं पहुँच गयी वे मेरे शरीर का स्पर्श तरह-तरह से करती रहीं । बीच में आशंकित स्वर में यह भी कहा—तुम आज बहुत नहायी हो, ठण्ड तो नहीं खा गयी ?

फिर जब मैं ने स्विमिंग कॉस्ट्यूम उतार कर बड़े तौलिये में अपने को लपेटा तो आँख बचा कर वे उसे उठा कर धोने चल दीं । मैं तौलिये के दोनों सिरों को दाँतों से भींच कर थामे थी और अण्डरवियर पहनने का उपक्रम कर रही थी । न हाथ से उन्हें रोक सकी न कुछ मुँह से ही बोल सकी ।

हम लोग कार के पास पहुँचे तो देखा, सिन्योर परेरा मुँह फुलाये बैठे थे । देखते ही सब मुरझा गये । एमेरिक पीछे बैठने जा रहा था कि

श्रीमती सिन्योरा ने कहा—तुम आगे बैठो बबूश ! हम चारों पीछे बैठेंगी।

ममी एमैरिक को कभी-कभी बबूश कह कर पुकारा करती थीं। यह उन का प्यार भरा सम्बोधन था। मैं ने देखा एमैरिक में उस आज्ञा-पालन का विशेष उत्साह न था। फिर भी उस ने वैसा ही किया। ड्राइवर की ओर से घुस कर बीच में जा बैठा। श्रीमान् परेरा गरदन को सख्त किये बुत से बैठे रहे। पिछली सीट पर श्रीमती परेरा मेरे पास बैठीं। उन्होंने मेरा हाथ अपने हाथ में ले लिया था और उसे कभी सहलातीं तो कभी उलट-पुलट कर देखतीं। मैं उन की उस ममता को देखते हुए भी कारण नहीं समझ पा रही थी। सच तो यह कि मेरा इस ओर विशेष ध्यान ही न था; मैं तो मन ही मन श्रीमान् परेरा की कुढ़न पर प्रसन्न हो रही थी।

गाड़ी खासी रफ़्तार से जा रही थी। इस पर भी सिन्योर परेरा ने ड्राइवर को डांटा—कार चलाते आये हो कि बैलगाड़ी ?

ड्राइवर ने बिना कुछ कहे कार का ऐक्सेलेरेटर और दबा दिया था। गाड़ी चालीस से पचास की रफ़्तार पर दौड़ने लगी थी। श्रीमान् परेरा फिर बिगड़े—तेज चलाने का मतलब यह तो नहीं होता कि तुम रेसिंग करो।

घबड़ाये से ड्राइवर ने ब्रेक लगाना शुरू कर दिया था। बीच में बैठे एमैरिक ने कुछ असहिष्णुता से अपने कन्धे झटके थे। मैं यह सब सुन-देख कर भीतर-भीतर खुश थी। उधर सिन्योरा परेरा मेरे बालों की गीली लटों में अँगुली फेरती हुई कह रही थीं—तुम ने सिर नहीं पोंछा। बाल इतने गीले रहने पर जुकाम पकड़ लेता है।

बाल हम तीनों के ही लगभग एक जैसे गीले थे। आल्दा की एक लट से तो बूंद ही चू पड़ी थी तभी ! मगर उन्हें सिर्फ़ मेरी ही चिन्ता थी। क्षण भर तो मुझे वह चिन्ता रहस्य भरी लगी, पर फिर मैं उधर ध्यान न दे आगे की सीट पर बैठी त्रिमूर्ति को देखती रही।

जल्दी ही बँगला आ गया था। गाड़ी ठीक से रुकी भी नहीं थी कि सिन्योर परेरा उतर पड़े। आल्दा ने धीरे से कहा—जाने डैडी का मूड

क्यों इतना खराब हो गया।

इमैल्दा ने टीका की—यह कौन नयी बात है। मूड अच्छा हो तो अचरज करना चाहिए।

श्रीमती परेरा निरपेक्ष भाव से बैठी थी और मेरे हाथ को थामे कुछ ऐसी निश्चिन्त थी जैसे कार से ही अभी आगे जाना हो।

मैं ने कहा—उतरें अब हम लोग भी।

ओः हाँ।—श्रीमती परेरा ने कुछ ऐसे कहा जैसे मेरी बात ने चौंका दिया हो। और फिर मेरे पीछे-पीछे मेरी तरफ वाले दरवाज़े से ही उतरी हालाँ कि वे खुद दूसरे दरवाज़े के पास बैठी थी।

कार से उतर कर सब सीधे डाइनिंग रूम में जा बैठे थे। सिन्योर परेरा वहाँ बैठने वालों में प्रथम थे और मैं और सिन्योरा परेरा अन्तिम। एक कुरसी सिन्योर परेरा की बग़ल में ख़ाली थी तो दूसरी एमैरिक की जो उन के ठीक सामने बैठा था। मैं एमैरिक के पास जा बैठी। सिन्योरा परेरा ने पति का पार्श्व ग्रहण किया।

मेज तैयार थी। पेड्रु सन्तान ने सूप परसा। एक चम्मच मुँह में डालते ही सिन्योर परेरा की भृकुटी चढ़ी। घूँट नीचे उतार कर कहा—इतनी देर से खाने बैठो तो अच्छा खाना भी खराब लगता है।

किसी ने उन की उस बात में सहयोग नहीं दिया। सब चुप थे। सब सूप पीते रहे। कुछ देर चुप रह कर वे फिर बोले—मैं सोचता हूँ यह पेड्रु भी खाना बनाने में लापरवाही दिखाने लगा है।

इस बार भी किसी ने कोई जवाब नहीं दिया। उन के चुप होने पर मैं ने एमैरिक से कहा—मुझे नहीं मालूम था कि समुद्र-स्नान के बाद इतनी तेज भूख लगती है। तुम्हारे क्या हाल हैं?

वह चुप रहा। तब मैं ने उसे कोहनी से हिलाया। फिर कुछ मुस-करा कर कहा—मैं आप से कह रही हूँ।

उस ने नीरस भाव से कह दिया—हाँ भूख लगती तो है।

मुझे ताज्जुब हो रहा था कि समुद्र तट वाले विलक्षण एमेरिक को यह सहसा क्या हो गया। अब फिर चुप्पा, निर्जीव, बेवक़ूफ़ सा! पर मैं हारी नहीं। मेरा लक्ष्य ही था सिन्योर परेरा के आतंक को तोड़ना। मैं ने फिर कहा—लगता है ज़्यादा तैरने से तुम थक गये हो।

हो सकता है।—उस ने मूर्खतापूर्ण ढंग से कहा।

मैं हँस पड़ी : कुछ ऐसे कि सिन्योर परेरा भी आँखें फाड़ कर देखने लगे। एकबारगी माथे में बल पड़े और फिर सिर झुका कर प्लेट में रखी मछली पर काँटे-छुरी का प्रयोग करने लगे।

मगर मेरे इस सारे प्रयत्न के बावजूद वहाँ कोई बात करने के लिए उत्साहित नहीं हो रहा था। श्रीमती परेरा निरुद्विग्न अवश्य थीं। पर उन का अभी सूप तक समाप्त नहीं हुआ था। और मैं देख रही थी कि वे बराबर मुझे ही देख रही हैं।

अब मैं ने उन से कहा—आप तो लगता है खा ही नहीं रहीं?

उन्होंने एक बिलकुल असम्बद्ध बात कही—मुझे आज ही पता चल कि तुम्हारे और मेरे बालों का रंग एक सा है।

मैं ने कहा—पर मैं तो यह बात शुरू से जानती रही हूँ। बाल ह क्यों, आँखों का रंग भी एक सा है।

उधर सिन्योर परेरा चिल्लाये—पेड्रु! फिर बड़बड़ाते से बोले— तो वैसे ही देर हुई खाने में, दूसरे यह पेड्रु ढीला पड़ गया है।

श्रीमती परेरा जाने किस ध्यान में थीं कि सिन्योर के मूड का ध किये बिना पूछ बैठीं—यह कहती हैं कि मेरी और इस की आँखों का एक सा है। क्या यह सच है?

उन्होंने चिढ़ कर कहा—मैं तो सोचता हूँ कि अगर यह कहे तुम्हारी उम्र भी इस के बराबर है तो तुम शायद मान ही लो।

सिन्योरा का मुँह उतर गया। मुझे बुरा लगा और मैं धृष्ट कह उठी—आप भी किन से पूछती हैं। शीशे में देख कर इतमीन

लीजिए न ?

सिन्योर परेरा ने क्रुद्ध भाव से नथुने फुलाये। मछली काटने में प्लेट पर ज़ोर से चाकू मारा। पास रखे गिलास को तभी हाथ छू गया। लुढ़का तो नहीं। पर छलक गया। थोड़ा सा पानी प्लेट में भी जा गिरा।, पर उस ओर से अन्यमनस्क वे मछली पर अपना चाकू चलाते ही रहे।

मेरी योजना बढ़ रही थी। सिन्योर परेरा को तरह-तरह के उत्तेजन देने में मुझे मज़ा आता। एकान्त में मिलते तो मैं उन के हाथ को अपने हाथों में ले लेती और सहलाती, कभी फिज़ूल सी बात करने लगती और उन की उस जीर्ण देह में प्यास पैदा करती रहती।

उधर सिन्योरा परेरा का अनुराग मेरे प्रति अजीब शक्ल ले रहा था। थोड़े ही दिनों में मेरे लिए ढेरों फ्रॉकें बन गयीं। तरह-तरह के जूते आये। हेअर ड्रेसिंग के लिए मुझे वह खुद सैलून ले जातीं और वहाँ हेअर ड्रेसर को बीच-बीच में बताती रहतीं—यहाँ से ऐसे नहीं ऐसे। ये कर्ल खराब न हों। देखते नहीं मेरी बेटी का माथा कितना ख़ूबसूरत है, ऐसे तो तुम उस की शोभा ही ख़त्म कर दोगे। सैलून में अलग से लेडीज़ कैबिन था। मेरे आने की खबर पहले से कर दी जाती और जब मैं पहुँचती तो कैबिन बिलकुल साफ़-सुथरा मिलता।

कभी-कभी बीच रात में वे कमरे में चली आतीं और मेरे पास चुपचाप आ लेटतीं। मैं करवट लेने में जब उन से टकरा कर जागती तो कहतीं—सोओ बेटी। मैं हूँ। तुम सोओ, थोड़ी देर में चली जाऊँगी।

कभी एकाएक आ जातीं और कहतीं—तुम ने मुझे पुकारा ? मुझे ऐसा लगा। ज़रूर पुकारा होगा। या तुम कोई सपना देख कर डरी होगी। मैं चली आयी। मैं ने तो यहाँ ज़ीरो पॉवर का रंगीन बल्ब लगवा दिया है। उसे जला कर सोया करो, बुझा क्यों देती हो ?

मती परेरा आरम्भ में तो अकेले-दुकेले में ही अपनी
नाएँ प्रकट करतीं, मगर बाद में सब के सामने करने लगी थीं।
परेरा के सामने भी। खाना खाते-खाते अपनी प्लेट की कोई
उठा कर मेरी प्लेट में डाल देतीं और कहतीं—इसे और खाओ!
नती हूँ तुम्हें पसन्द है।

उन के इतने स्नेह वश मैं उन्हें अब ममी कह कर पुकारती थी।
कभी-कभी पुकार उठती थी। पर अगले ही क्षण सहम सी जाती
। अब मुझे यही स्वाभाविक लगने लगा था। श्रीमती परेरा की स्नेह-
वना के कारण आल्दा-इमैल्दा के मन में मेरे प्रति एक दुर्भाव पैदा हो
या था। मुझे सुना-सुना कर अकसर वे आपस में मेरी आलोचनाएँ
करतीं। इमैल्दा तो यहाँ तक कह डालती—देखती हो, ममी की सगी
बेटी बन बैठी है। हम से अच्छे कपड़े पहनती है। हेअर ड्रेसिंग के लिए
फ्रांसिस्क नरोना के बारबेरिया को छोड़ दूसरा सैलून पसन्द नहीं। क्यों न
हो। गवर्नर-जनरल की पत्नी भी तो उसी से हेअर ड्रेसिंग कराती है।

एमैरिक का दब्बूपना और घुन्नापन पहले से कम हो चला था। अब
वह सिन्योर परेरा की उपस्थिति में भी मेरे साथ हँसने लगता। ऊँचे स्वर
में बातें करता। अपने इस भाव से एक ओर सिन्योर परेरा के प्रति
अवज्ञा प्रकट करता तो दूसरी ओर मुझ पर यह प्रदर्शित करता कि वह
पुरुष है, सिन्योर का लिहाज करता है उन से डरता नहीं।

एक दिन वह शाम के समय मुझे सिन्योर परेरा की स्टडी में ले
गया। पुस्तकों से अधिक वहाँ शराब की बोतलें रहती थीं, फिर भी वह
कमरा 'स्टडी' कहलाता था। पुस्तकें भी ऐसी जिन्हें वे शायद ही कभी
छूते हों। मगर दफ़्तर से वे लौटते तो पहले सीधे स्टडी में जाते। लिस्ब
से आने वाले एकाध पुराने अखबार को उलटते-पुलटते और अपनी च
वहीं मँगवाते। उन के इस नियम में जब व्यतिक्रम होता तो सिन्यो
परेशान हो उठतीं। उन्हें वह अपशकुन सा लगता। या तो दफ़्त

अब

कुछ गड़बड़ हुई या घर में ही किसी की मुसीबत आयी।

उस दिन उन के आने का वक़्त हो चला तो मैं ने एमैरिक को याद दिलायी—चलो अपने कमरे में चलें। सिन्योर आते होंगे।

उस ने तवज्जह ही नहीं दी। मैं उठने को हुई तो हाथ पकड़ कर थाम लिया और अपनी बात कहता गया। इतने में सिन्योर परेरा आ गये। उन के जूतों की मच-मच आवाज़ का एक ख़ास सम था जो उन की गति के सम से बँधा था। आवाज़ इतने क़रीब आ गयी कि कोई भी सुन सकता। तो भी एमैरिक ने परवाह नहीं की। उलटे मेरे एक हाथ को अपने हाथ में ले कर बिना बात हँसना शुरू कर दिया। सिन्योर परेरा कमरे के बीचोबीच आ कर खड़े हो गये। अपनी उपस्थिति का आभास दिलाने के लिए एक बार उन्होंने जूते से आवाज़ भी की। मगर एमैरिक उसी तरह हँसते हुए अपनी निरर्थक बात कहता रहा।

झल्लाये से सिन्योर परेरा कमरे से चले गये। उन के जाते ही एमैरिक शान्त हो गया। मैं ने पूछा—यह क्या नाटक कर रहे थे?

बोला—जो समझो।

मैं ने कहा—मैं क्या समझूँ। ऐसा तो तुम कभी नहीं करते थे।

उस ने कहा—कभी नहीं किया, तो क्या कभी नहीं कर सकता?

मैं ने मुसकरा कर 'हूँ' भर कहा। मेरे होंठों पर बरबस मुसकराहट आ गयी। इस पर वह कुछ चौंका। मैं ने उसी तरह मुसकराते हुए कहा—अब तुम बहादुर हो चले हो!

बात वहीं रह गयी। सिन्योर परेरा के आतंकवादी साम्राज्य में उन्हीं के सुपुत्र एमैरिक परेरा का यह पहला विद्रोह था। अकबर के ख़िलाफ़ सलीम की बग़ावत! वह मेरी अपनी उपलब्धि थी और इस बात का मुझे एहसास भी था।

धीरे-धीरे एमैरिक में अनुराग के अंकुर फूटने लगे। वह मुझ से काव्यमयी भाषा बोलने लगा। उस को हर किताब पर मेरा नाम लिखा

, कई-कई जगह। किसी बहाने से मुझे वह सब दिखा भी देता।
से कहती—यह सब क्या है? तब वह संकोच का अभिनय करता,
चोरी पकड़ ली गयी हो। फिर कहता—यह सब मेरे अपने लिए हैं,
म इसे क्यों पढ़ती हो?

मैं कहती—वह तो जो देखेगा पढ़ेगा। स्कूल में लड़के, टीचर, और
घर में भी कोई देख सकता है। सिन्योर ही देख लें तो?

तो क्या?—वह उद्धतता के साथ कहता—मैं कोई डरता हूँ। बहुत
करेंगे घर से निकाल देंगे।

और फिर?—मैं ने पूछा।

बोला—चला जाऊँगा कहीं भी। जापान चला जाऊँगा। जहन्नुम
भी जा सकता हूँ। मगर इस से क्या?

मैं कहती—यही कि तुम जहन्नुम में होगे और मैं यहाँ सिन्योर की
सेवा में।

उत्तर में शब्द उस का साथ नहीं देते। आँखें लाल हो उठतीं और
नथुने ठीक वैसे ही फूलने लगते जैसे सिन्योर परेरा के। तब मैं उस के
प्रति भी घृणा से भरने लगती। वह मुझे सिन्योर का अतीत लगता जो
उन के वर्तमान जैसा ही कलुषित रहा होगा।

अजीब बात थी। मैं उस परिवार में स्नेह सींच कर घृणा पैदा कर
चाहती थी। अपने प्यार से मैं उन के सुख-सपनों को तोड़ देना चा
थी। मुझे उन में से किसी पर कभी दया नहीं आती। आल्दा-इ
निर्दोष होने पर भी मेरी दया की पात्र नहीं थीं। बस ममी, सिर्फ़
जाने क्यों उन के सामने मैं कोमल पड़ जाती। और एमैरिक? व
साधन था, हिंसा का शस्त्र। कब कैसे उपयोग कर पाऊँगी, नहीं
थी। बस उसे मैं पैना कर रही थी।

जब कभी वह सच्चे भाव से अनुराग प्रदर्शित करता
कभार मैं कोमल पड़ती। दया उमड़ती। मगर उस के नथुने

सादृश्य के कारण, मुझे उस व्यक्ति का स्मरण दिला देते जिस का खून तक मैं कर सकती थी।

सच मैं खून तक कर सकती थी। मैं ने आवेश के क्षणों में यह सब सोचा। पर वह खून तो नाटक का सुखान्त होता। मैं तो चाहती थी कि सिन्योर जीयें, खूब जीयें, मेरे दिये घावों को गल-गल कर सहते हुए जीयें।

कहते-कहते रुथ का स्वर उत्तेजित हो चला था। वह कहती गयी—पर जाने क्या-क्या होने को था। मेरे चाहने न चाहने की बात क्या थी। मेरे नाटक से भी बड़ा नाटक वह जो खेल रहा था: वह जिसे हम ने गिरजा और मन्दिर में बैठा रखा है और हम सभी जिस के नाटक के पात्र हैं। हम खुद अपना अन्त नहीं जानते, वह जानता है।

मैं ने कहा था—मगर नास्तिक भी तो हैं।

उस के क्षोभ की दिशा बदलने के लिए मैं ने बहस छेड़ने की चेष्टा की थी। मगर वह बहस के लिए तैयार नहीं थी। बोली—जो नास्तिक हैं उन की बात मैं नहीं कहती। मैं अपनी कहती हूँ, अपने जैसों की कहती हूँ। मैं जो उस में विश्वास करती हूँ: उस के इन्साफ़ में विश्वास करती हूँ, उस की निर्दयता में भी विश्वास करती हूँ।

दो क्षण बाद आप ही कोमल हो कर बोली—जानते हो, मेरी आस्था जाने कितनी बार टूट-टूट कर अटकी रही है। अजीब खेल है। उन दिनों जब मैं एमैरिक और सिन्योर परेरा नाम के दो मोहरों को एक-दूसरे से दाह दिलवाने की चालें चल रही थी, रोज़ से अचानक ही मुलाक़ात हुई। वह मेरे घर ही आ धमकी थी। खूब प्रसन्न और मस्त। बदन दोहरा हो रहा था और शराब की उस सीमा को वह छूने वाली थी जिस के ठीक बाद बेडौलपन शुरू हो जाता है। सीधी मेरे कमरे में आयी और बोली—मैं तेरी खबर न लूँ तो तू याद भी न करे। जीती हूँ या मरती हूँ, तुझे तो फ़िक्र ही नहीं।

मैं ने सविनोद कहा था—तू यों नहीं मर सकती। ये तो तेरे लिए

के मरने के दिन हैं।

ह अचरज भरी प्रसन्नता के साथ बोली—तुझ में इस तरह की ा कब से जागी ? तू तो ऐसी बातें करना जानती ही न थी।

सोहबत का असर—मैं ने कहा था।

किस की ?—उस ने चुटकी ली।

मैं कह गयी—सिन्योर परेरा की।

उस ने विश्वास किया—सच ! पर ताज्जुब है। मैं तो सोचती थी आदमी मांस हड्डी का नहीं, लकड़ी का बना है। तो वह रसिक भी है ? पर श्रीमती परेरा तो ज़िन्दा हैं, और इसी घर में।

मेरे मुंह से अनायास निकला—इन मामलों में पत्नी का होना न होना कोई सोचता है ?

वह उस बात को अनसुनी सी कर के मेरे पास सरकती हुई बोली—तुझे अपनी बात बताऊँ ? मैं आयी ही बताने के लिए थी। पर शायद बता न पाती। तेरी बात सुनी तो हिम्मत हुई। जानती है, मैं माँ होने वाली हूं ?

मैं ने अविश्वास के साथ कहा—क्या बकती है ?

कह कर मैं उसे नीचे से ऊपर तक देखने लगी थी। वह बोली—देखने से क्या जानेगी। अभी बहुत दिन हैं। अभी तो पता ही चला है।

तो शादी कब करेगी ?—मैं ने पूछा।

बोली—शादी उस से नहीं हो सकती।

क्यों ?—मैं ने कहा और पूछा—तू ने फिर ऐसी बेवक़ूफ़ी क्यों की ?

वह बोली—इस में बेवक़ूफ़ी क्या ? कोई ज़बरदस्ती की बात ही है। मेरी सहमति थी।

तो शादी में एतराज़ क्या है ?—मैं ने फिर पूछा।

बोली—अरी सिन्योर कान्सीसाँऊ ने जब मुझे गोद लिया है तो कैसे हो सकती है ?

सुन कर मैं स्तम्भित रह गयी। सिर चकरा गया। रोज की बात पर एकबारगी यक़ीन नहीं हो रहा था। फिर मुझे सब कुछ वैसा ही लगा जैसा उस दुर्दान्त रात को लगा था जब सिन्योर परेरा ने मुझे शराब पिला कर बेहोश कर डाला था। मगर रोज तो सुस्थिर और प्रसन्न थी। उसे न लज्जा थी न कोई पीड़ा। मैं फिर पूछ बैठी—मगर तू यह कर कैसे बैठी ?

बोली—अरी इस तरह की बेवकूफ़ी का भी कोई सबब होता है। बस हो जाती है। तू अपनी ही कह। तू भी इसी तरह माँ हो सकती है। पर मैं तुझे यही सलाह दूँगी कि तू अपने परेरा से दूर रह। नहीं तो आत्महत्या कर के मरेगी।

वह सच कह रही थी। मेरे साथ यह स्थिति आ जाती तो मैं कभी की मर जाती। मैं क्षण भर को स्तब्ध बैठी रही। फिर उस से पूछा—अब तू क्या सोचती है ?

बोली—मैं तुझे अपना बच्चा दे जाऊँ तो पालेगी ?

पागल हुई है ?—मैं ने हठात् कहा।

तो 'निन्यु इन्फ़ैण्टिल' की ही शरण लेनी होगी।—उस ने कहा—मैं 'निन्यु इन्फ़ैण्टिल' की हिमायती रही हूँ। पर अब जब यह नौबत आ ही गयी तो मोह होने लगा है। वहाँ कुछ भी हो, सुख नहीं। अनाथालय ही जो ठहरा !

अपने शैशव के दिन मुझे याद आ गये। क्षण भर को मोह जागा और मन किया कि कह दूँ—हाँ अपना बच्चा वहाँ कभी न छोड़ना। तू कहती है तो मैं ही पालूँगी, जरूर पालूँगी।

पर कह नहीं सकी। मुझे चुप देख कर वह बोली—अरी तू बेकार की फ़िकर में पड़ गयी लगता है। मत सोच। तू वैसा कर भी कैसे सकती है। खुद कुँआरी है और दूसरे पर आश्रित। मैं लिस्बन चली जाऊँगी। कार्न्सी की भी यही राय है। कोई कुछ नहीं जानेगा। फिर जब बच्चा

ो जायेगा तो उसे ले आयेंगे । कह ही सकते हैं उसे गोद ।
रोज़ यह सब बड़े इतमीनान से कह रही थी । मैं सुन रही थी और
तर चकरा रहा था ।

रोज़ की बात ने मुझे काफ़ी दिनों तक अस्थिर रखा । मैं उसे बड़-भागी समझती थी । पर कान्सीसाँऊ के रूप में उसे सिन्योर परेरा ही तो मिले । एक व्यापारी, दूसरा सरकारी अधिकारी । दोनों में अन्तर क्या ? मुझ में और रोज में ही अन्तर क्या ? फिर धीरे-धीरे मुझे एहसास हुआ कि और किसी में चाहे अन्तर हो या न हो मुझ में और रोज में अवश्य है । वह प्रसन्न है, सुखी है और उसी जीवन का विस्तार खोज रही है । मैं पीड़ित और दुखी हूँ और इस जीवन की हिंसा को उद्यत । अचानक ही मुझे उस की बात याद आ जाया करती और मैं तड़प उठती । उस दिन चलते-चलते वह कह गयी थी—लगता है तू अभी भी उतनी ही बेवक़ूफ़ है जितनी पहले थी । मैं ने तो सोचा था रूप जवानी की तीक्ष्णता पा कर चतुराई भी सीख जाता है ।

मैं ने होंठों को काट लिया था । वह प्रसन्न भाव से चली गयी थी और मैं अवसाद से भरी बैठी रही थी । तभी एमैरिक आ गया था । मुझ से मिलने के लिए वह अब एकान्त खोजा करता था । अपनी बातों में अ
उसे कुछ ऐसा महसूस होने लगा था जिस के लिए एकान्त चाहिए । म
से बातें करते आल्दा-इमैल्दा में से भी कोई देख ले तो उस के चेहरे
रंग बदलने लगता था । जैसे उस के अपने मन के भीतर कोई
योजना चल रही थी जो गूढ़ होने पर भी उसे लगता कि दूसरों पर
हो जायेगी अगर उन्होंने हमें एकान्त में साथ पा लिया । उस
उदास और परेशान तो बैठी थी ही, उस से भी वह सब नहीं छुपा
ने पूछा—इतनी गुमसुम और उदास क्यों बैठी हो ?

मैं ने उस बेचैनी में टेढ़ा जवाब दिया—दीवालों से बात करने की कोशिश कर रही थी। पर ये हैं कि गूंगी बनी हैं।

उस ने कहा था—मैं नहीं मानता कि दीवालें इतनी गुस्ताख हो सकती हैं।

उस ने जिस ढंग से यह बात कही थी उस पर मैं मुसकरा पड़ी थी। पर बोली कुछ नहीं। मेरी मुसकान से उत्साहित हो कर उस ने कहा था—चलो बाहर लॉन पर चलें।

मैं ने दो क्षण उस के चेहरे की ओर देखा। फिर किंचित् विनोद से बोली—सच ही तुम्हारी बहादुरी तेजी से बढ़ रही है। आज लॉन पर चलने का प्रस्ताव, कल बीच पर बुलाओगे और परसों सब के सो जाने पर मेरी खिड़की से घुसने की चेष्टा करोगे।

कहते-कहते मुझे स्वयं लगा जैसे मैं ने यह सब मात्र मज़ाक में नहीं कहा। कुछ वैसा करने का सुझाव मैं उसे दे रही थी। मैं चाहती थी कि कुछ हो, तेजी से हो और मेरी योजना जल्दी से फलवती हो। मेरी बात एमेरिक ने जैसे साँस रोक कर सुनी थी। वह मेरी आँखों की राह मेरे मन में कहीं गहरे घुसने की चेष्टा कर रहा था। बोला—अगर मैं सच वैसा करूँ तो तुम्हारा क्या होगा?

मैं ने कहा था—तुम क्या सोचते हो?

बोला—यही कि तुम रात को अपनी खिड़की में सिटकनियाँ नहीं लगाओगी।

उस ने अत्यन्त गम्भीरता से कहा था। मुझे हँसी आ गयी थी। बोली—तुम एकदम से तीसरी मंज़िल पर पहुँच गये। अभी तो मैं ने तुम्हारा लॉन का प्रस्ताव भी स्वीकार नहीं किया।

उस ने लापरवाही के स्वर में गम्भीरता से कहा था—ये सब मन के संकोच के स्तर हैं। मैं उन से ऊपर उठ चुका हूँ।

मैं ने उत्तेजित करने के लिए कहा—खिड़की खुली भी रखूँ तो इस

की क्या गारण्टी कि तुम ही आओगे, कोई और नह

तुम्हारा मतलब ?—उस के स्वर में उद्दण्डता थी ।

मैं ने रहस्यात्मक ढंग से कह दिया—मैं नहीं जानती । फिर भी ा हो सकता है ।

मैं हत्या कर दूँगा—एमैरिक का स्वर अपने पिता के स्वर जैसा खुरदुरा हो चला था । उस भाव में वह अपने पिता के जैसा ही कुरूप भी लगने लगा था । मैं मन ही मन सोच रही थी कि वे दोनों पिता-पुत्र मेरे लोभ में पड़ कर एक दूसरे के प्रति प्रच्छन्न शत्रु भाव रखते हुए भी परस्पर कितने क़रीब हैं । मेरी निर्ममता बढ़ चली थी । बोली—यह सब तो रिहर्सल है, अपनी शक्ति अभी से न खो दो । आओ, चलो लॉन पर चलें ।

उस के होंठ काँपे । ज़िद्दी बालक की तरह बोला—नहीं, अब कहीं जाने का मन नहीं । यहीं बैठो ।

मैं ने कहा—अँधेरा हो चला है । तो बत्ती ही जला लूँ ।

उस ने अजीब कटुता से कहा था—क्यों ? मुझ से डरती हो कि अँधेरे से ?

उस समय मुझे प्रतीत हुआ कि वह अपनी उम्र से कहीं आगे निक गया है और इस निकलने में उस ने जीवन की निषिद्ध राहें भी कर ली हैं ।

मैं ने कहा था—इन दो का तो डर नहीं ।

तो खुद से डरती हो ?—उस के स्वर में उपहास की पुट थी ।

मैं सामान्यतया ऐसे प्रश्न से उत्तेजित हो उठती । पर वह त अपनी नियोजना थी जिस के अनुसार एमैरिक बढ़ रहा था । मैं से कह दिया—डर अपना भी नहीं, उस का है जो उपस्थित नहीं

मैं तो परवा नहीं करता ।—उस ने उद्धत भाव से कह दि

मैं ने बत्ती जलाते हुए कहा था ।—मुझे अभी परवा है ।

तुम कायर हो।—उस ने अपमानजनक स्वर में कहा था।

मैं ने किंचित् तिक्तता के साथ उत्तर दिया था—तुम अनर्गलता को वीरता मानते हो।

तभी पोर्च में आ कर गाड़ी रुकी थी। उस की आवाज से एमेरिक चौंका था। सिन्योरा परेरा के ऊँची एडी के जूतों की आवाज आयी थी। जैसे वे पति का इन्तजार कर रही थीं और उन के आने का संकेत पा कर खुद ही पोर्च की तरफ़ चल दी थीं। इमेल्दा के कमरे से उस की तेज आवाज उठी थी—आल्दा। जैसे उसे सावधान करने को पुकारा हो। एमेरिक उठता हुआ कह रहा था—अच्छा फिर आऊँगा।

एक बार तो मन हुआ कि उस की वीरता की प्रशस्ति में कुछ कहूँ, पर टाल गयी। फिर भी मैं मुसकरा पड़ी थी और उस ने देख भी लिया था।

मैं अपनी उस जिन्दगी में तेजी से कोई परिवर्तन लाना चाहती थी। पर राह नहीं सूझ रही थी। एक दिन एक मामूली सी बात ने एक रन्ध्र खोल दी और मैं उसी में से सक्रिय जीवन का द्वार खोजने लगी। श्रीमती परेरा को मेरी हर बात प्यारी लगती थी। उस दिन मैं कोई गीत गुनगुना रही थी। उन्होंने सुना और बोलीं—तुम्हारी आवाज कितनी मीठी है।

उन की प्रशंसा को मैं बहुत महत्त्व नहीं देती थी। मुसकरा भर दी थी। पर उन्होंने प्रवर्धित उत्साह से फिर-फिर कहा और बोलीं—तुम्हें तो 'एमिसोरा डि गोआ' में होना चाहिए।

उन का मतलब 'रेडियो गोआ' से था। सुनने के साथ ही मेरी कोई सुप्त इच्छा जाग गयी थी। मैं ने बच्ची की तरह हठ करते हुए कहा था—तो मेरी मम्मी मुझे वहाँ भेज दो।

वे बोलीं—तेरे डैडी मानेंगे ?

मैं ने कहा—सिन्योर को मैं मना लूँगी। तुम्हें तो कोई एतराज नहीं ममी ?

ममी ने स्वीकृति दे दी थी। सिन्योर परेरा लंच के लिए आने वाले

ी ने सब सोच लिया था कि तभी उन से अनुमति लूँगी ।
ं उन की वग़ल में जा वैठी । थोड़ी देर इधर-उधर की वातें कीं,
प्रस्ताव कर दिया—मैं एमिसोरा में अनाउन्समेण्ट करना चाहती हूँ ।
मूड अच्छा था । वोले—यह कौन वड़ी वात है । डायरेक्टर सान्ता
लोमेना फ़रटाडो वर्नार्डु तवोरा अपना मित्र है । कहते ही काम हो
येगा ।

मैं ने प्रसन्नता से भर कर उन की वाँह को कस कर पकड़ लिया था और सोत्साह वोल उठी थी—तुम सचमुच ही अच्छे हो डैडी !

'डैडी' अचानक ही मुँह से निकल गया था । न तो उस प्रयोग से मुझे प्रसन्नता हुई थी और न सिन्योर को ही । अपेक्षाकृत शुष्कता के साथ वह वोले थे—अच्छा-अच्छा, मगर मेरी कमीज़ तो ख़राव मत करो ।

तभी ममी वोल उठी थीं—मैं कहती हूँ मेरी रुथ की आवाज़ सुनने के लिए वे लोग भी रेडियो ख़रीद लेंगे जिन्होंने उस की ज़रूरत कभी महसूस नहीं की होगी ।

ममी की इस वात पर इमैल्दा ने भँवें सिकोड़ी थीं, मगर वे कहती ही गयी थीं—मैं तो आज ही इस से कह रही थी कि तुझे तो एमिसोरा में होना चाहिए ।

सिन्योर सुन कर कुछ चिड़चिड़ाहट के साथ वोले—तो यह तुम्हारी प्रेरणा है !

ममी ने अपरास्त भाव से कहा था—क्यों; कुछ वुराई है इस में ?

सिन्योर परेरा अव प्रत्यक्ष झुँझलाहट के साथ वोले थे—नहीं
ख़रावी तव होती जव मैं सलाह देता । मुझे ताज्जुव है तुम ने इस के
में यह सनक पैदा क्यों की ?

मैं घवड़ायी कि कहीं हुआ-हवाया सव चौपट न हो जाये ।
निराशा का अभिनय करती हुई वोल उठी—आप नहीं चाहते तो
जाऊँगी ।

इस पर वे कोमल पड़े। मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुए बोले—पगली! यह तुम ने कैसे मान लिया कि जिस बात में तुम्हें सुख मिले वह मुझे बुरी लगेगी। तुम एमिसोरा जरूर जाओगी; मैं कहता हूँ कल से ही जाओगी।

यह कह कर वे कुछ अधिक सन्तोष के साथ भोजन करने लगे थे। पर एमैरिक की भंगिमा से स्पष्ट था कि वह इस प्रकरण से उत्साहित नहीं था।

मैं एमिसोरा में एनाउन्सर हो गयी। पोर्चुगीज भाषा की एनाउन्सर। वेतन दो सौ रुपये मासिक, जब कि कोंकणी एनाउन्सर पचहत्तर और सौ ही पाते थे। पर तब इतना वेतन भी मामूली नहीं समझा जाता था। भारतीय करेन्सी गोआ क्षेत्र में निर्बाध चलती थी। पोर्चुगीज करेन्सी भी थी। मगर बाजार भारतीय करेन्सी से ही भरा था। पोर्चुगीज करेन्सी भी रुपये-आने-पैसे की ही थी। यह तो बहुत बाद की बात है जब रुपये की जगह 'एसकुदस' ने ली, गोआ की मुक्ति से कुछ ही वर्ष पहले की बात।

जब मुझे अपने वेतन का दो सौ रुपया मिला तो मेरी समझ में न आया कि क्या करूँ। उतना रुपया मैं ने कभी एक साथ नहीं पाया था। फिर ऐसा रुपया जिस पर मेरा सम्पूर्ण अधिकार हो। मैं सोचने लगी : इन्फैण्टिल को दान कर दूँ। पेड्रु सन्तान का सूट बनवा दूँ। ममी-आल्दा-इमेल्दा के लिए उपहार ले जाऊँ। एमैरिक को रिस्टवॉच भेंट करूँ। सिन्योर परेरा तक के लिए मैं ने सोचा कि फ़ैल्ट हैट खरीद लूँ।

मगर वह सब कल्पना ही रही। वेतन ले कर जब मैं 'विवेन्दा परेरा' पहुँची तो सब से पहले पेड्रु से मुलाक़ात हुई। मैं ने तुम्हें बताया नहीं सिन्योर परेरा के बंगले का नाम 'विवेन्दा परेरा' था : 'परेरा निवास'। बंगला किराये का था और उस का मूल नाम 'रिबेरा' था। मगर फ़ज़ेन्दा के डायरेक्टर को वह पसन्द न था इसी से नाम बदल दिया गया था। और

उस बंगले का स्वामी भी उसे 'विवेन्दा परेरा' ही कहता
पेड्रू बाज़ार जा रहा था। गेट पर मुलाक़ात हो गयी। मैं ने खुशी-
कहा—तुम क्या पसन्द करोगे पेड्रू सन्तान?
पेड्रू कुछ ऊँचा सुनने लगा था। बोला—मुझ से कुछ कहा?
मैं ने पूछा तुम क्या उपहार पसन्द करोगे?—मैं ज़रा ऊँचे स्वर में
ली।—यह मेरा पहला वेतन है। तुम्हारे लिए मैं कुछ खरीदन
ाहती हूँ।

वह प्रसन्न भाव से बोला—ओः बेवेज़िट, तो अब मैं नौकरी छोड़
सकता हूँ। मुझे यक़ीन हो गया मेरी बेवेज़िट दो रोटी दे दिया करेगी।
यह रुपया अपने पास ही रखो। ज़रूरत पड़ने पर माँग लूँगा।

मैं ने कहा—मगर मैं तो परेशान हूँ कि कैसे इसे खर्च कर डालूँ?

वह हँसा—यह भी खूब कहा तुम ने बेवेज़िट। जिस रुपये के लिए
लोग गुलामी करते हैं, चोरी करते हैं, सौ झूठ और फ़रेब करते हैं, उसी
के लिए तुम यह राय रखती हो! तुम तो किसी सन्त का अवतार हो।
सेण्ट फ़ान्सिस तुम्हारी उम्र लम्बी करे! पर मेरी मानो बेवेज़िट तो इस
रुपये को चुपचाप कहीं रख दो। जमा करती जाओ। रुपये में बहुत सी
बुराई हैं, पर एक अच्छाई भी है। मुसीबत में जब कोई साथ न दे तो
यही काम आता है।

इतना कह कर मेरे किसी जवाब का इन्तज़ार किये बिना वह चल
गया था। मैं उस की बात से अनमनी सी जाने क्या-क्या सोच गयी
सीधे अपने कमरे में आयी। सौ-सौ के दो नोट थे, मोड़ कर गद्दे के नी
रख दिये। जैसे उस रुपये से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं या कि मेरे
रुपया है ही नहीं।

घर में किसी ने मेरे वेतन के बारे में ज़िक्र तक नहीं किया।
भी भूल गयी। दफ़्तर आने-जाने के लिए सरकारी गाड़ी मिलत
वहाँ चाय या कॉफ़ी से सत्कार के लिए कोई न कोई तैयार रह

वैसे भी चाय-कॉफ़ी बिलकुल मामूली बात थी। एमिसोरा के डायरेक्टर के कमरे में रेफ़िजरेटर रहता था जिस के खाने बियर, शैम्पेन, रम और ह्विस्की से भरे रहते थे। दफ़्तर में शराब पीना कोई अजीब बात नहीं मानी जाती थी। डायरेक्टर किसी से खुश होता तो शराब ही ऑफ़र करता। लड़कियों पर वह खास तौर से मेहरबान रहता। शुरू-शुरू में मैं इसे उस की सज्जनता समझती रही। धीरे-धीरे मैं जान गयी कि वह वास्तव में कैसा व्यक्ति है और किस से क्या चाहता है। सिन्योर परेरा की वजह से उस ने मेरे प्रति लोभ की दृष्टि नहीं रखी। मगर मेरे साथ की दूसरी महिला एनाउन्सरों के साथ क्या होता था यह मुझ से छिपा न रहा। पर अजीब बात यह कि उन बातों को अस्वाभाविक या बुरा कोई नहीं मानता था। यह स्वीकार कर लिया गया था कि एमिसोरा का एक अलग वातावरण है, उस के डायरेक्टर के विशेष अधिकार हैं और वहां काम करने वाले 'ग्लैमर वर्ल्ड' के प्राणी।

मेरे मन में उस प्रकार के जीवन के प्रति गहरी वितृष्णा थी। वहां विरोधाभास की भरमार थी। गेट पर बिजली की घड़ी लगी रहती। हर आने वाले को उस की सहायता से अपने आने और जाने का समय अंकित करना पड़ता। पांच मिनट का विलम्ब पांच रुपये के जुर्माने से ले कर पांच दिन के वेतन की कटौती तक कुछ भी हो सकता था। कोई नियम नहीं, केवल डायरेक्टर एमिसोरा की इच्छा। और वही जब प्रसन्न होता तो कम काम और अधिक वेतन का लाभ। किसी लड़की को नौकरी पाने के लिए सिर्फ़ सुन्दर होने और सहयोग के लिए प्रस्तुत रहने की जरूरत थी। यही कारण था कि वहां नित्य नयी नियुक्तियां होतीं और पुरानी नियुक्तियां खत्म होतीं। हर किसी का भविष्य अनिश्चित। फिर भी एक भी विरोधी स्वर नहीं। हर काम तानाशाही ढंग से। कोई भी नयी चीज खरीद ली जाती। बाद में ठीक न लगने पर बेकार चीजों में जगह पा लेती। इमारत में इतने हेर-फेर होते कि कौन हिस्सा कब तोड़ दिया

और किस दरवाज़े पर दीवाल खिच जायेगी या द
ज़ा खुल पड़ेगा, कुछ नहीं कहा जा सकता था। तुम इस सब पर
ास नहीं करोगे, मगर एमिसोरा के डायरेक्टर की यही कलाप्रवीणता
कि उसे मनमानी में कमाल हासिल था। सालाज़ार के सम्बन्धियों में
था कोई। गवर्नर-जनरल भी उस के किसी काम पर आपत्ति नहीं
रता था।

यह अचरज की ही बात थी कि मुझ पर वह उस रूप में कृपालु नहीं हुआ जिस रूप में लड़कियों के प्रति कृपालु होने की उस की आदत थी। एक बार शराब के नशे में उस ने इतना अवश्य कहा था—रूथ, तुम जितनी ख़ूबसूरत और आकर्षक हो, इतनी कोई और लड़की होती तो जानती हो उस का वेतन कितना होता? वह अजीब दहशत के साथ मुझे देख रहा था। फिर उठ कर पास आया और मेरे ऊपर झुकते हुए बोला था—पाँच सौ रुपये! जानती हो क्यों? क्योंकि तुम मेरे दोस्त की लड़की हो।

उस के मुँह की भाप मेरे नासापुटों में घुस कर मुझे बेचैन कर गयी थी। पर सिन्योर परेरा के कारण वह मेरे प्रति दुर्भावना से काम नहीं लेगा, यह मैं समझ गयी और उसी क्षण वहाँ से चली आयी।

फिर भी उस दिन एक बार मेरे मन में आया कि नौकरी छोड़ दूँ
मगर इस नौकरी में मुझे रस मिलने लगा था, अपनी सार्थकता औ
उपयोगिता महसूस होने लगी थी। आत्म-निर्भरता की भावना भी
पकड़ रही थीं। मैं नौकरी नहीं छोड़ सकी। ज़िन्दगी 'विवेन्दा परेरा
कहीं व्यापक है इस का असली बोध मुझे नौकरी करने पर ही हुआ थ

एमिसोरा में प्रोग्राम प्लैनिंग नाम की कोई चीज़ न थी। जैसे
के लोगों को शराब प्रिय थी, वैसे ही एमिसोरा के प्रोग्राम। सस्ते
गाने, उत्तेजक पश्चिमी संगीत और वैसे ही शेष कार्यक्रम। इस के
पोर्चुगीज़ प्रचार। उस प्रचार से उन्हें कोई शिकायत न थी।

अपने जीवन की वास्तविकता के रूप में स्वीकार कर चुके थे।

रिक्वेस्ट प्रोग्राम दिन में कई-कई होते। हर एनाउन्सर रिक्वेस्ट प्रोग्राम पाने के चक्कर में रहता। उन प्रोग्रामों को वे पर्सनैलिटी प्रोग्राम मानते। पर उस पर्सनैलिटी का आधार होता सस्ती किस्म के गानों की फ़र्माइशें और एमिसोरा के परीलोक के प्राणियों से सम्बन्ध स्थापित करने की अपरिपक्व बुद्धि श्रोताओं की कामना। एनाउन्सर लड़की हुई तो रिक्वेस्ट की भरमार पुरुषों की होती, लड़का हुआ तो इस के विपरीत। सर्वत्र सेक्स और शराब फिर भी मैं वहाँ से अलग नहीं होना चाहती थी तो सिर्फ़ थोड़ी सी स्वतन्त्रता के लिए।

मेरे अपने श्रोताओं में से अनेक मुझे भी प्रेमपत्र लिखा करते। फ़रमाइशों और प्रशंसा के बहाने अपनी अनुरक्ति का प्रदर्शन। दो श्रोता कुछ अधिक नियमित थे। उन में से एक लिखता—कोई भी गीत बजा दो। मैं तो सिर्फ़ अपना नाम सुनना चाहता हूँ तुम्हारे होंठो से।

इसी तरह वह कुछ न कुछ तब तक बराबर लिखता रहता जब तक मैं उस के नाम से अपनी पसन्द का कोई गीत नही बजा देती। तब वह उस गीत के शब्दों में अपने प्रति मेरी भावना खोजता! प्रेमगीत तो वह होता ही इसलिए वह कृतार्थ भाव से फिर नया न नया लिखता।

दूसरे प्रार्थी का अन्दाज़ अलग ही था। वह अजीब-अजीब प्रश्न करता। एक बार उस ने पूछा—प्रेम की तुम्हारी परिभाषा क्या है? मैं तुम से ऐसा गीत सुनना चाहता हूँ जो उस परिभाषा का आभास दे सके।

एक बार उस ने लिखा था—मेरी उम्र कुछ ज्यादा है मगर मेरी प्रेमिका अभी युवती ही है। क्या मेरे नाम से तुम कोई ऐसा रिकार्ड नही सुनवा सकती जो मेरी भावनाओं का प्रतिनिधित्व कर के उस के अहंकार को गला दे?

उस के इन पत्रों से मुझे वैसी ही चिढ़ थी जैसी कि सिन्योर परेरा की स्मृतियों से। मैं ने उस की किसी फ़र्माइश पर कभी ध्यान नही

या। एक वार उस ने लिखा—तुम विचित्र लड़की हो। मेरे नाम स
ही कुछ चिढ़ है ? नाम वदल कर फ़र्माइश करता हूं तो सुना देती हो,
मगर वैसे नहीं।

हर हफ़्ते सैकड़ों अच्छे-वुरे पत्र आते। शुरू-शुरू में मैं घर आ कर एमैरिक से उन की चर्चा करती। इस युवती प्रेमिका वाले वृद्ध श्रोता के प्रति वह कभी उदार नहीं हुआ। उत्तेजित हो कर कहता—वह आदमी नहीं शैतान है, गोली से मार देने के क़ाविल। उस की कोई प्रेमिका-वेमिका नहीं, वह तुम्हारे ही चक्कर में है।

धीरे-धीरे मैं उन पत्रों की आदी हो गयी थी। एमैरिक से अव उन की चर्चा भी नहीं करती। फिर भी वह पूछता—तुम ने उस श्रोता के नाम से फिर कोई रिकार्ड नहीं वजाया ?

एक वार तो मैं कह उठी थी—उस के वारे में तो तुम ऐसे परेशान रहते हो जैसे तुम ही उन पत्रों के लेखक हो।

वह तुनक कर कहता—मैं क्यों अपना नाम छिपाऊँगा ? मैं क्य तुम से सीधे नहीं कह सकता ? फिर मेरा लेख तो तुम पहचानती हो।

मगर वह पत्र तो टाइप कर के भेजता है।—मैं ने कहा।

उस ने फिर पूछा—क्या अकेला वही टाइप कर के भेजता है ?

नहीं—मैं ने वताया—ढेरों पत्र टाइप किये होते हैं। उस वृद्ध का पत्र भी टाइप किया होता है।

वह अचानक ही भाव वदल कर वोला—मुझे वह पत्र दिखाओ मैं ने कहा—क्यों उस से तुम क्या पता कर लोगे ?

शायद कुछ कर ही सकूँ।—उस ने विश्वास भरे आग्रह के साथ

मैं ने उस तरफ़ कोई ध्यान नहीं दिया।

सिन्योर परेरा प्रायः पूछा करते—तुम्हारा मन लग रहा है व

मैं 'हाँ' कह देती। एक वार उन्होंने पूछा—कुछ फ़र्माइशी तो आते होंगे ?

अनगिनत।—मैं ने बता दिया था।

वे फिर कहते गये—यह भी खूब लोकप्रियता है। पर मैं सोचता हूँ वे खत सिर्फ रिकार्डों के लिए नही होते। जब मैं जवान था तो, तुम्हें अजीब लगेगा सुन कर, मैं एक एनाउन्सर को रोज खत लिखा करता था। मुझे उस की आवाज़ बेहद पसन्द थी। मगर खुद वह बदसूरत थी। इस का पता मुझे काफी बाद में चला।

कह कर वे हँसे और उस हँसी में ही अटकते से बोले—मगर तुम्हारे किसी श्रोता को वैसी शिकायत न होगी। मुझे लगता है तुम उन खतों को गौर से नही पढ़तीं। पढ़ो तो देखोगी कि कुछ पत्र औरों से एकदम अलग अन्दाज के हैं। अब देखना।

मैं जैसे हँस दी थी—उन में गौर से देखने को कुछ नही होता, सब बेवकूफी भरे पत्र होते है। और आप तो पत्र तब लिखा करते थे जब छोटे थे। मेरे पास तो ऐसे पत्र भी आते हैं जिन में न अपना बुढ़ापा छिपाया गया होता है न अपना प्यार।

सिन्योर परेरा गम्भीर होते बोले—यह तो हिम्मत की बात हुई। प्रेमी अपने बुढ़ापे की तो पब्लिसिटी नही करेगा। मैं इस के लिए उस की तारीफ करूँगा।

मैं ने अनायास ही कह दिया था—आप की राय एमैरिक से ठीक उल्टी है।

एमैरिक?—उन्होंने भौं सिकोड़ कर कहा—वह बेवकूफ लड़का भी क्या किसी बारे में राय रखने के क़ाबिल है?

मैं ने कहा—आप उस के प्रति बेहद कठोर हैं। वह उतना बेवकूफ नही जितना आप समझते है।

हो सकता है तुम ही सही हो।—उन्होंने अनिच्छापूर्वक कोमल पड़ते हुए कहा—हाँ तो उस की राय क्या है?

मैं ने बताया—वह तो उस आदमी को गोली मार देने के काबिल

ता है।

सुनते ही सिन्योर भड़क उठे थे—उस की यह मजाल ? मुझे गोली
ने की हिम्मत ?

मैं ने अचरज के साथ कहा—आप को गोली ?

वे चौंके। फिर सम्हल कर बोले—हाँ जब उस की यह राय है तो
र बूढ़े इन्सान के प्रति वह ऐसा ही सोचता होगा।

एक क्षण रुक कर वे उग्र स्वर में कहते गये—इस का तो मतलब
यह हुआ कि आदमी बूढ़ा होने पर आत्महत्या कर ले। उसे सुख के साथ
जीने का हक़ नहीं ! वह अपने को कहीं हार नहीं सकता।

मुझे लगा कि उन पत्रों के लेखक सिन्योर परेरा खुद ही हैं। मेरे
मन की सुप्त हिंसा फिर भड़की और मैं ने कह दिया—आप की जो भी
राय हो, मुझे तो एमैरिक की राय ही सही लगती है। गोली कोई चाहे
न मार पाये, मगर मन कुछ वैसा ही करता है।

ओह !—बस यही एक ध्वनि उत्तर में उन के मुख से निकली थी।
तब मैं नहीं सोच पायी थी कि उस एक शब्द में विक्षेप की व्यंजना थी
या पीड़ा की। मुखाकृति उन की कठोर हो चली थी पर देह शिथिल
और शिथिल क़दमों से ही वे वहाँ से हट गये थे।

कभी-कभी मुझे लगता कि दूसरों को उलझाने के लिए जो जाल
अपने चारों तरफ़ बुन रही हूँ वह मेरे अपने लिए ही दुस्तर होने
है। मैं भी जैसे खुद को स्वाहा कर रही थी।

सिन्योरा परेरा मेरे लिए सचमुच की माँ हो उठी थीं। एक
वे मुझे चौंकाते हुए बोलीं—आज तुम्हारा जन्मदिन है बेटी।
मेरा माथा चूमा और डबडबायी आँखों से कहा—मेरी बेटी को
मुबारक हो ! और यह दिन उस की ज़िन्दगी में इतनी बार

गिनती समाप्त न हो।

मैं ने हँस कर कहा था—मगर ममी तब तो मैं इतनी बूढ़ी हो जाऊँगी कि सब लोग मुझ से परेशान हो उठेंगे।

—नहीं, नहीं। तू सदा इतनी ही बडी, इतनी ही सुन्दर और इतनी ही प्यारी रहेगी।—उन के स्वर में आस्था का अभाव था जैसे भागते हुए क्षणों को बाँधने की कोशिश का छल वे खुद अच्छी तरह समझ रही थीं। अपनी ही अनास्था से वे दीन सी हो उठी थीं। मैं ने उन्हें प्रसन्नता देने के लिए कह दिया था—तुम ठीक कहती हो ममी! मैं कभी बूढी नहीं होऊँगी। मैं सदा तुम्हारे लिए इतनी बडी और ऐसी ही बनी रहूँगी।

पर जैसे उन्हें लगा इस तरह के चिन्तन में भी कोई अमंगल भरा संकल्प है। सहमती सी आवाज़ में बोलीं—नहीं मेरी बेटी, तू खूब बूढ़ी हो! उतनी बूढ़ी जितनी कि चाँद में बैठ कर चर्ख़ा कातने वाली बुढ़िया।

इतना कह कर उन्होंने मुझे छाती से कस कर लगा लिया था और बाँहों में भींचती गयी, तब तक भींचती गयी जब तक कि बाँहों की शक्ति ने साथ दिया। फिर जब मुझे छाती से अलग किया तो आँखों के झरने बह चले थे।

यह क्या ममी—मैं ने बाल भाव से कहा—आज मेरा जन्मदिन है और तुम रो रही हो!

कुछ नहीं रुच, कुछ नहीं बेटी—उन्होंने हाथ से ही आँसुओं को पोंछने का प्रयत्न किया।

पर तभी मेरे मन में एक कुतूहल जगा। मैं ने पूछा—मगर ममी तुम्हें कैसे मालूम कि आज मेरा जन्मदिन है?

मैं नहीं जानूँगी तो कौन जानेगा।—उन्होंने कहा और फिर अन्तिम शब्द के साथ स्तब्ध ही हो गयीं।

मैं ने घबरा कर पूछा—यह क्या हो रहा है तुम्हें ममी?

बोलीं—कुछ नहीं। मेरे मन का पागलपन है। मेरे एक और बच्ची

। मेरी सब से पहली बच्ची । वह होती तो तुम्हारी ह
ती । उसी का आज जन्मदिन है । तुम्हें देख कर जाने क्यों उस की
आ जाती है । सभी का जन्मदिन मनाया जाता है, तेरा ही नहीं ।
जानता ही नहीं । मैं ने सोचा मैं तुझे ही अपनी पहली बच्ची मान
तेरा जन्मदिन क्यों न मनाऊँ ?

मुझे यह बात मनगढ़न्त कहानी सी लग रही थी । विश्वास हो ही
हीं रहा था । पर ममी को सुस्थिर करने के अभिप्राय से कह दिया—
ो इस में रोने की क्या बात है ममी । तुम मेरा जन्मदिन ज़रूर मनाओ ।

पर जैसे बिन कहे ही मेरे मन का सन्देह उन तक पहुँच गया था ।
इसी से उन्होंने कहा था—तू आल्दा को देख कर सोचती होगी कि वह
तेरी उम्र की कैसे हो सकती है ? ऐसी बात नहीं बेटी । आल्दा तुझ से
छोटी है । एमेरिक भी तुझ से छोटा है । भला यह मैं नहीं जानूँगी ।
आल्दा की उठान अच्छी है । वह सुख से जो पली है ।

मैं विश्वास-अविश्वास की सन्धि पर झूल रही थी । मेरा यों सोच में
पड़ जाना ममी को व्यग्र करता, इसी से मैं ने प्रसन्नता ओढ़ते हुए कह
दिया था—तो ममी कैसे मनाओगी मेरा जन्मदिन ?

बोलीं—वैसे ही जैसे आल्दा-इमेल्दा का मनाती आयी हूँ ।

मैं ने कहा था—मगर सिन्योर से पूछा आप ने ?

बावली हुई है—दृढ़ता से बोलीं—कोई बात तो ऐसी हो जो मैं उन
से बिना पूछे कर सकूँ । मैं किसी से नहीं पूछूँगी !

मैं ने कहा—पर ममी रात में मुझे इमिसोरा ज़रूर जाना है । मे
रिक्वेस्ट प्रोग्राम है आज !

बोलीं—ज़रूर जाना बेटी । आज के दिन और भी जाने कितनों
जन्मदिन होगा । जाने कौन-कौन जन्मदिन की फ़र्माइश करेगा । इसी
मैं रोकूँगी नहीं । ज़रूर जाना बच्ची । जन्मदिन को किसी भी फ़
को न रोकना, सब को सुनाना ।

यह कहते हुए वे चली गयी थी। मैं अपने ही कमरे में थी और उस समय रिक्तता से कुछ ऐसी भरी थी कि चुपचाप पलंग पर जा कर लेट गयी। तभी दरवाज़े के पास से प्रसन्नता भरा स्वर सुनाई पड़ा—बेबेज़िट जन्मदिन मुबारक !

मैं ने करवट ली, पर लेटी ही रही। मुसकरा कर कहा—धन्यवाद पेड्र सन्तान ! बहुत-बहुत धन्यवाद।

वह अत्यन्त आनन्द भाव से बोला—बेबेज़िट, तुम्हारे जन्मदिन के लिए मैं इतनी बड़ी केक लाऊँगा जो तुम से उठे भी नहीं और उस के चारों तरफ़ इतनी बड़ी-बड़ी मोमबत्तियाँ जला दूँगा कि उन की लौ छत को छुए।

मैं उस की प्रसन्नता से उत्साहित हो कर उठ बैठी थी और हँस कर कहा था—पर पेड्र सन्तान, मैं तब उन्हें बुझाऊँगी कैसे ?

—ओह यह तो मैं भूल ही गया था। तो मोमबत्ती गिरिजाघर जैसी होंगी, मगर केक छोटी नहीं होगी। समझी बेबेज़िट।

मुझे ढेरों प्रसन्नता दे कर पेड्र चला गया। जाते-जाते कह गया—आज मुझे तुम से भी बात करने की फ़ुर्सत नहीं। मुझे बहुत कुछ करना है। तुम क्या जानो आज क्या-क्या करना है।

दोपहर के खाने से पहले एमेरिक आया था। बड़ा गम्भीर सा। बोला—जन्मदिन मुबारक !

मैं ने कहा—धन्यवाद। पर तुम्हारे चेहरे से लगता है कि तुम्हें खुशी नहीं।

बोला—सच ही खुशी नहीं। तुम्हें अपना जन्मदिन ही मनाना था तो तब मनातीं जब मैं कमाने लगता।

वाह यह भी खूब कही।—मैं ने हँसते हुए कहा—जन्मदिन भी ऐसी चीज़ है कि यों टाल दिया जाये।

उस ने उसी तरह गम्भीर रहते कहा—पर जब इतने बरस टला तो

अच्छा वेबेजिट ।—उस ने अपनी अनिच्छा और असमंजस को छिपाने की कोशिश नहीं की थी।

दोपहर के खाने पर जब हम सब मिले तो एमेरिक प्रसन्न था। सिन्योर परेरा खुद खुश थे पर एमेरिक की प्रसन्नता उन्हें अच्छी नहीं लग रही थी, यह मुख से छिप नहीं पा रहा था। मुझ से अधिक एमेरिक को सुनाने के अभिप्राय से जैसे उन्होंने कहा था—रुथ, बोलो, उपहार में क्या लोगी?

ममी ने कहा—यह भी कोई पूछने की बात है। उपहार देना है तो अपने मन से दीजिए। उस से पूछेंगे तो वह कोई सस्ती सी चीज़ बता देगी।

बोले—उस के बताने से क्या होता है। सस्ती बतायेगी तो मैं वह नहीं दूँगा। अच्छा तुम क्या दे रही हो?

ममी ने कहा था—मेरे पास देने को क्या है। बस आशीर्वाद ही दूँगी।

बड़ी कंजूस हो!—सिन्योर परेरा ने प्रसन्न भाव से कहा था—पर तुम से आज के दिन ऐसी कंजूसी की उम्मीद न थी।

सिन्योर परेरा की इन सब बातों के बावजूद एमेरिक प्रसन्न ही बना रहा। रुपया उसे मिल गया था। उस की प्रसन्नता का वही रहस्य था। वह सिन्योर परेरा को अपनी भेंट से चमत्कृत करेगा!

ममी ने पूछा—रुथ, तू अपने किसी दोस्त को नहीं बुलायेगी?

नहीं ममी।—मैं ने कहा—मुझे भीड़ पसन्द नहीं। फिर हर कोई कुछ न कुछ लाने को मजबूर हो जाता है।

पर ऐसा तो होता ही है।—उन्हें मेरा तर्क ज़्यादा जँचा नहीं था।

मैं ने कहा था—आप की जैसी मर्ज़ी ममी। पर मैं चाहती हूँ कि आप का यह उत्सव शान्ति से पूरा हो जाये। ऐसे भी तो लोग हैं जो जानते हैं कि मैं 'इन्क्रैण्टिल' से आयी हूँ। बर्थ-डे की खबर सुन कर वे लोग हँसेंगे ही।

ममी सुनते ही उदास हो गयी थी। जैसे उन का कोई ...

ा था।

खाने के बाद मैं अपने कमरे में पहुँची तो मेज पर एक खत रखा
। घर के पते पर मुझे खत लिखने वाला भला कौन हो सकता है ?
ने देखा। पते के अक्षर नहीं पहचान पा रही थी। टिकट पोर्चुगीज
। पुर्तगाल से कौन लिखने वाला हो सकता है। रोज भी अभी यहीं
ी। कल ही तो मिली थी एमिसोरा के रास्ते में। अब वह ढीली फ़ॉ
हनने लगी थी। कहती थी—अब मैं जल्दी ही लिस्बन चली जाऊंगी

उसे उस तरह की फ़ॉक पहने देख कर मुझे बड़ा धक्का सा लगा था। मगर वह निश्चिन्त और प्रसन्न थी। कहती थी—स्त्री हो कर यह सब भोगना पड़ता ही है। मैं चाहती हूँ कि लड़की हो और वह भी तेरे जैसी खूबसूरत।

इधर उस के मन से स्पर्द्धा का भाव मिट चुका था। नहीं तो बचपन वाली रोज़ तो अपने बराबर किसी को समझती ही न थी। मैं ने फिर भी चुटकी ली थी—मैं तुझे कब से खूबसूरत लगने लगी ?

जवाब में वह हँस भर दी थी। कार चलने को हुई तो उस ने फिर कहा—पर मैं कह देती हूँ मेरी लड़की ज़रूर खूबसूरत होगी। तेरे ही जैसी। तेरे बाल बड़े प्यारे हैं रुथ !

इतना कह कर उस ने वायवी चुम्बन लिया था और अपनी उस ढीली फ़ॉक में भी न छिपने वाली पृथुलता का घिनौना सा असर छोड़ हुई चली गयी थी।

खैर यह तो मैं यों ही बता गयी। मैं बात कर रही थी पत्र की। मैं
लिफ़ाफ़ा खोला। सब से पहले नाम पढ़ा—'जोज़े।' वही जोज़े जि
हिन्दुस्तान में समझती थी ! वह लिस्बन से लिख रहा था। मैं एक
में पत्र पढ़ गयी। अप्रत्याशित समाचार। मेरी समझ में नहीं थ
था कि प्रसन्न होऊँ या नहीं। वह पादरी नहीं बन पाया था। क
भारत में रह कर भी, पादरी होने की शिक्षा ले कर भी, वह पाद

बन पाया था। उस ने लिखा था—तुम से दूर आ कर तुम्हारे समीप होने की इच्छा अजीब ढंग से बढ़ पाने लगी थी। पर मैं जिस रास्ते पर चल रहा था वह मुझे तुम से दूर ही ले जा रहा था। तुम्हारे सिन्योर परेरा की अवज्ञा को मैं भूला नहीं था। उस का जवाब मैं पादरी बन कर नहीं दे सकता था। जब मैं ने फ़ादर ब्राउन को अपना निश्चय बताया तो उन्हें यक़ीन नहीं हुआ। बोले—ऐसा तुम कैसे सोच सकते हो? तुम सिर्फ़ पादरी बनने के लिए पैदा हुए हो। तुम्हें ईसा के सन्देश को उन तक पहुँचाना है जो अँधेरे में हैं, गुमराह हैं। पर जानती हो रुथ, मैं किसी तरह भी वहाँ रहने को तैयार न था। मैं ने सच ही कल्पना नहीं की थी कि तुम मेरे भीतर इतने गहरे समा चुकी हो। उस का आभास यौवन ने दिलाया। मुझे 'निन्यु इन्फ़ैन्टिल' की बातें याद आती हैं। तुम मेरे पादरी-पन पर हँसती थी। तब मैं सचमुच ही वैसा कुछ था। मगर उस दिन जो तुम्हारे बंगले से लौटा तो एक अजीब एहसास के साथ। मुझे लगा तुम्हारा सम्पर्क ही मुझे सुख दे सकता है और अब जब कि सिन्योर परेरा बाधक हो उठे हैं तो मैं उस अवरोध को सह नहीं पाऊँगा। तुम से तब भी मैं कितना मिलता था! कभी-कभी ही, बस। और उस मिलने में भी हम ने कभी एक-दूसरे के प्रति कोई लौकिक आकर्षण नहीं अनुभव किया था। हम एक-दूसरे से मिल कर सुख पाते थे, बस इतना ही। उस सुख में कोई आतुरता या विकलता न थी। फिर यह सब क्यों हुआ? रुथ, यह इसलिए हुआ कि मैं तुम से चीर कर अलग कर दिया गया था। इस हठात् पैदा कर दिये गये फ़ासले ने मेरे मन की उस अन्तरंग इच्छा का आभास मुझे दिया जो स्वयं मुझ से अज्ञात थी।

ख़ैर! यह सब सफ़ाई अभी इस पत्र में ही नहीं दे डालूँगा। फ़ादर ब्राउन बेहद दुखी थे, फिर भी लिस्बन आने में उन्होंने मेरी मदद की। यह भी कहा—कभी लौटना चाहो तो ज़रूर लौट आना। संकोच मत करना। सेक्यूलर फ़ादर बन कर तो काम कर ही सकते हो।

ने उन का धन्यवाद किया। विदा ली। उन से विछुड़

र्द हुआ। यह मेरे व्यक्तित्व का नया पहलू था। मैं आसक्तियों का बन रहा था। पर तुम्हारे प्रति आसक्ति और प्रकार की थी। और ी का फल था कि मैं लिस्बन भाग रहा था।

पर लिस्वन ही क्यों? तुम पूछोगी। कोई बहुत अच्छा उत्तर मेरे ास नहीं। इतना ही कहूँगा कि मैं जानता था मेरे पास जीवन में आगे बढ़ने के लिए और कुछ नहीं सिवा देह के और उस में छिपे संकल्प के। ईश्वर ने देह मुझे अच्छा दिया था। सोचा उसी का उपयोग करूँ। पुर्तगाल में सालाजार अपनी सैन्य शक्ति बढ़ा रहा था। मुझे लगा मेरे इस लम्बे-तडंगे देह का उपयोग उस की सेना में खूब हो सकता है। बस मैं यहाँ आ गया। दो वर्ष हुए आये। सेना में अब एक छोटा-मोटा अफ़सर हूँ। और तुम्हें जो यह पत्र लिख रहा हूँ तो इतना सूचित करने के लिए कि मैं जल्दी ही गोआ आने वाला हूँ। मेरी पोस्टिंग एक अफ़्रीकी दस्ते के साथ वहाँ हो रही है। अब जब मैं तुम्हारे घर पर सैनिक अफ़सर की वरदी में तुम से मिलने आऊँगा तो फ़र्जेन्दा का डायरेक्टर भी अदब से बात करेगा।

मैं तुम्हारा कल्पना-चित्र बनाता हूँ तो तुम मुझे नन्हीं सी लड़की से ज़्यादा नहीं दीखतीं: वह लड़की जिसे मैं सिन्योर परेरा के पोर्च अपमानित छोड़ कर आया था। पर अब तो तुम एकदम बदल गयी होगी काफ़ी बड़ी दीखती होगी। पता नहीं उतनी बड़ी हो कर तुम कैसी गयी होगी। ऐसा तो नहीं कि मैं गोआ आऊँ और तुम इतनी बदली मिलो, तन से ही नहीं मन से भी, कि मैं पुराने परिचय को याद कि की भी हिम्मत न कर सकूँ? जो भी हो, यह तय है कि तुम राजवंश की महिलाओं जैसी रूपवती और गरिमामयी हो उठी

अच्छा बस करूँ अब। आशा है तुम अभी वहीं हो जहाँ यह रहा है। समस्त प्यार के साथ·तुम्हारा—जोज़े।'

खड़े-खड़े मैं पत्र को पढ़ गयी थी। पढ़ कर थक सी चली

रखी कुरसी पर बैठ गयी। जोज़े मेरा बाल सखा! मेरा प्रिय! पर उस के इस रूपान्तर से मैं स्तम्भित हो उठी थी। उस को जब भी याद आती तो वह मुझे लम्बे सफ़ेद चोगे में बड़े-बड़े डगों से धरती को नापता सा चलता हुआ दीखता था। पर अब सफ़ेद चोग़े की जगह फ़ौजी वरदी। लम्बे डग अब भी रखता होगा। पर फ़ौजी बूटों की आवाज़ कर्कश लगती होगी।

मैं तय नहीं कर पा रही थी कि इस सूचना को किस रूप में लूँ। फिर भी उस के आगमन की मुझे प्रतीक्षा थी। पत्र वाला हाथ पत्रसहित मेरे वक्ष पर आ टिका था। और मैं उस की कुछ ऐसी निकटता अनुभव कर रही थी जिस निकटता में साँसें फूल कर उलझ उठती हैं।

शाम हुई। मम्मी की योजनानुसार ड्राइंगरूम सज गया था। झण्डियाँ, गुब्बारे और रंग-बिरंगे रिबन इन्द्रधनुषी शोभा बिखेर रहे थे। ड्राइंगरूम के बीचोबीच मेज़ पर एक बहुत सुन्दर बड़ी सी केक। सचमुच ही बहुत सुन्दर और बड़ी। मैं ने वैसी केक कभी नहीं देखी थी। चारों ओर लगी मोमबत्तियाँ। मेरे रूप और शरीर को आज तक सँवार चुके वर्षों की प्रतिनिधि बत्तियाँ। हर किसी में उत्साह। सिन्योर परेरा अपनी रूक्षता और कठोरता को त्यागे हुए। चुप्पा एमैरिक बड़बोला। ईर्ष्यालु आल्दा स्नेही। ज़िद्दी इमैल्दा विनयातुर। पता ही नहीं चले कि प्रसन्नता का अतिरेक है या किसी अवसाद की निविड़ता का त्रास। और मैं स्वयं, जिस के निमित्त यह समस्त आयोजन था, मन से अस्थिर। मुझे वह सब कुछ यथार्थ से कहीं दूर लग रहा था जैसे किसी नाटक का कोई अंक हो। निर्देशक की योजना के अनुसार जन्मदिवस का वातावरण उपस्थित करना है। उसी से सम्बन्धित कुछ भूमिकाएँ। बस वही सब हो रहा है।

फिर वही सब। मोमबत्तियों का बुझाया जाना! 'जन्मदिवस मुबारक' की संगीतमयी आवृत्तियाँ। कुछ खिलखिलाहटें और तालियाँ। और

मी का प्रार्थनामय स्वर उठा जिस में हर्ष की समस्त ...
। वे दीवाल पर टँगे मेरी और शिशु यीशु के चित्र के समक्ष
क प्रार्थना कर रही थीं—
ओरे स्वर्गो तुम ऊपर से सोमरूपी अमृत की वर्षा करो। और ये
न्याय की वर्षा करें। धरती के विवर से हम सब के त्राता का
र्भाव हो। ईश्वर की महिमा से स्वर्ग भास्वर हों। और नक्षत्रलोक
स्रष्टा की रचना से उद्दीप्त हों।

"हे प्रभो, हम शरणागत हैं। अपनी शक्तियों को उद्बुद्ध कर अवतरित
लो और अपनी महान् शक्ति के द्वारा हमें मुक्ति दो। हे प्रभो, जिस
मुक्ति में हमारे पाप बाधक हैं उस मुक्ति को अपनी करुणा से त्वरित
करो। हे प्रभो, तुम्हीं जीवन और उस के शास्ता हो।

"सौम्य मेरी तू धन्य है। ईश्वर का तुझ पर अनुग्रह है। तू स्त्रियों में
सब से सौभाग्यशालिनी है और महान् सौभाग्यशाली है तेरे गर्भ से जन्म
लेने वाला।"

ममी के स्वर में अजीब आस्था और करुणा थी। जैसे यीशु के जन्म
की प्रतीक्षा हो। उस के अवतार के लिए श्रद्धालु जनों की प्रार्थनाएँ स्वर्ग-
मुखी हो उठी हों और फिर उन की प्रार्थनाओं को सार्थकता देता हुआ
विश्व का त्राता, जीवन का शास्ता, ईश्वर का पुत्र मरियम की कोख से
आ प्रकट हुआ हो।

प्रार्थना समाप्त होने पर भी कुछ देर तक वातावरण गम्भीर बना
रहा। ममी ने आगे बढ़ कर मेरा माथा चूमा था। उन के बाद सिन्थो
परेरा अस्थिर से मेरी ओर बढ़े थे। उन्होंने पहले मुझे बाँहों पर
पकड़ा। फिर अपनी ओर खींचा। मेरी देह लकड़ी सी हो चली अ
उन्होंने उस के विरोध से ऊपर उठ कर मेरे कपोल पर चुम्बन कि
मुझे लगा ममी की प्रार्थनाएँ तिरोहित हो गयीं। मेरा वह गाल
लगा। दीवाल पर टँगा मरियम और यीशु का चित्र ओझल हो गया

अ

बड़ी केक, जलती हुई मोमबत्तियाँ, वे गुब्बारे, वे रंग-बिरंगे रिबन सब गायब। उस कमरे में कोई नहीं। ममी, आल्दा, इमैल्दा, एमैरिक, पेद्रू, कोई नहीं। केवल मैं और एक खूँखार सी छाया जिस के पंजे मेरे वस्त्रों के भीतर मेरी त्वचा के अन्दर मेरी देह के कोमल मांस में आसक्त हैं। और मैं चीख ही उठती अगर समूचा मनोबल बचा कर स्वयं को मैं ने सम्हाल न लिया होता। तभी मैं ने देखा सिन्योर परेरा मेज की तरफ बढ़े थे। वहाँ से उन्होंने एक पैकेट उठाया और मेरी ओर बढ़ाते हुए बोले—आशा है यह भेंट तुम्हें पसन्द आयेगी।

मैं ने काँपते हुए हाथों से पैकेट थामा और उन से भी अधिक काँपते हुए होंठों से धन्यवाद कहा। मैं पैकेट रखने जा रही थी कि वह बोले—खोल कर देखोगी नहीं?

हाँ देखो बेटी—ममी ने भी कहा।

मैं ने देखा। विश्वास नहीं हुआ उस उपहार पर। क्रूसीफिक्स—क्रॉस-विद्ध यीशु की प्रतिमा। अत्यन्त भव्य। मैं सिन्योर के प्रति क्षण भर को श्रद्धालु हो उठी और मैं ने फिर कहा—ओः यह तो अद्भुत है! सच अद्भुत!

सब तालियाँ बजाने लगे थे। मैं ने यीशु के पाँवों को चूमा और सम्हाल कर उस उपहार को एक ओर को रख दिया।

आल्दा का उपहार एक चित्र था। यीशु का भव्य चित्र। उस के नीचे लिखा था—मेरी सब से प्यारी रुथ, अपनी प्रार्थनाओं में मुझे सदा याद रखना।

इमैल्दा ने एक की-रिंग दिया जिस की जंजीर के एक सिरे पर रिंग और दूसरे सिरे पर क्रॉस था। देते हुए बोली—अब तुम्हें इस की आवश्यकता है। तुम्हारी तालियाँ सुरक्षित रहनी चाहिएँ।

कह कर वह हँस पड़ी थी। मैं भी हँस पड़ी थी। मुझे सचमुच ही अच्छा लगा था।

एमैरिक अभी चुपचाप खड़ा था। जैसे उस के पास उपहार में देने कुछ न था। तभी सिन्योर परेरा ममी से बोले थे—तुम कुछ नहीं ? क्या सच ही अपनी कंजूसी साबित करने जा रही हो ?

वे बोलीं—इसे देने को मेरे पास कुछ नहीं। इसे देने लायक़ मैं हूँ नहीं।

भींगे कण्ठ से इतना उन्होंने कहा और फिर अपने गले में पड़ी सोने की ज़ंजीर उतारी जिस के पैण्डेण्ट में शोभाशालिनी मेरी का चित्र बना था। वह ज़ंजीर बिना कुछ कहे उन्होंने मेरे गले में डाल दी। ज़ंजीर पहना कर वे पीछे हट ही रही थीं कि मैं उन से लिपट गयी। वह उन के विवाह का अलंकरण था।

फिर तालियाँ बज उठीं। सिन्योर परेरा ने प्रसन्न भाव से कहा—चलो तुम कंजूस साबित नहीं हुईं। अच्छा अब उसे छोड़ो और हमें देखने दो कि उसे यह पैण्डेण्ट कैसा लगता है।

ममी हटीं और उन के हटते ही मैं सकुचा गयी। सिन्योर परेरा बोले—अद्भुत लगता है, जैसे यह ज़ंजीर इसी गले और यह पैण्डेण्ट इसी वक्ष के लिए बना था। रुथ, तुम्हें सच ही यह खूब फबता है।

मैं कुछ भी नहीं कह पायी। अभिभूत सी खड़ी थी। सिर झुकाये, निस्पन्द।

तभी एमैरिक बोला—अब मेरा भी एक छोटा सा उपहार ले लो...

उस की आवाज़ सुनते ही मैं ने सिर उठाया। सिन्योर परेरा क... दृष्टि से उसे देख रहे थे। पर वह उपेक्षाभाव से एक मिनट के लिए व... से ग़ायब हुआ और फिर लौटा तो अपने उपहार के सहित। उपहार ... वृत था। एक ट्रे में रखा ताजमहल। संगमरमर का बहुत ही सुन्दर ... महल। एमैरिक की कल्पना पर मुझे अचरज हुआ। वह उस भेंट ... पा सका। मैं समझ नहीं सकी। सिन्योर परेरा और मेरे अलाव... कह उठे—बहुत ही प्यारा। सच ही प्यारा।

मैं ने मुग्ध भाव से देखा और फिर खुद आगे बढ़ कर उस उपहार को ले लिया। उपहार लेते हुए मैं ने भी कहा—कितना सुन्दर है यह।

एमैरिक अपने चुनाव की प्रशंसा से अभिभूत हो उठा था। उस की त्वचा में संवेदनों की लहरें दौड़ चली थीं जिन से उस की मुखाकृति सौम्य और कमनीय हो उठी थी।

सिन्योर परेरा ने कहा तो कुछ नहीं पर उन की आकृति से स्पष्ट था कि वे प्रसन्न नहीं थे। उस के बाद हम सब डाइनिंगरूम में मेज़ पर आये। ममी की तरलता बनी थी। सिन्योर परेरा गम्भीर थे। शेष सब प्रसन्न।

जब पेड्रू चाय की केटली पर से टिकोज़ी उतारने को आगे बढ़ा तो मैं ने उस से कहा—तुम मुझे कुछ नहीं दोगे पेड्रू सन्तान ?

वह बालक की तरह सकुचाया। और फिर बोला—बड़े लोगों के बीच कुछ देने की मेरी हिम्मत नहीं हुई।

ममी ने कहा—कैसी बात करते हो पेड्रू। तुम तो घर के आदमी हो। तुम्हें ऐसा सोचना चाहिए ?

पेड्रू की झिझक दूर हुई। उस ने अपनी जेब में हाथ डाला। हाथ के साथ ही एक छोटी सी डिबिया बाहर आयी। उस ने बन्द डिबिया मेरे सामने बिना कुछ कहे रख दी।

मैं ने उत्सुकता से डिबिया को खोला। एक बड़ा सा नीलम था, बेश-क़ीमती। ममी ने देखा। अचरज के साथ बोलीं—यह क्या पेड्रू!

कुछ नहीं मेम साहब!—उस ने कहा। एक बार एक अरब को मैं ने डूबने से बचाया था। उस ने उस एहसान के बदले मुझे यह नीलम दिया था। कहा था—"मेरे पास के पत्थरों में सब से क़ीमती है। और मैं मानता हूँ क़िस्मत वाला भी है। इसी की बदौलत मेरी जान बची। पर अब तुम्हीं इस के हक़दार हो।" यह तब की बात है जब मैं जहाज़ पर सेलर था।

ममी ने फिर कहा—पर इतनी क़ीमती भेंट रुय कैसे ले सकती है ?

वह बोला—मैं इस की क़ीमत नहीं जानता। मेरे लिए इस का कोई उपयोग भी नहीं। इस दुनिया में मेरा कोई और अपना है भी नहीं। वेवेजिट को मैं ने अपनी बेटी की तरह प्यार किया है। पता नहीं इस के ब्याह तक जिन्दा रहूँ या नहीं। सोचा था तभी अँगूठी में जड़ कर इसे भेंट दूँगा। पर आज मुझे लगा ऐसी प्रसन्नता का दिन जल्दी मेरी जिन्दगी में नहीं आयेगा। बस इसी से सिन्योरा, इसी से मैं ने यह हिम्मत की। अब मुझे दी हुई चीज़ को वापस लेने को न कहें।

मैं अभिभूत सी सुन रही थी। नीलम मैं ने अनजाने ही मुट्ठी में बन्द कर लिया था जो अब पसीने से भींग चला था।

मेरा यह जन्मदिवस जाने कितनी घटनाओं को जन्म देने जा रहा था। सुबह से ही मेरी भावनाएँ आन्दोलित थीं। उन की खिलवाड़ में मैं थक चली थी। और जब उस थकान को ढोती हुई मैं एमिसोरा पहुँची तो एक नया पत्र, एक नयी घटना, मेरी प्रतीक्षा में थी। पत्र एक महिला श्रोता का था। इन्क्वायरी काउण्टर पर कोई पहुँचा गया था। मैं ने पढ़ा, लिखा था—

"आज मेरी बच्ची का जन्म-दिन है। पर उतनी अभागिन बच्ची और उतनी ही अभागिन माँ मुश्किल से कोई दूसरी होगी। हम दोनों साथ-साथ रहते हैं। फिर भी मेरी बच्ची नहीं जानती कि मैं उस की माँ हूँ। पर इस के लिए अपराधी भी मैं ही हूँ। क्यों हूँ, यह लिख नहीं पाऊँगी। फिर भी यह सब भला तुम्हें मैं ने क्यों लिखा ? इसलिए कि मैं चाहती हूँ उस के इस शुभ जन्म-दिवस पर तुम कोई अच्छा सा गीत सुनवा दो। मैं नहीं जानती उसे कौन सा गीत पसन्द होगा। अपनी पसन्द बताते मैं डरती हूँ। इसलिए सब तुम पर ही छोड़ूँगी। तुम ही

अपनी पसन्द का गीत सुनवा देना। मेरी बच्ची उस गीत को अवश्य पसन्द करेगी, मेरा विश्वास है।"

पत्र का अक्षर-अक्षर आज भी मेरी आँखों में नाच रहा है। काँपते हाथ से लिखा हो जैसे। हाथ का वह कम्पन शरीर की किसी असमर्थता के कारण था या मन की अव्यवस्था के कारण, कहना कठिन था। पर जाने क्यों उस पत्र को पढ़ते वक्त श्रीमती परेरा की आवाज़ मेरे कानों में गूँज रही थी। लग रहा था मानो पत्र उन्हीं का लिखा हुआ हो। पर फिर मन में सन्देह भी होता कि मुझे ही ऐसा पत्र लिखने की क्या ज़रूरत हो सकती थी?

मैं अस्थिर सी स्टूडियो में गयी। मेरे प्रोग्राम में अभी आध घण्टा शेष था। एनाउन्समेण्ट की स्क्रिप्ट तैयार थी। रिकॉर्ड सब चुन लिये गये थे। कण्ट्रोल-रूम के ऑपरेटर को मैं ने उन का क्रम समझा दिया था और अपनी स्क्रिप्ट ले कर खाली स्टूडियों में जा बैठी थी। पर मन मेरा खाली न था। उस पत्र की बातें मुझे छेड़ती रहीं। यदि वह पत्र ममी का है तो ऐसा क्या कारण हो सकता है कि वे मुझ से उस रहस्य को छिपायें? सोच-सोच कर मैं उलझती गयी और इसी उलझन में प्रोग्राम का समय हो गया। *मैं ने अपने श्रोताओं के अभिनन्दन के साथ एनाउन्स-*मेण्ट प्रारम्भ किया। पहले एनाउन्समेण्ट की समाप्ति पर रिकॉर्ड बज उठा।

पर उस पत्र की प्रार्थना की पूर्ति के लिए मैं ने कुछ भी तो नहीं किया था। कार्यक्रम पूर्व-निश्चित योजना के अनुसार चल रहा था; मैं कुछ कर ही नहीं पा रही थी। और इसी तरह अन्तिम रिकॉर्ड भी आ गया। रिकॉर्ड कण्ट्रोल-रूम से बज रहा था और मैं उस पत्र को एनाउन्स-मेण्ट शीट पर रखे बैठी थी। उस पत्र के अक्षर रेखाएँ बन कर एक माँ की ममतामयी मूर्ति उभार रहे थे जिस की प्रार्थना मैं अब तक पूरी नहीं कर पा रही थी। अचानक मेरे मन में बिजली सी कौंधी। तभी ऑपरेटर ने क्लोज़िंग एनाउन्समेण्ट के लिए स्टूडियो दिया और मैं ने लिखित

उन्समेण्ट के स्थान पर एक मौखिक एनाउन्समेण्ट कर दिया जिस के
उस दिन के सभी रिकॉर्ड मैं ने उस माँ के अनुरोध को समर्पित
दिये थे जिस ने अपने पत्र में न तो अपना नाम दिया था और न
पनी बेटी का ही।

प्रोग्राम समाप्त कर मैं उदास सी घर लौटी। जितनी उदासी उतनी
ही थकान और मुझे आश्चर्य हुआ जब ममी बाहरी बरामदे में प्रतीक्षा
करती मिलीं। तब रात के पौने ग्यारह बज रहे थे।

मैं ने कहा—यह क्या ममी, तुम यहाँ किस की राह देख रही हो?
सोयी क्यों नहीं?

उन्होंने स्निग्ध स्वर में कहा—किस की राह देखूँगी बेटी आज के
दिन? रेडियो पर तुम्हारी आवाज़ सुनती रही। कितनी मीठी है मेरी
बेटी की आवाज़। मुझे तुम्हारा आज का प्रोग्राम बेहद अच्छा लगा? सभी
गाने एक से एक अच्छे थे। मुझे यही लगता रहा जैसे वे सब तेरे ही
जन्म-दिवस की खुशी में बज रहे हों।

मैं ने बीच में ही कहा—चलो अब अन्दर चलो ममी।

वे मेरे साथ चल दी थीं। चलते-चलते बोलीं—मैं साँस रोक क
तुम्हारे एनाउन्समेण्ट सुनती रही बेटी। और जब प्रोग्राम का अन्ति
रिकॉर्ड बजा तो मैं उदास हो गयी। जैसे प्रोग्राम छोटा पड़ गया हो
उस में कुछ अधूरा रह गया हो। मगर फिर जब तुम कुछ बोली तो
मुझे बेहद प्यारा लगा। जैसे तुम ने मेरी प्रार्थना पर उन सब गीतो
खुद को समर्पित कर दिया हो।

मैं कमरे में आ चुकी थी। ममी साथ थीं। बत्ती जलते ही म
तरल मूर्ति मुझे उद्वेलित करने लगी। मैं ने पर्स से वह पत्र निका
उन्हें देती हुई बोली—ममी, इस पत्र को देखो तो। अजीब पत्र
की ही वजह से मुझे अपने अन्तिम एनाउन्समेण्ट को बदलना पड

उन्होंने जिस उत्सुकता से पत्र लिया और जिस रुचि से प

मुझे यही लगा कि पत्र उन का नहीं हो सकता। उन के चेहरे पर ऐसी कोई तो प्रतिक्रिया नहीं उभड़ी जो मेरे सन्देह की पुष्टि करती। मेरी उलझन इस से कुछ कम ही हुई। पत्र मुझे वापस देते हुए उन्होंने कहा था—दुखियारी है कोई बेचारी। अच्छा किया बेटी तू ने जो उस की प्रार्थना नहीं टाली। तुझे आशीर्वाद देती होगी।

वे चली गयी तो मैं ने कपड़े बदले। छत वाली बत्ती बुझायी। टेबुल-लैम्प जलाया। उस के शेड को कुछ ऐसे झुकाया कि रोशनी आँखों पर न पड़े और पलंग पर आ लेटी। जोज़े का पत्र सिरहाने ही रखा था। वह दूसरा पत्र टेबुल-लैम्प के पास रखा था। मैं ने दोनों को फिर पढ़ा। पर जैसे पढ़ना अब भी शेष रह गया। अनजाने ही मेरी उँगलियाँ कभी उन्हें खोलतीं और कभी आप ही तह देतीं। मेरी कुछ समझ में नहीं आ रहा था। जोज़े का पत्र एक अजीब सी अकुलाहट दे रहा था तो वह दूसरा असमंजस में डाले था।

तभी एमेरिक की आवाज़ सुनाई पड़ी—सो गयी रय ?

मैं ने लेटे-लेटे ही कहा—नहीं, आ जाओ। मैं लेटी ही रही। वह एक कुरसी खींच कर पास बैठ गया। बोला कुछ नहीं। मैं ने ही पूछा—तुम कैसे जागते रहे अभी तक ?

बोला—कोई नयी बात नहीं। आजकल मैं ठीक से सो नहीं पाता। मैं बाहर लॉन में घूम रहा था। मन किया सोने जाने से पहले तुम से एक बार मिल लूँ।

मैं ने कहा—अच्छा तो अब जाओ, सोओ।

वह बैठा ही रहा। बोला—मेरा उपहार तुम्हें पसन्द आया ?

मैं ने कहा—बहुत सुन्दर है। मैं ने तो तभी बता दिया था।

वह फिर बोला—पर तुम ने यह नहीं पूछा कि मेरे पास पैसे कहाँ से आये ?

मैं ने कहा था—यह सब पूछना क्या उचित होता ?

कुछ रुक कर वह आप ही सब कहने को हुआ तो मैं ने टालने के
पूछा—सिन्योर ने फिर कुछ कहा तो नहीं ?

नहीं ?—वह बोला—पर मुझे आशंका थी कि वे चुप नहीं रहेंगे।

मैं उस समय बात करने के मूड में न थी। करने को कोई बात थी नहीं। फिर भी एमैरिक बैठा रहा। व्यर्थ और असम्बद्ध सी बातें करता रहा। बीच-बीच में मौन छा जाता।

इसी तरह कुछ समय बिता कर उठते हुए वह बोला—अच्छा तो चलूँ।

पर खड़ा वह फिर भी रहा। मैं ने देख कर भी कुछ नहीं कहा। अचानक वह मेरे ऊपर झुका। मेरे बालों की लट अपने हाथ में ली और होंठों से लगा कर बिना कुछ कहे तेज़ी से चला गया।

उस के जाते ही मैं ने अपनी लटों को समेट लिया था। मुझे वह सब अच्छा नहीं लगा। बेचैन सी लेटी रही। नींद कहीं थी भी तो अब और दूर जा बैठी। करवटें दुखने लगीं तो मैं उठी। पत्रों को मोड़ कर तकिये के नीचे रखा। बत्ती जलायी और उपहार की चीज़ों को उलट-पुलट कर देखने लगी। ममी का दिया लॉकेट तो मेरे गले में ही पड़ा था। दीवाल पर टँगी एक तसवीर हटा कर सिन्योर का दिया क्रूसीफ़िक्स वहाँ पर टाँग दिया। ताजमहल को कोने वाली मेज़ पर स्थापित किया। आल्दा के उपहार को उस के पास सजा दिया और इमैल्दा ने जो की रिंग दिया था उसे भी वहीं मेज़ पर ठीक से रख दिया। यह सब कर मैं और बत्ती को उसी तरह जलती छोड़ कर मैं फिर पलंग पर आ लेटी थ

मेरी नज़र कमरे में इधर से उधर दौड़ने लगी थी। छिपकली छत पर रेंगती, कभी दीवाल पर क्रॉस-विद्ध यीशु के चरणों में लिपट फिर ताजमहल की एक मीनार से दूसरी मीनार पर कूदती हुई अपने पास लौट आती। देर तक ममी के दिये हुए पेण्डेण्ट को रही। मरियम के उस प्यारे चित्र को होंठों से लगाया। क्या-क्या

लगी। पर कुछ भी तो मुझे नींद के पास न ले जा सका। मैं जैसे निर्मूल हो उठी थी। मुझे प्रसक्ति के लिए कुछ चाहिए था। मर्मी रहस्यमयी बनी थी। जोझे के नये स्वरूप को मैं आत्मसात् नहीं कर पा रही थी। एमेरिक और सिन्योर परेरा मेरी प्रतिहिंसा के साधन और लक्ष्य से अधिक कुछ न थे। मेरी भावनाओं की निराधारता और बढ़ चली।

मैं उठ कर पलंग पर ही घुटनों के बल बैठ गयी। बचपन में याद की हुई प्रार्थनाएँ दोहरायीं। पर मन वहाँ भी प्रसन्न न हुआ। एक झुँझलाहट सी घिर आयी और इच्छा हुई कि चीख उठूँ।

पेड्रू के उपहार को मैं भूल ही गयी थी। प्रार्थना करते वह याद आया। डिबिया पर्स में पड़ी थी। निकाल कर उस नीलम को देखने लगी। पर वह देखना भी एक निरर्थकता की पूजा से अधिक कुछ न था। वह कीमती रत्न उस क्षण मेरे लिए एक सुरंग पत्थर से अधिक कोई दिलचस्पी नहीं रखता था। मैं सोच रही थी—उस अरब ने इसे भाग्यशाली पत्थर बताया था। इसी के प्रताप से वह डूबने से बचा। पर पेड्रू को इस ने कौन सा सौभाग्य दिया? और अब जब कि मेरे पास है तो यह किस नये सौभाग्य की सृष्टि करेगा?

देर बाद मैं ने कमरे का दरवाजा बन्द किया। फ्रेन्चविण्डो के निचले पल्ले बन्द किये, उपरले खुले रहने दिये। फिर छत की बत्ती बुझायी और पलंग पर आ लेटी। टेबुल-लैम्प जल ही रहा था। अधोमुखी शेड से छिटका प्रकाश वृत्त में फैल रहा था और उस वृत्त-सीमा के बाहर अन्धकार और प्रकाश का झीना मिश्रण व्याप्त था। नीलम मेरे हाथ में था। उसे लिये-लिये मैं ने करवट ली। तभी सिरहाने रखी एक पुस्तक पर मेरी दृष्टि गयी। बिलकुल अपरिचित पुस्तक। मैं ने उठायी और खोल कर देखते ही स्तब्ध रह गयी। पुस्तक एकबारगी मेरे हाथ से छूट कर बगल में जा गिरी। गिरते ही एक चिट उस में से बाहर छिटक

उस पर लिखा था : "अब तुम इतनी बड़ी हो मुझे ... ऐसा भी है जिसे
बताये ज्ञान से लाभ उठाओ । जीवन में कुछ
ीकृति उसे अधूरा ही रखेगी । पादरियों से सुनी-सुनाई बातों के
पर इस पुस्तक के प्रतिपादित सत्य को कुरूप और अनैतिक मानना
को ठगना है । पर तुम इतनी समझदार अवश्य हो कि अपने को
ठगोगी नहीं ।"

मैं ने कई बार उस नोट को पढ़ा । हाथ का लिखा नोट । सिन्योर
रा का लेख । उन्हीं के पैड का काग़ज़ । मुझे इस बारे में ज़रा भी
क न था । पर स्तम्भित थी मैं उन के साहस पर । सैक्स-सम्बन्धी वह
चित्र पुस्तक मेरी बग़ल में पड़ी थी और मुझे वह उतनी ही घिनौनी
लग रही थी जितना कि सिन्योर परेरा का रक्तहीन मुख । आवेश में
मेरी मुट्ठियां भिच चली थीं । बंधी मुट्ठी में बन्द नीलम हथेली में गुबने
लगा था । पर मुट्ठी कसती ही गयी । उस शरीरी उत्तेजन के साथ ही
मन में एक विध्वंसक संकल्प दृढ़ हो रहा था । और यह न जानते हुए भी
कि कैसे, मैं ने स्पष्ट ध्वनि में स्वयं से एक बार नहीं तीन-तीन बार
कहा—मैं उस शैतान से बदला लूंगी, बदला ले कर ही रहूंगी ।

कहते-कहते रुथ के दांत कटकटाने लगे थे ।

फिर अपने को सम्हाल कर रुथ बोली थी—मैं उस पिशाच को कभी
माफ़ न कर पाऊंगी । उस ने अच्छाई में मेरी सहज आस्था को हिल
दिया था, जिस से मैं आज तक नहीं उभर पायी ।

पर यह प्रतिशोध का संकल्प भी मुझे उस घात को सहने की श
नहीं दे पाया । वह घात मेरे शरीर के साथ नहीं, आत्मा के साथ
था । मेरी अबोध अवस्था में मुझे शराब पिला कर मेरे देह के
अतिचार कर के भी वह मेरी दृष्टि में उतना बड़ा दानव नहीं बन
अ

था जितना उस दिन गन्दी किताब को मुझ तक पहुँचा कर बन चुका था।

टेबिल-लैम्प का प्रकाश जो अन्धकार से घुलता हुआ दीवाल और छत की दिशा में बढ़ कर धुँधला गया था, उस में मैं अब भी सलीब पर टँगे यीशु को देख रही थी। जैसे उस सूली पर मेरी अपनी पवित्रता, मेरी अपनी आत्मा, बाँध दी गयी थी। इस अनुभूति के साथ ही मैं आत्मकरुणा से भर कर रो उठी थी। उतनी दीन मैं पहले कभी नहीं हुई थी। पहले से अधिक समर्थ, आर्थिक दृष्टि से किसी की आश्रित नहीं; ममी की प्यारी और एमैरिक की मोहिनी : फिर भी मैं दीन थी। बेहद दीन। मेरे आँसू बाँध तोड़ चले। हिलकियाँ बँध गयीं। अधखुली फ्रेंचविण्डो से किसी ने मुझे दो-तीन बार पुकारा, फिर कोई खिड़की की राह अन्दर कूदा और पदचाप ठीक मेरे पास तक बढ़ती आयी। इस सब का आभास होने पर भी मैं अपने आँसुओं और हिचकियों को थाम नहीं पा रही थी। आखिर किसी ने मुझे कन्धों पर से पकड़ कर झिंझोड़ते हुए पुकारा—रुथ, रुथ, क्या हुआ रुथ? कुछ तो बोलो रुथ?

कुछ भी बोलने से पहले उस स्वर की दिशा में मेरी दृष्टि उठ गयी थी। एमैरिक था।

एकबारगी मुझे लगा—पचीस-तीस वर्ष पूर्व के सिन्योर परेरा।

मैं ने उस के हाथ अपने कन्धों पर से झटक दिये। पलंग पर से उठती हुई बोली—तुम ने यह हिम्मत कैसे की? निकल जाओ मेरे कमरे से।

एमैरिक ने सहमी और दबी जबान में कहा था—क्या हुआ रुथ तुम्हें। यह सब क्या बक रही हो? यों मत चिल्लाओ। सब जाग जायेंगे।

दूसरे ही क्षण सिन्योर परेरा की भ्रान्ति दूर हो गयी थी और मैं फिर रो पड़ी थी। एमैरिक ने आगे बढ़ कर मुझे अपनी बाँहों में ले लिया था। वह सहानुभूति से मेरी पीठ सहला रहा था और मैं धीरे-धीरे कोमल पड़ती हुई उस की बाँहों में शिथिल पड़ गयी थी। वह फिर मुझे सहारा दिये हुए पलंग की पाटी पर बैठ गया था। मेरा सिर अभी भी उस के

कन्धे पर टिका था। उस की अँगुलियाँ धीरे-धीरे मेरे बालों में घूम रही थीं। मेरे सिर को उस ने अपनी छाती से सटा लिया था। फिर वह बोला था—रुथ, तुम इतनी दीन क्यों हो गयीं। तुम्हारा सन्ताप मैं नहीं जानता। पर उसे मिटाने के लिए, तुम्हें खुश देखने के लिए मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ। तुम बोलो तो बात क्या है। रुथ, मैं तुम्हें समर्पित हूँ। तुम इशारा भर कर दो रुथ।

सब सुन रही थी मैं, तो भी एमैरिक के आशय को ठीक-ठीक पकड़ नहीं पा रही थी। मेरा मन गीली मिट्टी सा हो रहा था जिस की दल-दल में मेरी चेतना किसी अतल की ओर धँसती जा रही थी।

तभी दरवाज़े को किसी ने बेसब्री से थपथपाया, और फिर आवाज़ भी आयी—रुथ, रुथ।

ममी थीं। एमैरिक ने घबड़ा कर मुझे छोड़ दिया और जिस खिड़की के रास्ते आया था उसी के रास्ते भाग चला। क्षण भर पूर्व ही कैसी बड़ी-बड़ी बातें बना रहा था! वह अजीब क्षण था अनुभूति का। अपमान की वेदना, कायर के आश्वासनों का उपहास, मुक्ति के सब द्वार बन्द, पथ अज्ञात!

ममी की आवाज़ धीरज छोड़ रही थी। मैं ने किसी तरह अपनी बिखरी हुई शक्ति को बटोरा। दरवाज़े की तरफ़ बढ़ी। पहले बग़ल की दीवाल पर लगे स्विच को दबाया और फिर दरवाज़ा खोल दिया। घबड़ायी सी ममी सोने वाले कपड़ों में सामने खड़ी थीं। उन्होंने मुझ पर एक उड़ती सी नज़र डाली और फिर उसी नज़र से कमरे का अनुसन्धान किया। वे दरवाज़े के बीचोबीच खड़ी थीं। वहीं खड़े-खड़े पूछा—वह कहाँ गया?

—कौन?

—एमैरिक

उन के स्वर में हलकी सी कठोरता थी। वे आगे बढ़ीं और अपनी

बाँहें के घेरे में मुझे ले कर पलंग की तरफ चलते हुए बोली—एमरिक ही था न ? मैं ने उस की आवाज सुनी है। इधर से बाथरूम जा रही थी। अचानक उस की आवाज ने मुझे चौंका दिया : इस समय यह क्या कर रहा था यहाँ ?

फिर मेरी ओर देखते हुए बोली—तुम इतनी दीन क्यों हो रही हो बेटी ? आओ बैठो। मैं शाम को ही तुम से एक बात कहने को थी। पर तुम्हारे जन्मदिन की वजह से टाल गयी। आओ।

मुझे लिये हुए ही वे पलंग पर बैठ गयी थी और कहने लगी—इस एमरिक को जाने क्या हो गया है। इस के डैडी भी आज इस की शिकायत कर रहे थे। तुम्हारे लिए जो भेंट लाया है वह जाने कहाँ से पैसे ले कर। खैर इसे छोड़ो। मैं सोचती हूँ बेटी, तुम्हें आज वह बात बता ही दूँ जो अब तक छिपाती रही।

वे बहुत रुक-रुक कर बोल रही थी। मुझे लगा वे जो कुछ कहने जा रही हैं उसे मैं जानती हूँ। स्पष्ट बोध नहीं था। फिर भी जाने कैसी आशंका मन में जागी और अनायास मेरे मुँह से निकला—जाने दो ममी। कभी फिर सही।

ममी ने मेरा हाथ अपनी मुलायम हथेलियों में ले लिया था। बोली—मुझे कहने से रोको मत बेटी ! तुम्हें वह सब जानना चाहिए। मेरे अपने लिए वह गौरव की बात नहीं है। फिर भी तुम्हें जान लेना चाहिए, इस से पहले कि कुछ अनुचित कर बैठो।

वे रुकी। एक गहरी साँस ली। फिर बोली—एमिसोरा पहुँचने पर तुम्हें आज एक गुमनाम पत्र मिला था। वही जिस के अनुरोध पर तुम ने अन्त में वह एनाउन्समेण्ट किया था। याद आया न बेटी ? वह पत्र मैं ने ही तुम्हें लिखा था।

पत्र पाने पर मुझे ऐसा स्वयं लगा था। मैं ने ही उस समय इस कल्पना को टाल भी दिया था। अब वही बात ममी के मुँह से सुनी तो

तम्भित हो उठी । लड़खड़ाती ज़ुवान से वोल उठी थी—
ता है ममी ?

उन्होंने भीगी पर स्थिर आवाज़ में कहा—होना नहीं चाहिए था
टी पर हुआ । तू सच मान ले कि वह माँ मैं ही हूं । उस की वेटी तू ही
है और एमैरिक तेरा भाई है ।

मैं एकटक उन की ओर देखती रह गयी थी । वे क्षण भर को
अटकीं, फिर एक हलके से कम्पन के साथ धीरे-धीरे, जैसे कहीं से टूट-टूट
कर आते शब्दों में कहती गयीं—पर एमैरिक के पिता तेरे पिता नहीं ।
तव मैं कुमारी थी । उस मूर्खता की वात को नहीं दोहराऊंगी । अपने
भविष्य से डर कर मैं तुझे पैदा होने के अगले दिन ही 'निन्यु इन्फ़ैण्टिल'
की सीढ़ियों पर छोड़ आयी थी । जैसे तू चोरी का धन हो । मैं पापिन
ही नहीं, कायर भी थी । पर तू थी तो मेरी आत्मा का ही अंश । इसी
लिए मैं ने एक और क्रूरता भी की थी । चाक़ू से तेरी कोमल त्वचा में
क्रॉस का चिह्न वना दिया था । जैसे एक दिन कभी न कभी वह चिह्
मुझे खोज निकालेगा । हुआ भी वैसा ही । उस दिन समुद्र-तट पर भीगी
देह तू सामने आयी तव तेरी उम्र के साथ फैल आया जंघा पर वना व
चिह्न मुझे पुकार उठा था—ममी, ओ ममी !

ममी का गला भर आया था । मैं स्वयं रोते-रोते उन से लिप
पुकार उठी थी—ममी, ओ ममी !

रुथ की आवाज़ टूट चली थी । मुझे स्वयं ऐसा हो रहा
किसी ने मर्मस्थान को वार-वार मरोड़ दिया हो । मैं ने कहना
'वस करो रुथ । और अव रहने दो ।' मगर वोल न सका और
भीतर से वहे आते उस प्रवाह को विराम न दे सकी । सच
कोमल भावनाओं पर कैसी भारी चट्टान सी आ कर पड़ी हो

परेरा की ही दी हुई वह किताब जिस के तले जन्मदिन के वे सब उपहार जीवन्त हो कर बच्चों की तरह कराहने लगे थे।

रुथ कहती गयी—उस जन्मदिन को मैं कभी नहीं भूलूँगी। मैं ममी की बेटी हूँ यह सूचना मेरे लिए असम्भावित न थी। रह-रह कर उस का आभास मुझे मिलता था। पर वही सत्य जब सम्भावना से बाहर निकल कर निरछद्म रूप में सामने आया तो मैं हिल उठी थी। मैं दीन हो उठी थी। जिस प्रतिहिंसा की चिनगारी में मेरी द्वेष-भावना इस्पात बनती निखर रही थी, वही चिनगारी जैसे इस नये बोध की शिला तले दब कर निस्तेज हो गयी थी। मुझे जान पड़ता कि मैं अब निरुद्देश्य रह गयी।

उस रात ममी के चले जाने के बाद भी मैं सो नहीं पायी। वह किताब अब भी पलंग पर पड़ी थी। पर मुझे अब उस में कुछ भी अच्छा या बुरा नहीं लग रहा था। उस के पास ही पेड्रू का दिया वह नीलम भी पड़ा था। बिल्ली की आँख सा। उस क्षण सिन्योर परेरा भी वहाँ आ जाते तो मुझे जल-प्रवाह से छिटकी हुई एक लहर जैसा पाते: प्रवाह में जिस का व्यक्तित्व नहीं, अलग हो कर जिस का अस्तित्व नहीं। मैं एमेरिक के द्वारा उस व्यक्ति को उस के जीवन की सब से गहरी चोट पहुँचाना चाहती थी। पर ऐसा अब सोचती भी कैसे। सिन्योरा मेरी माँ हैं इस एक बोध ने मुझे सचमुच सर्वथा दीन कर दिया था।

वह रात बीत गयी। उस के बाद कितने ही दिन बीत गये। पर मेरी निरर्थकता नहीं बीती। ऊपर से निष्क्रियता और बढ़ चली। एमिसोरा जाना बन्द कर दिया। घर में भी किसी से बोलना-चालना नहीं। एमेरिक अपने उस रात के पलायन से स्वयं लजाया हुआ दूर-दूर रहता था। सिन्योर परेरा उस निकृष्ट भेंट के कारण, सहमे हुए थे। आल्दा-इमेल्दा मेरे मौन को मेरा अभिमान समझ कर खुद मान से मर उठीं। मुझे अपने प्रति कहीं दया और सहानुभूति दीखती तो केवल ममी और पेड्रू की आँखों में। पर ममी कुछ बोल न पाती और पेड्रू जो पूछता

उत्तर मैं न दे पाती ।

क्सर ममी मेरे कमरे में आ कर काफ़ी-काफ़ी देर तक वैठी रहती ।
ठीक कर जातीं । मुझे गुड़िया की तरह सजा जातीं । मैं उन की
वात पर आपत्ति नहीं करती । आपत्ति करने वाला मेरा व्यक्तित्व
मिट गया था । मैं जड़ और इच्छाहीन हो उठी थी ।

पेड्रो पूछता—वेवेजिट चुप क्यों हो ?

मैं उत्तर में झूठ वोल देती सत्य की तरह—नहीं तो ।

वह कहता—वेवेजिट, ईश्वर की दी हुई ज़िन्दगी को वेकार मत
समझो । वड़ी छोटी ज़िन्दगी मिली है इन्सान को । और करने को वेहिसाव
है । इन्सान की साँस-साँस का वहाँ हिसाव लिखा जाता है । ऐसा न हो
कि हमारी वेकार साँसें ही क़यामत के दिन हमारे खिलाफ़ गवाह वन कर
खड़ी हों । इसी से कहता हूँ वेवेजिट कि कुछ करो ।

पेड्रो वार-वार ऐसी ही वातें करता । एक दिन मैं निराशा के स्वर
में पूछ ही तो वैठी—तो तुम्हीं वताओ पेड्रो सन्तान, मैं क्या करूँ । मुझे
लगता है ईश्वर ने मुझे ग़लती से यहाँ भेज दिया है । या जो कुछ भी
मुझे करना था, कर चुकी । अव सिर्फ़ उस के पास लौट चलने का
इन्तज़ार है ।

उस ने दुलार भरे स्वर में कहा था—वेवेजिट, शायद तुम सही
कहती हो । पर एक वात है । उस के वुलावे के इन्तज़ार में खाली
वैठे कोई ? क्यों न आगे वढ़ कर उस से मिले ?

मैं ने दीन स्वर में कहा था—पेड्रो सन्तान मेरी हार यह है
छत से कूद नहीं सकती । मैं कहीं वेहद कमज़ोर भी हूँ ।

उस ने जल्दी से कहा था—तुम ने मुझे ग़लत समझा । आ
की सलाह मैं नहीं दूँगा । मेरा कहना है कि क्यों न धर्म के रास्ते
वढ़ कर खुद ही ईश्वर से जा कर मिलें । यीशु का वनाया रा
और साफ़ है । और उस रास्ते के हर क़दम पर वैठ कर

इन्तज़ार करता है, जिस से हम गुमराह न हों। मैं तो अनपढ़ मूरख इन्सान ठहरा। पादरियों वाला ज्ञान मेरे पास नहीं। फिर भी मुझे लगता है कि उस रास्ते पर बढ कर इन्सान अपनी मंज़िल तक ज़रूर पहुँच जायेगा।

पेड्रु की उस बात से मुझे एक नयी दिशा खुलती दिखाई दी। जैसे मुझे मेरा उद्देश्य मिल गया था। मैं सोच गयी—'निन्यु इन्फ्रैण्टिल' में पली हूँ। बीच की यह ज़िन्दगी ब्रेकेट में बन्द डैश सी है। इस डैश की सीमा के पार, ब्रैकेट से बाहर फिर उसी ज़िन्दगी का सूत्र शुरू हो जाता है। मैं फिर अनाथ हो कर अपने प्रभु की शरण में चली जाऊँ। ननरी जैसे मेरी यात्रा भी हो, मंज़िल भी।

बस एक नया संकल्प लिये मैं सीधी ममी के पास जा पहुँची थी।

जब मैं ने ममी को यह सूचना दी कि मैं नन बनूँगी तो वे स्तम्भित रह गयी थीं। पूछा—यह तुझे क्या सूझा बेटी? मैं ने अपने पाप की स्वीकारोक्ति इसलिए तो नहीं की थी।

मैं चुप रही। तब उन्होंने कहा था—मैं तेरी यह बात हरगिज़ नहीं मानूँगी।

—ऐसा मत कहो ममी!

—तो मुझे तू कारण बता; ऐसा क्या हुआ जो तू यहाँ नहीं रह सकती?

मैं ने कोई उत्तर नहीं दिया। उन्होंने कहा—बेटी, मुझ से रूठ कर ऐसा निश्चय मत करना। मैं तुझे पा कर फिर से खोना नहीं चाहती।

—ममी, मुझे रोको मत। मैं अशुभ हूँ: तुम्हारे लिए, इस परिवार के लिए, खुद अपने लिए। मुझे ननरी में जाने से मत रोको।

—पर मैं कैसे मान लूँ।

एक बात विजली सी मेरे मन में कौंधी । मैं ने
और अपने कमरे की तरफ़ चल दी । वे विना कुछ कहे साथ हो
। कमरे में आ कर अपनी अन्य किताबों के नीचे से मैं ने वही
निकाली । उस के साथ का सिन्योर परेरा का लिखा पुरजा ऊपर
और किताब ममी की ओर बढ़ा दी ।
ममी ने कांपते से हाथों पुस्तक ली । एक साँस में उन्होंने वह पुरजा
, फिर पुस्तक खोली । वे स्तब्ध रह गयी थीं । पुस्तक हाथ से छूट
नीचे गिरी और विना एक शब्द कहे डगमगाती सी मेरे कमरे से
ली गयीं ।

एक वार को मुझे लगा कि अब उन का चीत्कार सुनाई देगा ।
सिन्योर से क्रुद्ध स्वर में कुछ कहेंगी । फिर सिन्योर का कर्कश स्वर सुनाई
देगा । पर वैसा कुछ हुआ नहीं । बंगला जैसा शान्त था वैसा ही शान्त
रहा । ज़मीन पर पड़ी पुस्तक और पास ही फड़फड़ाते पुरजे को निर्निमेष
देखती हुई उस शान्ति से मैं सहम उठी थी । मुझे भय हुआ कि ममी
कहीं अपना ही अहित न कर बैठें । यह सोचते ही मैं उन के कमरे की
ओर भागी । वे अपने पलंग पर औंधी लेटी रो रही थीं । मैं ने उन की
पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—मुझे माफ़ कर दो ममी । वह सब मैं तुम्हें
नहीं बताना चाहती थी ।

उत्तर में बड़ी पीड़ा के साथ उन्होंने इतना ही कहा था—मेरा भाग्य
बेटी ! तुझे अब नहीं रोकूंगी । इस घर की दीवालों में इतना पाप और
अनाचार है मुझे मालूम न था । शायद मेरे पाप का प्रायश्चित्त यही
कि यह सब सिर झुकाये भोगूं ।

फिर मेरे जाने का दिन तय हो गया था । ममी स्वयं मदर सुपीरि
से मिल कर मेरे ननरी में प्रवेश के बारे में तय कर आयी थीं । सिन
परेरा को भी उन्होंने संक्षिप्त सूचना दे दी थी । उन्होंने अपने स्वभा
अनुरूप कहा था—पर यह कैसे हो सकता है ? मेरी आज्ञा के विन
अ

हो सकता है ?

मैं ओट में खड़ी सुन रही थी। ममी ने जवाब दिया था—मैं ने इस घर में अपनी कोई आज्ञा कभी नहीं चलायी। पर मेरा भी कुछ हक़ है और मेरा यही फ़ैसला है कि रुथ नगरी में जा कर रहे।

मगर क्यों ?—उन्होंने कर्कश स्वर में पूछा था।

ममी ने जलती हुई आवाज़ में कहा था—यह मत पूछो। सच्ची वजह बता दूँगी तो तुम खुद नहीं सह पाओगे। तुम्हारे लिए इतना ही जानना काफ़ी है कि रुथ अब यहाँ हरगिज़ नहीं रहेगी।

सिन्योर परेरा मौन रह गये उस से मुझे लगा वे एकदम श्रीहीन हो गये थे। कुछ देर बाद धीमी आवाज़ में उन्होंने पूछा था—यह तुम्हारा फ़ैसला है या रुथ का ?

ममी ने पूर्ववत् स्वर में कहा था—रुथ का। पर मैं उस से पूरी तरह सहमत हूँ।

ममी बाहर चली आयी थी। आल्दा-इमैल्दा ने इस बारे में कोई उत्सुकता नहीं दिखायी थी। वे मेरे पास से गुजरती तो कुछ ऐसे जैसे देखा ही नहीं। मेरी यों उपेक्षा कर के मानो वे जताना चाहती थीं कि मेरे रहने या न रहने से उन्हें कोई फ़र्क नहीं पड़ता।

पर एमैरिक परेशान था। मुझ से बातें करने के लिए वह कभी से एकान्त खोज रहा था। मौक़ा पाते ही उस ने पूछा—तुम मुझ से नाराज़ हो ?

मैं ने उपेक्षा के साथ कह दिया था—तुम से नाराज़ ? नाराज़ भला मैं क्यों होने लगी ?

उस ने कहा था—उस दिन जो रात में ममी के आ जाने पर मैं भाग गया था। मेरी समझ में नहीं आता मैं ने वैसा क्यों किया। तुम मुझे कायर समझती होगी। मैं यकीन दिलाता हूँ मैं कायर नहीं, धोखेबाज भी नहीं। रुथ, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।

तभी एक बात बिजली सी मेरे मन में कौंधी । मैं ने ममी का हाथ
मा और अपने कमरे की तरफ़ चल दी । वे बिना कुछ कहे साथ हो
ी थीं । कमरे में आ कर अपनी अन्य किताबों के नीचे से मैं ने वही
किताब निकाली । उस के साथ का सिन्योर परेरा का लिखा पुरज़ा ऊपर
रखा और किताब ममी की ओर बढ़ा दी ।

ममी ने कांपते से हाथों पुस्तक ली । एक सांस में उन्होंने वह पुरजा
पढ़ा, फिर पुस्तक खोली । वे स्तब्ध रह गयी थीं । पुस्तक हाथ से छूट
कर नीचे गिरी और बिना एक शब्द कहे डगमगाती सी मेरे कमरे से
चली गयीं ।

एक बार को मुझे लगा कि अब उन का चीत्कार सुनाई देगा ।
सिन्योर से क्रुद्ध स्वर में कुछ कहेंगी । फिर सिन्योर का कर्कश स्वर सुनाई
देगा । पर वैसा कुछ हुआ नहीं । बंगला जैसा शान्त था वैसा ही शान्त
रहा । ज़मीन पर पड़ी पुस्तक और पास ही फड़फड़ाते पुरज़े को निर्निमेष
देखती हुई उस शान्ति से मैं सहम उठी थी । मुझे भय हुआ कि ममी
कहीं अपना ही अहित न कर बैठें । यह सोचते ही मैं उन के कमरे की
ओर भागी । वे अपने पलंग पर औंधी लेटी रो रही थीं । मैं ने उन की
पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—मुझे माफ़ कर दो ममी । वह सब मैं तु
नहीं बताना चाहती थी ।

उत्तर में बड़ी पीड़ा के साथ उन्होंने इतना ही कहा था—मेरा भ
बेटी ! तुझे अब नहीं रोकूंगी । इस घर की दीवालों में इतना पाप
अनाचार है मुझे मालूम न था । शायद मेरे पाप का प्रायश्चित य
कि यह सब सिर झुकाये भोगूं ।

फिर मेरे जाने का दिन तय हो गया था । ममी स्वयं मदर सु
से मिल कर मेरे ननरी में प्रवेश के बारे में तय कर आयी थीं ।
परेरा को भी उन्होंने संक्षिप्त सूचना दे दी थी । उन्होंने अपने स
अनुरूप कहा था—पर यह कैसे हो सकता है ? मेरी आज्ञा के

हो सकता है ?

मैं ओट में खड़ी सुन रही थी। ममी ने जवाब दिया था—मैं ने इस घर में अपनी कोई आज्ञा कभी नहीं चलायी। पर मेरा भी कुछ हक है और मेरा यही फ़ैसला है कि रुथ ननरी में जा कर रहे।

मगर क्यों ?—उन्होंने कर्कश स्वर में पूछा था।

ममी ने जलती हुई आवाज़ में कहा था—यह मत पूछो। सच्ची वजह बता दूँगी तो तुम खुद नहीं सह पाओगे। तुम्हारे लिए इतना ही जानना काफ़ी है कि रुथ अब यहाँ हरगिज़ नहीं रहेगी।

सिन्योर परेरा मौन रह गये उस से मुझे लगा वे एकदम श्रीहीन हो गये थे। कुछ देर बाद धीमी आवाज़ में उन्होंने पूछा था—यह तुम्हारा फ़ैसला है या रुथ का ?

ममी ने पूर्ववत् स्वर में कहा था—रुथ का। पर मैं उस से पूरी तरह सहमत हूँ।

ममी बाहर चली आयी थीं। आल्दा-इमेल्दा ने इस बारे में कोई उत्सुकता नहीं दिखायी थी। वे मेरे पास से गुज़रतीं तो कुछ ऐसे जैसे देखा ही नहीं। मेरी यों उपेक्षा कर के मानो वे जताना चाहती थीं कि मेरे रहने या न रहने से उन्हें कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता।

पर एमेरिक परेशान था। मुझ से बातें करने के लिए वह कभी से एकान्त खोज रहा था। मौक़ा पाते ही उस ने पूछा—तुम मुझ से नाराज़ हो ?

मैं ने उपेक्षा के साथ कह दिया था—तुम से नाराज़ ? नाराज़ भला मैं क्यों होने लगी ?

उस ने कहा था—उस दिन जो रात में ममी के आ जाने पर मैं भाग गया था। मेरी समझ में नहीं आता मैं ने वैसा क्यों किया। तुम मुझे कायर समझती होगी। मैं यक़ीन दिलाता हूँ मैं कायर नहीं, धोखेबाज़ भी नहीं। रुथ, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।

वह दीन हो उठा था। उस की दीनता पर मुझे दया आयी। पर
त पर घृणा ही। वह सूरत जो कहीं अपने पिता की चारित्रिक कुरूपता
ये हुए थी। और मैं ने कह दिया—मैं तुम्हारी वजह से नहीं, अपनी
ी वजह से जा रही हूँ एमैरिक। मैं ने तुम्हें कभी इतनी गम्भीरता से
नहीं लिया जितना तुम समझते हो। तुम्हारी कायरता और वीरता दोनों
ही मेरे लिए बराबर हैं।

मेरे उत्तर से एमैरिक का चेहरा जर्द पड़ गया था। इस अपमान ने
उस की प्रतिक्रिया की शक्ति भी छीन ली थी। मेरी ओर उठी हुई उस
की आँखें झुक गयी थीं। पर वह अपने स्थान से हिल तक न सका था।
जैसे उस के पाँव जमीन से चिपक गये हों।

और फिर मेरे जाने का दिन भी आ गया। सुबह दस बजे ननरी
पहुँचना था। मैं बहुत सुबह से ही तैयार थी। उस से पहली रात मैं ठीक
से सो भी नहीं पायी थी। उस वातावरण की कुरूपता से जो मोह मैं ने
पैदा कर लिया था वही मुझे बेचैन कर रहा था। मेरे जीवन का एक अध्याय
समाप्त होने जा रहा था और आगामी अध्याय इतना अपरिचित था कि
मेरे ही मन का प्रस्ताव होने पर भी मुझे आशंकाओं से भर रहा था।

तो मैं बहुत तड़के ही उठ गयी थी, और तैयार भी हो गयी थी।
सामान में बस एक छोटा सा बक्स था जिस में दो-चार कपड़ों के अल
कुछ न था। जन्मदिन पर मिले उपहार सब कमरे में सजे थे। मम
दिया लॉकेट जरूर अभी भी मेरे गले में था। हाँ वह नीलम भी मे
में था। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि इन दो चीजों का कै
क्या कह कर वापस करूँ। ठीक-ठीक कुछ न सूझने पर भी मैं प
के पास किचन में गयी थी। वह चूल्हा जलाने में लगा था।
कड़वायी आँखों से मुझे देख कर बोला—यह क्या बेबेजिट, इ
बाहर की तैयारी? मैं तो अभी तक साहब लोगों के नहाने क
गरम नहीं कर पाया।

मैं ने कहा—आज इतवार है पेड्रू सन्तान।

वह बोला—मैं इतवार को कभी नहीं भूलता। एक यही दिन तो है जब मैं—कभी-कभी गिरजाघर में प्रार्थना कर के महसूस करता हूँ कि मैं ईश्वर के घर में उसी के आसपास कहीं हूँ।

मैं ने फिर कहा था—जानती हूँ पेड्रू सन्तान। इसी से मैं अब इस वातावरण से दूर जा रही हूँ जहाँ हर साँस में अनुभव करूँ कि मैं ईश्वर के समीप हूँ।

पेड्रू को सहसा याद हो आया था मेरे जाने का दिन। अभी तक वह भूला हुआ था। क्षण भर अपनी आँखों से मेरे देह का आपादमस्तक स्पर्श कर के गम्भीर स्वर में बोला—ठीक है बेवेंजिट। यह दिन आना ही था। मैं खुश हूँ, बेहद खुश हूँ।

पर उस की भर्रायी आवाज बता रही थी कि वह कितना खुश है। आँखें भी आँसुओं को थाम नहीं पा रही थीं। मगर जैसे यह सोच कर कि ये आँसू उस की खुशी के खिलाफ गवाही देंगे, उस ने कहा था—इस बार बेहद खराब कोयला आया है। आग से ज्यादा धुआँ छोड़ता है। मेरी तो आँखें वैसे ही बुढ़ापे में खराब हो चली थीं, रही-सही यह धुआँ खराब कर देगा।

यह कहते हुए उस ने आँखें पोंछ ली थीं। आँसुओं के लिए बहाना खोजने की उस की इस चेष्टा पर मैं ने कुछ नहीं कहा था। मेरा मन खुद पंकिल हो उठा था। मेरे संकल्पों की दृढ़ता भीतर ही भीतर आँसुओं से गीली मनोभूमि में विछल रही थी।

कुछ देर चुप रह कर पेड्रू ने कहा था—बेवेंजिट, एक बात मैं तुम्हें और बता दूँ। बाहर शान्ति पाने के लिए पहले उसे भीतर खोजना पड़ता है। एक बार मन में उस का बीज बो कर कभी उसे मरने न दोगी तो सारी दुनिया में शान्ति मिलेगी। नहीं तो........

उस ने वाक्य पूरा नहीं किया था। जैसे सुबह-सुबह अशुभ बात न

कहना चाहता हो। स्वर में प्रसन्नता लाने की चेष्टा करते हुए बोला—वेवेजिट, तुम सच ही यीशु की दुलारी हो। इतनी कम उम्र में ऐसी बुद्धि कितनों को मिलती है। जब मैं साफ़ सफ़ेद पोशाक में सिर को 'वील' से ढके ननों को कहीं देखता हूँ तो मेरा सिर आप से आप उन के सामने झुक जाता है। ग़रीबों, अनाथों, बीमारों की सेवा वे कितने प्यार से करती हैं? वे दीन-दुखी जन बड़े भाग वाले होंगे जिन की सेवा तुम करोगी। और तुम उन से भी अधिक भाग वाली होगी क्योंकि तुम सेवा की पवित्रता को जानती हो। मरियम और उस के महान् बेटे की तुम पर बड़ी कृपा होगी।

मैं ने उस की भावुकता से विह्वल होते हुए पूछा था—मुझ से मिलने आया करोगे पेड्रु सन्तान?

उस का उत्तर था—तुम्हारे यहाँ के क़ायदे-क़ानून इजाजत देंगे तो क्यों नहीं आऊँगा?

इतना कह कर जैसे उस ने यह संकेत किया था कि अब मैं जिस विधान को स्वीकार करने जा रही हूँ उस में इस तरह की मुलाक़ातों के लिए गुंजाइश नहीं।

तभी मैं ने अपनी मुट्ठी में बन्द उस नीलम को उस की तरफ़ बढ़ाते हुए कहा था—अच्छा पेड्रु सन्तान, तो मुझे आशीर्वाद देते रहना और इस नीलम को देख-देख कर मेरी याद कर लिया करना।

उस ने मेरे बढ़े हुए हाथ की स्पर्श सीमा से पीछे हटते हुए घबराहट के साथ कहा था—यह क्या करती हो? अब मैं इसे कैसे ले सकता हूँ। इस पर अब मेरा कोई हक़ नहीं। यह तो तुम्हारा हो चुका।

मैं ने समझाया—ठीक कहते हो पेड्रु सन्तान। सच ही इस पर अब सिर्फ़ मेरा ही हक़ है। उसी हक़ के नाते तुम्हें यह दे रही हूँ। ननरी में इस के लिए कोई जगह नहीं। इसे मेरी यादगार के रूप में अपने पास रखो। यह नीलम मुझे कभी भूलने नहीं देगा।

आगे बढ़ कर मैं ने वह लॉकेट पेड्रो को कमीज़ की जेब में डाल दिया था। तभी उस ने मुझे बाहों पर से थाम कर हलके से मेरा माथा चूम लिया था और बिना कुछ कहे मुझे छोड़ कर फिर चूल्हा फूँकने लगा था। मैं भी तत्क्षण वहाँ से चली आयी थी।

चैपल के सामने के बरामदे से निकली ही थी कि ममी पर नज़र पड़ी! चैपल में प्रार्थना कर रही थीं। इतनी जल्दी वे कभी प्रार्थना के लिए नहीं उठती थीं। मैं धीमे क़दमों से उन के पीछे जा कर खड़ी हो गयी। उन्होंने मेरी आहट से ही मुझे पहचान लिया था। बिना गरदन घुमाये ही कहा था—कौन, रथ बेटी।

हाँ ममी।—मेरी आवाज़ गीली थी। मैं उन की बग़ल में बैठ गयी थी।

उन्होंने मेरा हाथ अपने हाथ में ले कर कहा था—इस दुनिया में यह सब क्यों होता है बेटी?

मैं चुप ही रही। अपने प्रश्न का उत्तर वे ख़ुद जानती थीं। असल में वह प्रश्न न हो कर अपनेआप से बात करने की चेष्टा थी। उन्होंने ही कहा—मेरे प्रभु ने सर्वशक्तिमान् हो कर भी इस दुनिया में पाप क्यों बनाया? मोह क्यों रचा? बुराई की बेल क्यों बोयी? उस ने यह सब क्यों किया जिस की वजह से उसे अपने प्यारे बेटे के पवित्र ख़ून को ही बहाना पड़ा? हमारे पापों को वह यीशु के पवित्र रक्त से धोता है! यह *सब क्यों होता है बेटी?*

ममी का स्वर पिघल चला था। मुझ से वहाँ बैठा नहीं गया। मुझे लगा ममी कहीं उसी तरह बोलती रहीं तो मैं रो पड़ूँगी। नहीं थाम पाऊँगी अपने आँसू। मैं ने धीरे से अपना हाथ उन से मुक्त किया। चुपचाप उठी। गले से लॉकेट निकाला और उन के पीछे खड़ी हो कर उन के गले में पहना दिया। अब वे बोलीं—तू इसलिए मुझे खोजती यहाँ आयी थी रथ?

मैं कुछ न वोली। उन्होंने करुण स्वर में कहा था—
मेरा दिया उपहार इतनी जल्दी मेरे पास लौट आयेगा। तुझे इसे
कर मुझे कितनी खुशी हुई थी मैं ही जानती हूँ और आज तुझ से इसे
पस पा कर मैं खुद को कितनी अभागिन पा रही हूँ यह भी मैं ही
ानती हूँ। अच्छा वेटी ! दोष किसे दूँ। सब मेरा ही तो भाग्य।

मैं तत्काल वहाँ से अपने कमरे में चली आयी थी। दौड़ती सी, दोनों हाथों से मुँह ढाँपे ! जैसे रुलाई थामने का वही उपाय था, पर कमरे में घुसते ही वह उपाय विफल हुआ। मैं ऐसे रो पड़ी जैसे घुटन भरे वादल विना गरजे, विना तड़पे एकदम वरस पड़े हों धुआँधार।

वस दीवाल से लगी मैं कितनी ही देर तक रोती रही थी। जव आँसुओं का वेग कम हुआ तो किसी तरह अपने पलंग की ओर बढ़ी। पर पहला ही क़दम उठाया था कि सिन्योर परेरा पर दृष्टि पड़ी। वे सिर झुकाये मेरे पलंग पर वैठे थे। पता नहीं कव से। देखते ही मैं तीव्र घृणा और उत्तेजना से भर उठी थी। विना कुछ कहे जैसे ही लौटने को हुई, उन की आवाज़ ने रोका—रुथ, जाओ मत। मैं जानता हूँ तुम्हारे लिए मैं अछूत हूँ। मगर आज जव तुम लोकोत्तर जीवन विताने जा रही हो तो तुम से एक चीज़ तो माँग ही लूँ।

मैं रुक गयी थी। उन के स्वर में अपरिचित कोमलता, करुण पश्चात्ताप और विदग्धता थी। अपरिचित ही नहीं अप्रत्याशित भी। कहते गये—तुम सोचती होगी कि मैं फिर कुछ ऐसा माँग वैठूँगा जो नहीं ही दे पाओगी। ऐसी वात नहीं रुथ। मैं जो माँगूँगा वह दे कर और भी महान् हो जाओगी और तुम्हारी उस महत्ता के प्रताप से मैं ऐसा पा सकूँगा जो जीवन में मुझे शायद कभी थोड़ी सी शान्ति
रुथ, मैं तुम से सि[illegible] माफी माँग रहा हूँ।

भितीनेपन के नीचे से उभरती हुई एक क्षीण सात्विकता की झलक। पर उस क्षण मैं इतनी महान् हो ही नहीं पाती कि उन्हें क्षमा कर देती। सच कहूँ तो मैं उतनी महान् कभी नहीं हो पाती। मैं क्षमा कर ही नहीं सकी।

मेरे उत्तर की प्रतीक्षा में वे कुछ देर रुके थे। मैं ने उन की ओर से मुँह मोड़ लिया था। यह देख कर वे उठे और कहा—लगता है मेरी प्रार्थना स्वीकार नहीं तुम्हें। ठीक है रुथ, यह तुम्हारा फ़ैसला है। मनोनुकूल फ़ैसले के लिए तुम पर दबाव डालने का मेरा मुँह भी तो नहीं।

और मैं ने देखा कि उन्होंने दीवाल पर टँगे अपने उपहार क्रॉसविद्ध यीशु को धीरे से उतारा और उसे लिये हुए बिना कुछ कहे वहाँ से चले गये!

सुनते हो?—रुथ कह रही थी—नर्सरी के कम्पाउण्ड में घुसते हुए मैं सोच रही थी—आखिर ऐसा क्यों हुआ? यह सब क्यों हुआ? जोये के आने की घड़ी में ही क्यों हुआ?

जानते हो?—रुथ बता रही थी—मुझे नर्सरी पहुँचाने के लिए गाड़ी पोर्च में तैयार खड़ी थी। सरकारी ड्राइवर ड्यूटी पर मौजूद था। बरामदे के खम्भों से लगी आल्दा-इमेल्दा खड़ी थीं। उन की दृष्टि अस्थिर और कोमल थी। सिन्योर परेरा अपने कमरे में ही बैठे थे। एमैरिक ड्राइंगरूम की खिड़की से झाँक रहा था। जैसे बाहर न आ कर वह अपना विरोध प्रकट करना चाहता हो। मम्मी मेरे साथ थीं। बरामदे में क्षण भर रुक कर मैं ने इधर-उधर देखा। कार, ड्राइवर, आल्दा, इमेल्दा, खिड़की से झाँकता एमैरिक, अनुपस्थित सिन्योर परेरा। पेड्रू भी नहीं। जाने मेरे मन ने क्यों मान लिया कि वह नहीं आयेगा। उस के न आने से भी मुझे उतनी ही पीड़ा हुई जितनी उस के आने पर उस की आँसू भरी आँखों

ख कर हो सकती थी।

वस मैं भारी क़दमों से आगे वढ़ी। पोर्च की पहली सीढ़ी पर क़दम ा ही था कि कार के इंजन से आगे वढ़ते हुए एक सुरूप फ़ौजी अफ़सर ो देखा। दीर्घ और पुष्ट देह। चाल में विश्वास और अभिमान। आँखों में निर्द्वन्द्वता। मैं सहसा पहचान ही नहीं सकी कि वह मेरा जोज़े है। वही जोज़े जिसे मैं 'पादरी का वेटा' कहती थी। वही जोज़े जो हर अवज्ञा, अपमान और उपेक्षा सह लेता था। वही जोज़े जिस की यह सूरत मेरे सपने भी नहीं गढ़ पाये थे! उस के पत्र से यह जान कर भी कि अब वह फ़ौज में है और जल्दी ही गोआ आने वाला है मैं उस के इस रूप की कल्पना नहीं कर पायी थी। मैं उसे अपरिचय से पीड़ित दृष्टि से अवाक् देखती रह गयी थी।

पर उस ने मुझे एक ही नज़र में पहचान लिया था। देखते ही वोला—अरे रुथ, तू इतनी वड़ी हो गयी होगी, यह तो मैं सोच भी नहीं पाया था।

कोई और अवसर होता तो मैं भी शायद कुछ वैसा ही उत्तर देती। पर उस समय मैं कुछ भी नहीं कह पायी थी। हलके से होंठ हिले थे। मैं ने सिर्फ़ 'जोज़े' कहना चाहा था। उस चाह में प्यार की वासना थी पर जिस जीवन को अंगीकार करने मैं अब जा रही थी और जो कुछ क्षणों के अन्तर से मेरी प्रतीक्षा कर रहा था उस में उस कोमलता, उ मोह के लिए स्थान नहीं था।

मुझे चुप ही देख कर उस ने कहा था—मुझे पहचाना नहीं मैं जोज़े हूँ जोज़े। आज सुवह ही पहुँचा हूँ हवाई जहाज़ से। हवाई से सीधे तुम्हारे पास आया हूँ।

मैं फिर भी कुछ नहीं कह पायी थी। तव ममी ही वोलीं— नन वनने का निश्चय किया है। वह इस वक़्त ननरी जा रही है

मैं ने देखा जोज़े धक् से रह गया था। वह अविश्वास के साथ

पर यह कैसे हो सकता है रुथ ? यह नामुमकिन है। मैं ने तुम्हें पहले ही लिख दिया था कि मैं आ रहा हूँ। तुम यह सब कैसे कर सकती हो ? तुम्हें हर हालत में मेरे लौटने की राह देखनी थी।

उत्तर में मैं कार में जा बैठी थी। अन्धड़ से भरा मन। आंसुओं से अन्धी आँखें। ममी दूसरे दरवाज़े से बैठने को घूम पड़ी थी। जोज़े पास आ कर कह रहा था—तो तुम ने मेरा इन्तज़ार नहीं किया न रुथ ? मगर मैं तुम्हारा अब भी करूँगा। मैं नहीं मान सकता कि तुम नन बन कर अपनी ज़िन्दगी समाप्त कर दोगी। रुथ, मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा। तब तक जब तक कि तुम लौट न आओ।

और कार चलने से पहले ही वह चला गया था। ननरी के कम्पाउण्ड में घुसते हुए भी मैं उस की पदचाप सुन रही थी। तेज़ चाल। क़दमों की भारी आवाज़। जैसे उस आवाज़ में उस के मानसिक विरोध की गर्जना हो।

कम्पाउण्ड पार कर मैं मुख्य भवन में आयी। उस के बड़े दरवाज़े पर ही कार्यालय था। जोज़े के कदमों की आवाज़ उस वर्जित सीमा में भी मेरा पीछा कर रही थी। जब मैं मदर सुपीरियर के सामने पेश हुई तब भी मेरी चेतना के पथ पर किसी के भारी कदमों की आवाज़ गूँज रही थी। मदर सुपीरियर ने मुझ से कुछ पूछा। मैं नहीं समझ पायी। सुन ही नहीं पायी थी। उन्होंने फिर कहा—तुम ने अच्छी तरह सोच तो लिया है ?

किस बारे में ? मैं ने चौंकते हुए पूछा। तभी ममी ने धीमे से समझाया। मैं ने सम्हलते हुए कहा था—जी हाँ।

मदर सुपीरियर ने फिर पूछा—तुम अपनी इच्छा से सोच-समझ कर यह व्रत ले रही हो या किसी दबाव या आवेश में पड़ कर।

उत्तर में मैं अपना वाक्य ठीक से नहीं बना पायी थी। किसी तरह आशय व्यक्त कर दिया था कि यह मेरा स्वतन्त्र और सुनिश्चित विचार है।

इस पर उन्होंने मुझे बैठाते हुए कहा था—शायद तुम
बारे में ठीक-ठीक नहीं जानतीं। इसलिए पहले मैं तुम्हें थोड़े में वह सब
बता दूँ। तुम्हारा मन उस सब को जान कर भी स्थिर रहा तो मैं आपत्ति
नहीं करूँगी।

ममी खड़ी थीं। उन्होंने ममी की ओर देख कर कहा था—आप
बाहर ठहरें तो कैसा ?

ममी 'अच्छा' कह कर बाहर चली गयी थीं। फिर वही पदचाप। हलकी, सहमी सी। पर शीघ्र ही वह भारी निर्द्वन्द्व पदचाप में बदल गयी थी। जोज़े के क़दमों की चोट मुझे फिर परेशान करने लगी थी। मैं ने हठात् स्वयं को उस ओर से समेटा और इस भय से कि कहीं मदर सुपीरियर मेरी अनवधानता न पकड़ लें सम्हल कर बैठ गयी।

मदर सुपीरियर कह रही थीं—नन का जीवन कष्ट और साधना का जीवन है। इस जीवन को अपना कर वह स्वयं को एक ऐसे ऑर्डर, विधान को सौंप देती है जो उस के हर क्षण, हर साँस और हर वचन का लेखा रखता है। इस जीवन में दान ही दान है। समस्त इच्छाओं का दान, आकांक्षाओं का दान, लौकिक सुखों का दान। बदले में ग्रहण है अभावों का, कष्टों का, अपने लिए न जीने का। पर इस जीवन में फिर उस परम सुख उस अलौकिक आनन्द का, क्षण भी आता है जिस के आगे और सब सु और आनन्द बेकार हैं। वह सुख तुम्हें पीड़ितों की सेवा में मिलेगा। आनन्द तुम यीशु की सन्निधि में पाओगी। हर दिन, हर घड़ी तुम अ करोगी कि जो अज्ञात क्रॉस बोझ बन कर तुम्हारे कन्धों पर टिका थ यीशु ने अपने कन्धे पर रख लिया है और अपने पवित्र रक्त तुम्हारे जीवन के कलुषों को धो रहा है। पर उस आनन्द को सि पहुँचने से पहले तुम्हें स्वयं को कड़ी साधना को सौंपना होगा। लिए तैयार हो ?

मैं ने स्वीकृति में सिर हिला दिया था। किन्तु मदर ने अ

साथ कहा था—नहीं, अभी स्वीकृति न दो। पहले जान लो। जब कोई लड़की ननरी में आती है तो उस के जीवन की एक ही महत्त्वाकांक्षा होती है। वह ईश्वर की वधू बनना चाहती है। किसी भी लड़की या स्त्री के जीवन में इस से अधिक महान् और काम्य क्या हो सकता है कि वह ईश्वर की वधू बने। पर यह वधू-भाव ऐसा नहीं जैसा कि संसार में तुम देखती हो। इस की कोर्टशिप भी निराली है। दुनिया के हर व्यवहार से निराली।

मैं ने जोजे की पदचाप को दूर धकेलते हुए मदर की ओर देखा था। जैसे गूँगी दृष्टि से कहा हो—मुझे बताओ वह साधना, मैं उस में उत्तीर्ण हो कर रहूँगी। वधू बनने का मेरा सपना है। ईश्वर की वधू बन कर मैं उस सपने को सार्थक करूँगी।

मदर बताने लगी थीं—आरम्भ में तुम पोस्चुलैण्ट की श्रेणी में रहोगी। पूरे एक वर्ष। इस वर्ष में तुम आगे आने वाले महान् जीवन के लिए खुद को तैयार करोगी। तुम्हें परिवार का, परिजनों का, संसार का मोह छोड़ना होगा और सारी दुनिया को ईश्वर के परिवार के रूप में देखते और सादगी से रहते हुए धर्म-ग्रन्थों का अभ्यास करना होगा। इस आरम्भिक अवस्था में भी तुम्हारी दिनचर्या एक सामान्य जन-जैसी ही होगी। तुम्हें उस जीवन के आकर्षण घेरेंगे जो इस ननरी की सीमा के बाहर है। पर तुम्हें साधना के द्वारा उन आकर्षणों को कुण्ठित करना होगा। इस प्रकार अगर तुम अपना पहला वर्ष सफलता और सच्चरित्रता से बिता सकी तो तुम 'नोविस' के रूप में स्वीकार कर ली जाओगी। साधना की अगली सीढ़ी। दो वर्ष का अभ्यास। एक वर्ष के बाद तुम अपने इन कपड़ों को छोड़ दोगी और एक नन की 'हैबिट' (पोशाक) की अधिकारिणी हो जाओगी। उस 'हैबिट' के साथ ही तुम्हारी ज़िम्मेदारी भी बढ़ जाती है, यह तुम हमेशा याद रखोगी। अब तुम्हारे आत्मीय तुम से उतनी स्वतन्त्रतापूर्वक नहीं मिल पायेंगे। उन के पत्र भी तुम्हें कम मिला करेंगे।

इतना कह कर मदर सुपीरियर क्षण-भर को रुकीं। उन्हों... ी चेष्टाओं का अध्ययन किया। मैं शान्त, स्तम्भित सी बैठी थी। जोज़े की ...चाप जैसे बहुत दूर चली गयी थी। कान अब उसे सुन तो नहीं पा ...हे थे, आभास से अवश्य बँधे थे। किन्तु आँखें मेरी मदर की ही दिशा में थीं। मेरी सुस्थिरता से उत्साहित हो कर उन्होंने कहा था—तुम में अच्छी नन बनने के सब लक्षण हैं। सिर्फ़ साधना और अडिग आस्था की ज़रूरत है। 'नौविस' के दो वर्ष बिता कर तुम 'सिस्टर' बन जाओगी। हमारे 'होली ऑर्डर' की सिस्टर। और तब यीशु का पवित्र क्रॉस तुम धारण कर सकोगी। वह असाधारण गौरव की बात है हर सिस्टर के लिए। पर इस से भी बड़ा गौरव तुम्हारी प्रतीक्षा में आगे उपस्थित रहेगा। उस क्रॉस के गौरव को सफलतापूर्वक सात वर्ष तक वहन कर लोगी तो तुम उस महानतम गौरव की अधिकारिणी हो जाओगी।

मदर के स्वर में अजीब चुम्बकत्व भर उठा था। मैं उत्सुकता से भर कर उन की आगे की बात सुनने को कान सन्नद्ध किये थी। वे आँखों में चमक भर कर सौम्य मुसकान के साथ मुझे देख रही थीं। जैसे जिस महान् गौरव को वे स्वयं पा चुकी हैं, अब क्षण-भर चुप रह कर उस आनन्द का मानसिक उपभोग कर रही हैं। मैं बिना पलक डोलाये उ... देखती रही। अन्त में उन्होंने कहा—सात वर्ष तक सिस्टर का जी... बिताने के बाद वह शुभ घड़ी आयेगी। तब तुम्हें वह अँगूठी मिलेगी ... के लिए तुम ने यह सब साधना की होगी। उस अँगूठी के महत्त्व क... के सोने या चाँदी से नहीं आँका जा सकता। वह उस महत्ता का... है जिस का आभोग तुम तब करोगी। उस अँगूठी को पहनने की... ही तुम ईश्वर की परिणीता हो जाओगी। ईश्वर की वधू: 'ब्राइ... गॉड'। तब सांसारिक जीवन में लौटने के तुम्हारे सब द्वा... जायेंगे। ईश्वर की वधू बनने के बाद कोई नन फिर वापस... सकती। महान् पोप की आज्ञा ही उस के लिए लौटने का...

सकती है। पर वह आज्ञा ईश्वर की आज्ञा है। महान् पोप के माध्यम से उस की अपनी आज्ञा। पर वह तब तक सुलभ नहीं होगी जब तक कि ऐसा कारण न हो जो उपयुक्त और पर्याप्त माना जा सके। और उस जीवन में तुम यदि कभी अपने घर एक क्षण के लिए भी जाना चाहोगी तो सिर्फ़ एक ही बार। वह प्रथम बार ही अन्तिम बार होगा।

इतना कह कर मदर तल्लीन सी हो उठी थी। 'वील' से चारों और से घिरा उन का मुख मोटी आँखों, लम्बी नासिका, प्रशस्त ललाट और गौराग के कारण अत्यन्त प्रभावशाली लग रहा था। उन की सन्निधि मुझे शान्ति देने से अधिक आतंकित कर रही थी। वे स्वयं मुझे ईश्वर की दया से अधिक ईश्वर का सैनिक लग रही थीं। उस क्षण मैं ने कुछ वैसा ही अनुभव किया। मन में भय का संचार हुआ। मैं जोजे के आने पर भी क्यों चली आयी, यह सोच कर मन बेचैन और निराश भी हुआ। पर फिर अपने-आप ही समाधान के रूप में सोचने लगी थी—जिसे माँ ने जनमते ही छोड़ दिया, उसे जोजे भी तो छोड़ सकता है। विवाह कर के भी छोड़ सकता है। बस मुझे वधू बनना है तो उसी की बनूँगी जो मुझे कभी नहीं छोड़ेगा और जिसे छोड़ने के लिए मुझे स्वयं महान् पोप की आज्ञा लेनी होगी।

मैं सोच रही थी। मदर सुपीरियर अपनी आनन्द-समाधि से जाग चुकी थी। उन्होंने पूछा—तो तुम्हें स्वीकार है ?

मैं ने सिर झुका कर अपनी स्वीकृति दी थी। उन्होंने उस स्वीकृति पर आँखों की चमक से प्रसन्नता प्रकट की थी और कहा था—पर अभी कुछ और जान लो। अपनी दिनचर्या के बारे में भी अभी से जान लो।

कहते-कहते उन का सुन्दर मुख फिर कठोर हो उठा था। वधू भाव के स्थान पर वही सैनिक भाव। वे कह रही थीं—तुम्हें प्रतिदिन सूर्योदय से पहले उठना होगा। तुम्हारे जागने के बाद सूरज जागे इसी में तुम्हारी धर्मआस्था का गौरव है। स्वच्छ हो कर तुम प्रातःकालीन प्रार्थनाएँ अपनी

री (माला) पर दोहराओगी । इस प्रकार ईश्वर का
हना कर के तुम सव के साथ होली चर्च जाओगी 'होली मास' में
म्मिलित होने । इस 'होली मास' के द्वारा तुम ईश्वर के प्यारे पुत्र
यीशु के वलिदान को कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करते हुए उस महान् वलिदान
की गाथा को प्रतीकात्मक ढंग से दोहराओगी । तव 'मास' में 'ऑल्टर'
(वेदी) पर स्थापित क्रॉस पर अर्पित वह मदिरा यीशु का रक्त और रोटी
यीशु का मांस हो उठेगी। उस ऑल्टर में महान् सन्तों की शक्ति का वास
है। और वह क्रॉस वही क्रॉस है जिस पर यीशु ने अपनी वलि दी थी।

इतना कह कर उन्होंने श्रद्धा-भाव के साथ सिर और छाती के
विस्तार में क्रॉस का चिह्न वनाया और वोलीं—समय आने पर तुम यह
सव जान लोगी, अच्छी तरह जान लोगी । अभी तक तुम 'होली मास'
के मर्म को ठीक-ठीक नहीं जानती हो। पर नित्य की साधना और भक्ति-
भावना से उस में छिपे पवित्रतम रहस्य को जान लोगी।

क्षण भर रुक कर उन्होंने फिर कहा था—प्रभु यीशु पवित्र त्रिदेवों में
मध्यम हैं। यह 'होली ट्रिनिटी' ईश्वर, ईश्वर के पुत्र यीशु, और 'होली
घोस्ट' (पवित्र आत्मशक्ति) से मिल कर वनी है। इस होली ट्रिनिटी
से यीशु ने ही तो क्रॉस पर अपना वलिदान दिया था। मेरे-तेरे और
सारी दुनिया के पापों के प्रक्षालन के लिए। होली मास में दी गयी
शराव और रोटी की रक्तहीन वलि उस महान् वलिदान के महत्
वार-वार जीवित कर के हमें यीशु की महानता और अपने पापों के
में सावधान करती हैं।

मदर सुपीरियर अपनी धार्मिक तन्द्रा से जागृत सी होती क
थीं—इस प्रकार आरम्भ हुआ दिवस सार्थक है। तव तुम अन्नग्र
की अधिकारिणी हो जाती हो। उस के वाद दैहिक श्रम । फि
अस्पताल आदि। फिर मध्याह्न भोजन । फिर भोजनोत्तर
धर्म ग्रन्थों से पाठ। पुनः अस्पतालों में शुश्रूषा या स्कूलों में

चौथे पहर की चाय। सान्ध्यकालीन प्रार्थना। फिर कुछ काम—श्रम। उस के बाद रोज़री पर प्रार्थना। फिर सान्ध्य प्रार्थनाएँ। उस के बाद 'सपर' : रात्रि-भोजन। इस तरह तुम्हें अपने हर क्षण को सार्थक व्यस्तता देनी होगी। तुम किसी से एक बात भी व्यर्थ न पूछोगी न पूछे जाने पर उत्तर दोगी। सपर के बाद विश्रान्ति की अवधि में ही तुम वार्तालाप करने को स्वतन्त्र हो। वही तुम्हारे मनोरंजन का काल है। ननकी मर्यादा के साथ मनोरंजन। उस के बाद शयनपूर्व की प्रार्थना के बाद तुम इसलिए सोओगी कि अगले दिन तड़के ही उठ कर फिर से स्वयं को 'होली ऑर्डर' को समर्पित कर सको।

ननरी का वातावरण एकदम निराला था। उस के दो भाग थे। एक भाग में 'पोस्चुलैण्ट' यानी नन होने की उम्मीदवार और 'नोविस', जिन्हें नवीना कह लो, रहती थीं तो दूसरे भाग में सिस्टर और दूसरी ननें। जैसे पोस्चुलैण्ट और नोविसों में सांसारिकता इतनी व्याप्त थी कि उन का सम्पर्क ननों के लिए अवांछित माना जाता था। एक नीरस और अपरिहार्य दिनचर्या। उस बँधे-बँधाये जीवन में भी मेरा कुतूहल मुखर होना चाहता। मगर जिज्ञासा को शब्द देना तो वहाँ अपराध था। कभी प्रमादवश किसी से कुछ पूछने की कोशिश की तो उसी ने होंठों पर अँगुली रख कर वर्जना कर दी या समीपस्थ किसी मदर ने। मेरी समझ में आ ही नहीं रहा था कि जब विधाता की सृष्टि में सभी कुछ उस का ही रचा हुआ है तो इतने निषेध क्यों? इतनी वर्जनाएँ क्यों? संयम का अर्थ दमन क्यों? इच्छाओं का हनन क्यों?

मेरे उस नये जीवन का समारम्भ ही एक ऐसी औपचारिकता से हुआ था जिस से परिचित हो कर भी मैं अपनी आत्मा की स्वीकृति नहीं दे पायी थी। एक सिस्टर के संरक्षण में मुझे चर्च भेजा गया था। पंजिम

का प्रधान चर्च इग्रेजा मात्रेज़। अपनी ऊँची चौकी और ऊर्ध्वगामी शिखरों की वजह से दूर से ही दृष्टि को आकृष्ट कर लेने वाला। उस चर्च में मैं पहले भी जा चुकी थी, पर इस बार का जाना कुछ विशेष था। मैं अपने जीवन के सर्वप्रथम कन्फ़ेशन (अपराधों की स्वीकृति) के लिए जा रही थी। रास्ते भर मन-ही-मन सोचती रही कि वे कौन से अपराध मैं ने किये हैं जिन्हें वहाँ प्रीस्ट के सम्मुख स्वीकारूँ। मुझे कुछ भी कहने को नहीं सूझ रहा था। एक प्रार्थना पुस्तक मुझे दे दी गयी थी और अपने कन्फ़ेशन के आदि और अन्त में मुझे उस में निर्दिष्ट प्रार्थनाओं को भी कहना था। साथ वाली सिस्टर मौन और दुर्बोध थी। किसी अपराधी के साथ जाने वाले पुलिस के गार्ड भी शायद उतने तटस्थ और आतंककारी नहीं होते।

वह सिस्टर मुझे कन्फ़ेशनल के पास ले गयी। वहाँ मुझे छोड़ कर वह चली गयी। उस के जाने के शीघ्र ही बाद मुझे कन्फ़ेशनल के पीछे किसी के आने और बैठने का एहसास हुआ। प्रीस्ट ही हो सकता है, यह मैं ने मान लिया था। मेरे और उस के बीच में सिर्फ़ कन्फ़ेशनल का आवरण था। बारीक छिद्रों वाला पार्टीशन। जिन छिद्रों से देखा स्पष्ट न जा सके पर सुना सब कुछ जा सके। पर मुझे कुछ ऐसा लगा जैसे कन्फ़ेशनल के उन अनन्त छिद्रों में आँखें हैं, कान हैं, जिह्वाएँ हैं जो मेरे अपराधों को देखेंगी, सुनेंगी और फिर उन की चर्चा भी करेंगी। मैं आतंकित सी घुटनों के बल बैठ गयी और सामने के आधार पर दीन भाव से अपना मस्तक टेक दिया। तभी कन्फ़ेशनल के परोक्ष से स्वर उठा—यह तुम्हारा पहला कन्फ़ेशन है ?

मैं ने सहमी आवाज़ में कहा—हाँ।

प्रश्नकर्ता की आवाज भारी और त्रासद थी। उस ने फिर कहा—अपराधों की स्वीकृति के लिए अपने मन को तैयार करने के लिए पहले प्रार्थना कर लो।

मैं ने आज्ञानुवर्ती हो कर प्रार्थना-पुस्तक खोली और उस लम्बी प्रार्थना को अटकते हुए पढना शुरू कर दिया। उस प्रार्थना के कुछ अंश मुझे अब भी याद हैं। चर्च से लौट कर मैं ने उसे जाने कितनी बार पढा था। और अब भी पढ लेती हूँ। एक निरर्थक भाव के साथ। मैं ने प्रार्थना की थी—

"हे सर्वशक्तिमान् और दयामय ईश्वर, तुम ने मेरी व्यर्थता से रक्षा की और अपने एक मात्र पुत्र के अनमोल रक्त से मेरे पापों का प्रक्षालन किया। तुम ने अपराधों और कृतघ्नता के बावजूद मेरे प्रति अत्यन्त सहिष्णुता से काम लिया। हे प्रभो, मैं तेरे चरणों में नमित हूँ अपने अपराधों के मार्जन के लिए। मैं सच्चे मन से यह कामना करती हूँ कि पाप के पथों को सर्वथा छोड़ दूँ और इस मृत्युलोक को त्याग दूँ जहाँ मैं भटक चली हूँ। और तू जो समस्त जीवनों का उद्गम है तेरी ही शरण में लौट जाऊँ। मैं फ़िज़ूलखर्च बिगड़े बच्चे की तरह अपने-आप में लौट जाना चाहती हूँ, और वैसे ही निश्चय के साथ अपना उद्धार कर अपने पिता के घर जाना चाहती हूँ। हालाँ कि मैं उस की सन्तान कहलाने योग्य नहीं, किन्तु फिर भी उस की उदार करुणा का मुझे भरोसा है। मैं जानती हूँ तुम पापी की मृत्यु नहीं चाहते बल्कि उस का नवजीवन चाहते हो।"

मैं आतंकित सी उस प्रार्थना को पढ़ती गयी। मुझे उस प्रार्थना में कुछ भी तो ऐसा नहीं लग रहा था जिस की मेरे जीवन से संगति हो। मैं तो निर्दोष थी। फिर भी अपराधी की तरह प्रार्थना करती गयी—

"हे दिव्य सौभाग्य वाली क्वांरि, मेरे मुक्तिदाता की जननी, निर्दोषिता और पवित्रता की दर्पण तथा पश्चात्ताप-दग्ध पापियों की शरण, अपने पुत्र की करुणा के रूप में तुम मुझे बल दो जिस से मैं अपने अपराधों को स्वीकृत कर सकूँ। ओ स्वर्गस्थ देवदूतो, ईश्वर के सन्तो, मेरे लिए प्रार्थना करो जिस से मैं घोर पापिनी पाप-पथ को सर्वथा छोड़ सकूँ और मेरा हृदय उस सनातन प्यार में निमज्जित हो कर तुम्हारे हृदय से

एक हो जाये और उस सार्व-भौमिक शिवता से फिर कभी न भटके आमीन।"

मेरा मन एक अजीव विद्रोह से भर चला था। मैं ने प्रार्थना शेष की वही अपराधों के प्रति पछतावा। और प्रार्थना समाप्त कर पत्थर की तरह चुप हो गयी। मेरे मौन के विस्तार से क्षुब्ध हो कर ही जैसे कन्फ़ेशनल की ओट में बैठे प्रीस्ट ने कहा था—चुप क्यों हो गयीं? अब अपने अपराध घोषित करो।

मैं ने एक अदम्य प्रतिक्रिया से भर कर कह दिया था—नहीं, मैं निर्दोष हूँ। मैं ने कभी कोई अपराध नहीं किया। मैं एकदम निर्दोष हूँ।

प्रीस्ट ने गम्भीर स्वर से मेरी ताड़ना की—मूर्ख लड़की यह सब क्या कहती है? यह कैसे सम्भव है कि तूने कोई अपराध न किया हो। लगता है तुझे अपने किये का पछतावा नहीं और न तेरा यीशु की अनन्त करुणा और क्षमा में विश्वास है। अपने इस अविश्वासी मन से तू ऐसे अपराध कर रही है जो तेरे जीवन को दुख के सागर में खींच कर ले जायेंगे।

मैं ने कहना चाहा था—तुम जिस दुख के सागर की बात करते हो, मैं उसी में तो नन्हीं मछली की तरह पली हूँ। ऐसा कौन सा दुख है जो मैं ने भोगा नहीं। मुझे और किस दुख का भय दिलाते हो?

पर मेरे शब्द मेरे ही मन में घुट कर रह गये और मेरे होंठों पर मौन की शिला अड़ गयी। प्रीस्ट ने फिर कहा—अपने अपराधों पर परदा न डालो। शान्ति चाहती हो, उस की गोद का शाश्वत सुख चाहती हो, तो अपने अपराधों पर पश्चात्ताप प्रकट करो। बोलो, तुम्हारे अपराध क्या हैं?

इस प्रश्न के उत्तर में मैं बदहवास सी कह उठी थी—मेरे अपराध अनन्त हैं। मेरा पहला अपराध यह है कि मैं ने इस दुनिया में जन्म लिया। मेरा दूसरा अपराध यह है कि मैं ने अविवाहिता माँ के गर्भ से

जन्म लिया। मेरा तीसरा अपराध यह है कि मैं निन्यु इन्फ़ेंटिल में अनाथों की तरह पली और यह भी मेरा अपराध है कि मैं सिन्योर परेरा की गोद चली गयी। यह मेरा और भी बड़ा अपराध था कि मैं ने सिन्योर की वासनाओं पर स्वयं को निछावर नहीं किया। और यह मेरा सब से बड़ा अपराध था कि मैं ने अपने प्रति हुए अनाचार का बदला लेना चाहा था उस अनाचारी से।

कहते-कहते मैं चीख़ सी उठी थी।

इस तरह मेरा वह प्रथम कन्फ़ेशन समाप्त हुआ। कन्फ़ेशन के बाद की जाने वाली प्रार्थना पुस्तक में ही बन्द रह गयी थी। कन्फ़ेशनल की ओट बैठा पादरी भी खिसक गया था और मैं तभी आश्वस्त हुई जब साथ वाली सिस्टर मुझे उठाने चली आयी थी।

मैं ननरी लौटी तो मुझे भय था कि प्रीस्ट कहीं मदर सुपीरियर को कुछ ऐसा सन्देश न भेज दे जिस से मेरा ननरी में रहना ही मुश्किल हो जाये। पर मुझे बेहद अचरज हुआ जब थोड़ी देर बाद मुझे एकान्त में बुला कर मदर सुपीरियर ने प्यार के साथ कहा—मुझे पता चला है बेटी तुम बेहद दुखी हो, बेहद दीन हो। यीशु की करुणा में अपनी आस्था मत खोना। वह सब का रक्षक है। तेरी भी रक्षा अवश्य करेगा।

उन के इस आश्वासन से आशंकाओं से भीत मेरे मन का तनाव शान्त हो चला था और मैं ने मन ही मन निश्चय किया था कि मैं अपने समस्त आवेगों को शान्त कर एक अच्छी नन बनने की चेष्टा प्राणपण से करूँगी। मुझे ईश्वर की वधू बनना है। उस की ब्राइड की अँगूठी को पहनने के गौरव को प्राप्त करना है।

पर मेरा अतीत मुझे बाँधे था। उस की कुछ घटनाएँ मैं भुला कर भी नहीं भूल पाती थी। परेरा परिवार में उस दुर्दान्त घटना के बाद इतने बरसों तक रह कर भी मैं उस अनाचार को स्मृति से पागल हो उठती। ननरी के व्यस्त जीवन में भी मेरी चेतना पीछे की ओर दौड़ती और

रोज़री पर प्रार्थनाएँ जपते हुए भी मेरा मन हिंसा से बावला होने लगता । ननरी के जीवन ने मुझे कुछ ऐसा अन्तर्मुखी किया कि मैं अतीत की मानसी आवृत्तियाँ करती हुई अपने क्षोभ को अनन्त करती रहती ।

नियमित रूप से 'होली मास' में सम्मिलित होती, पर मैं कभी अपने क्षोभों से ऊपर उठ कर यीशु के महान् बलिदान की उस प्रतीकात्मक आवृत्ति में आस्था नहीं पैदा कर पाती । मेरा बाह्य आचरण इतना आदर्श था कि मदर सुपीरियर तक जल्दी ही मुझ से प्रभावित हो उठी थीं और यह मानने लगी थीं कि मैं अवश्य ही एक दिन यीशु के धर्म की सच्ची साधिका प्रमाणित होऊँगी । मैं तुम्हें उस दिन की बताऊँ जब मैं ननरी में जाने के बाद पहले 'होली मास' में सम्मिलित हुई थी । मैं और बहुत सी दूसरी पोस्चुलैण्ट, नौविस और सिस्टर चर्च में जमा थीं । इतवार क दिन था और 'द होली नेम ऑव जीज़स' की फ़ीस्ट । वर्ष का पह रविवार था । हर कोई श्रद्धाभाव से भरा था । प्रीस्ट ने प्रवेश किया ऑल्टर के सामने खड़े हो कर हम सब पर पवित्र जल की वर्षा की । वह उस जल के छींटे दे रहा था तो हम सब प्रार्थना-पुस्तक हाथ में निर्दिष्ट ऐन्थेम का गान करने लगी थीं ।

"हे ईश्वर, तुम मेरे ऊपर दिव्य गन्ध की वर्षा करोगे और मैं हो उठूंगी । तुम मुझे प्रक्षालित करोगे और मैं बर्फ़ से भी अधिक हो उठूंगी ।"

प्रीस्ट ने पढ़ा था—"हे प्रभो, मुझ पर दया करो, अपनी म के ही प्रमाण में ।"

फिर ऐन्थेम का गान और आगे का कर्मकाण्ड । उस समस में भाग लेती हुई भी मैं कहीं प्रेक्षक ही बनी थी। प्रीस्ट ने ऑ नमन किया । ऑल्टर : बलिदान का स्थल : बलिवेदी । उस ने अपने माथे से छाती तक के विस्तार में क्रॉस की

और उस का स्वर गूंजा—

"पिता, उस के पुत्र और होली घोस्ट के नाम में।" आमीन।

इस के उपरान्त उस ने हाथ जोड़ कर ऐन्थेम गाया—मैं ईश्वर तुम्हारी वेदी तक जाऊँगा।

समीप ही खड़े सर्वर (प्रीस्ट के सहायक) ने भी कहा—उस ईश्वर को जो तरुणाई को आनन्द पूरित करता है।

तब हाथ जोड़ कर नमन करते हुए पादरी ने अपराध की सार्वजनिक स्वीकृति की—मैं सर्वशक्तिमान् ईश्वर के समक्ष स्वीकार करता हूँ—

इस पर सर्वर ने कहा—वह सर्वशक्तिमान् ईश्वर तुम पर कृपालु हो और तुम्हारे अपराधों को क्षमा कर के तुम्हें मृत्यु से मुक्त जीवन दे।

मैं कुछ न समझते हुए भी देखती। प्रीस्ट कहता—आमीन। अब सर्वर अपराधों की स्वीकृति करता। मैं सोचती कि स्वयं को पतित और पापी मान कर चलने की यह भावना कैसी? सर्वर अपराध स्वीकृति वाले अंशों को पढ़ रहा है। पढ़ते-पढ़ते उस ने अपनी छाती पर तीन बार प्रहार किये और पढ़ने लगा—मैं ने मन से, वाणी से, कर्म से जो भी पाप किये हैं, अपनी ही भूल से, अपनी ही अक्षम्य भूल से। इसी लिए मैं दिव्यांगना वर्जिन की अनुनय करता हूँ। मैं आर्चएन्जिल माईकेल, जॉन बैप्टिस्ट पीटर और पॉल एपोस्टेल की, सभी सन्तों की ओर हे पिता तेरी अनुनय करता हूँ—

तब प्रीस्ट उस के लिए सर्वशक्तिमान् ईश्वर से क्षमा मांगता। सर्वर अन्त में 'आमीन' कहता। पादरी फिर अपने देह पर पवित्र क्रॉस की मुद्रा अंकित करता। और फिर उसी तरह कुछ और प्रार्थनाएँ।

फिर प्रीस्ट पहले बाँहें फैला कर और फिर हाथ जोड़ कर 'ओरेमस' का पाठ करता। फिर ऑल्टर पर चढ़ता हुआ कुछ बुदबुदाता। फिर हाथ जोड़े ऑल्टर पर झुक कर प्रार्थना पढ़ता। फिर ऑल्टर के पवित्र पत्थर का चुम्बन लेता। और फिर गन्ध-धूप जल उठतीं।

मेरा मन करता काश मैं वहाँ उपस्थित हर किसी के मन में बैठ कर

कि ऑल्टर पर जो कुछ हो रहा है उस का कर्ता
नों में अंकित हो रही है।

ो प्रीस्ट ने 'इण्ट्रॉयट' पढ़ना शुरू किया। मैं सावधान हो कर
गी—यीशु के सम्मान में हर कोई नतजानु हो उठे। वे भी जो
में हैं, धरती पर हैं और पाताल में हैं और हर मुख से यह बरबस
पड़े कि हमारे प्रभु यीशु—

मेरा ध्यान इण्ट्रॉयट से हट जाता। मन कहीं दूर चला जाता और
तब फिर सावधान होती जब प्रीस्ट और सर्वर कहने लगते—

ईश्वर हम पर अनुकम्पा करे।
क्राइस्ट हम पर अनुकम्पा करे॥

और फिर प्रीस्ट ऑल्टर के बीच में खड़ा हो कर पहले बाँहें फैलाता
फिर हाथ जोड़ता। और फिर क्रॉस की मुद्रा अंकित कर के कहने लगता—

स्वर्ग में ईश्वर का गौरव दीप्त हो। धरती पर सत्पुरुषों को शान्ति
मिले।

हम तेरा गुणगान करते हैं।
हम तेरी शुभाशंसा करते हैं॥

और इसी तरह आगे की क्रिया सम्पन्न हो जाती। फिर प्रीस्ट
'कलैक्ट' कही जाने वाली प्रार्थना पढ़ता—

हे ईश्वर, तूने ही मानवता के त्राता अपने पुत्र को जन्म दिया और
तू ने ही उसे यीशु नाम दिया। तू हम पर दया कर जिस से हम, जो
धरती पर उस का नाम कीर्तन करते हैं, स्वर्ग में उस के दर्शन करें।

'कलैक्ट' के अन्त में सर्वर कह उठा आमीन और तब प्रीस्ट ने
सम्बन्धित एपिस्टिल का पाठ पढ़ा। ये एपिस्टिल एपोस्टेल-द्वारा कि
हुए वर्णन होते हैं। अतीत के विवर में उड़ता हुआ मेरा मन गिरजे
लौट आया था। और मैं सुन रही थी प्रीस्ट को पाठ कर व
एपिसिल का— अ

"उन दिनों होली घोस्ट से आविष्ट पीटर ने उन से कहा—तुम जनता के राजकुमारों और वृद्धजन सुनो ......"

पर मेरी चेतना ने फिर झटका सा खाया और मैं सुन न सकी। फिर कहीं भटक गयी। एपिस्टिल समाप्त भी हो गया। उच्च स्वर में तभी सर्वर ने कहा—"ईश्वर का धन्यवाद है।" मैं अपने पिछले अभिभवों की पृष्ठभूमि में सोचने लगी—क्या उस सब के लिए भी ईश्वर का धन्यवाद है?

मैं यह सब सोचती ही रहती कि प्रीस्ट 'ग्रैजुएल' नामक प्रार्थना भाग का पाठ करने लगता—हे प्रभो, हमारे ईश्वर, हमारी रक्षा करो....

मैं इस से आगे जैसे सुन ही नहीं पाती। अपनी रक्षा का भार उस को सौंपने के स्वार्थ पर मैं चिढ़ सी उठती। मन ही मन मैं कुतर्क करती रहती। पर प्रीस्ट पाठ करता रहता। बीच-बीच में कुछ शब्दों का आशय मेरे मन पर अंकित हो जाता। पर मैं फिर खो जाती। बीच-बीच में मेरे कानों में ऐन्थेम के स्वर और 'एलले लूईया' की टेक पड़ती। मैं फिर स्वयं को समेटती। प्रीस्ट का स्वर सुनाई पड़ता—'ईश्वर तेरे साथ हो', सर्वर योग देता—'और तेरी आत्मा के साथ'। पर जैसे मैं न तो अपना अस्तित्व अनुभव कर पाती और न अपनी आत्मा को ही खोज पाती। मैं अपने प्रति ही अकरुण हो उठती। फिर उस करुणामय की करुणा कैसे पाती?

फिर गॉस्पेल का पाठ सुनाई पड़ता। पादरी पढ़ता जो सेण्ट ल्यूक ने कहा था—तब आठ दिन हो चुके थे। उस दिव्य शिशु के आठवें दिन के संस्कार का समय आ गया था। उस का नाम यीशु प्रचारित हुआ। पर यह नाम तो उस शिशु के गर्भ में आने से पहले ही देवदूत घोषित कर चुका था।

मैं ने यीशु के उस बाल-रूप की कल्पना की। हर रूप में यीशु मुझे प्रिय लगता था। यीशु के जितने भी चित्र मैं ने देखे थे वे तेज चलने वाली फ़िल्म की तरह मेरी आँखों के परदे पर प्रतिच्छायित हो उठे। मेरा सिर

ही अपने कष्टों को भूल उस के स्मरण में झुक गया। वह गिरजा,
ल्टर, वह 'होली मास' का समस्त कर्मकाण्ड, सभी कुछ तो तिरो-
गया। रह गया केवल यीशु। मरियम का दुलारा यीशु। आठ
का नन्हा यीशु। ओः कितना दिव्य होगा वह।
मेरा ध्यान सर्वर की वाणी से टूटता है—हे यीशु तू कीर्ति का
का है।

तभी मैं देखती प्रीस्ट को गॉस्पेल का चुम्बन लेते हुए। साथ ही
ह कहता—

गॉस्पेल के ये शब्द हमारे पापों का प्रक्षालन करें।

मैं फिर चिहुँक उठती। वही पाप की भीति! हम ने क्यों घेर रखा
है स्वयं को पापों से इतना? पाप की चिन्ता किये बिना हम क्यों नहीं
अपने यीशु का स्मरण कर सकते? पर मेरे चिन्तन से पराङ्मुख प्रीस्ट
अपने कर्तव्य में व्यस्त रहता। वह बाँहें फैलाता, हाथ ऊपर उठाता,
जोड़ता और 'क्रीड' अंश का पाठ करता—

मैं एक ही ईश्वर को मानता हूँ, वह जो सर्वशक्तिमान् पिता है।
वही जो स्वर्ग का निर्माता, धरती का स्रष्टा, हर दृष्ट-अदृष्ट वस्तु का सर्जक
है और प्रभु यीशु ही उस ईश्वर की एकमात्र औरस सन्तान हैं। और वह
अनादि है—सभी युगों से पूर्वजन्मा।

और इसी तरह विस्तृत होती हुई स्तुति 'आमीन' में विराम पा
लेती। फिर 'ऑफ़रटरी' का प्रसंग आता। बलि-भेंट का कर्मकाण्ड। मैं
देखती—प्रीस्ट ने ऑल्टर का चुम्बन लिया और फिर उपस्थित जनों की
ओर घूम कर कहा—"ईश्वर तुम्हारे साथ हो।" सर्वर ने योग दिया—
"और तुम्हारी आत्मा के साथ।" प्रीस्ट कहता—"आओ हम प्रा
करें" और वह पवित्र बाइबिल से पढ़ता—

"हे ईश्वर, मेरे प्रभु, मैं तेरा गुणगान करूँगा, अपने सम्पूर्ण मन
और मैं सदा के लिए गौरवान्वित करूँगा तेरा नाम। क्योंकि

तुम मधुर और कोमल हो। और उन सभी के लिए करुणाप्लुत जो शरणागत हैं। एलले लूईया।''

'ऑफरटरी' के पाठ की समाप्ति पर बलि-भेंट का कर्मकाण्ड आरम्भ हो जाता। प्रीस्ट पेटन (प्लेट) को उठाता जिस पर होस्ट (रोटी) रखी होती और यीशु से उसे स्वीकार करने की प्रार्थना करता। तब वह पेटन से क्रॉस अंकित कर के आस्तरण पर होस्ट रख देता, फिर चैलिस (पात्र) में शराब और पानी उँडेलता। वह उस जल को अभिमन्त्रित करता और फिर प्रार्थना करता कि हे प्रभु हम यह तुझे अर्पित करते हैं।

मुझे मदर सुपीरियर की प्रथम भेंट याद आती है। उन की कही बातें याद आती हैं। मैं उस सब कुछ के प्रति श्रद्धापन्न होना चाहती हूँ। उसी मानसिक संघर्ष में कर्मकाण्ड अग्रसर है। प्रीस्ट ने अब चैलिस से क्रॉस का चिह्न बनाया और फिर उसे आस्तरण पर रख कर वस्त्रखण्ड से ढक दिया। फिर हाथ जोड़ कर नमित भाव से प्रार्थना—हे प्रभो, हमें अपनी इस दीनता में, मन के पश्चात्ताप में अंगीकृत करो और—

और फिर दीप। गन्ध व्यवहार। शेष प्रार्थनाएँ। उन की टूटी कड़ियाँ मेरे कानों में गूँजतीं। स्वप्निल सा प्रभाव। कभी वे ध्वनियाँ मेरे अपने भीतर से उठती लगतीं तो कभी दूर, बहुत दूर से आतीं। बाह्य समीपता का बोध ही नहीं। और जब बोध होता तो मैं अनुभव करती 'सीक्रेट' वाले अंश को सब उपस्थित चुपचाप पढ़ते। मैं भी सावधान हो कर निःशब्द पाठ करती—हे करुणामय ईश्वर, तेरी ही करुणा से समस्त प्राणी जीवित हैं। हम अनुनय करते हैं—

मौनप्रार्थना समाप्त होती। प्रीस्ट गायन के ढंग से पुकार उठता—प्रलयहीन विश्व। सर्वर योग देता—आमीन। प्रीस्ट फिर 'प्रीफ़ेस' वाले भाग पर आता। वही घोषणाएँ—ईश्वर तुम्हारे साथ हो। और तुम्हारी आत्मा के साथ।

और फिर 'कम्यूनियन' से पूर्व की प्रार्थनाएँ। पवित्रीकृत रोटी और

के रूप में यीशु के रक्त-मांस का स्मरण। उस से एकाकार होने
कामना। उस के महान् बलिदान के प्रति कृतज्ञता। श्रद्धा, आशा,
विनम्रता की अनुभूति। साथ ही प्रीस्ट-द्वारा सम्पादित कर्मकाण्ड।
र पाठ—

हे ईश्वर, तुम से ही सब राष्ट्र उत्पन्न हैं। वे आयेंगे और तेरे समक्ष
ो तेरी पूजा करेंगे। वे तेरे नाम को गौरवान्वित करेंगे। क्योंकि तू महान्
और चमत्कारों का विधाता है। तू ही एकमात्र ईश्वर है। एलले लूईया।

इस के उपरान्त फिर प्रार्थना-स्वर गूँज उठते—

यीशु की आत्मा मुझे पवित्र करे।
यीशु की देह मेरी रक्षा करे
यीशु का रक्त मुझे परितृप्त करे
यीशु के पार्श्व का जल मेरा प्रक्षालन करे
यीशु का आवेश मुझे शक्ति दे।
हे प्रभु यीशु मेरी प्रार्थना सुन
अपने व्रणों में मुझे छिपा ले
मुझे अपने वियोग की पीड़ा न दे
दुष्ट शत्रु से मेरी रक्षा कर
मेरे मृत्यु क्षण में मुझे पुकार ले
और मुझे अपनी शरण में आने का आदेश दे कि मैं तेरे सन्तों
सहित तेरा गुणगान करूँ,
सदा, सर्वदा। आमीन।

इन प्रार्थनाओं को मैं ने इतनी बार सुना है, इतनी बार स्वयं
की तरह दोहराया है कि मैं इतने वर्षों बाद भी सपने तक में उन्हें
उठती हूँ। वह जीवन, जिस के दिये त्रास को मैं सह न सकी, कहीं
में मेरे अनजाने ही गहरे व्याप्त हो चुका था। मुझे कम्यूनियन
की वे प्रार्थनाएँ याद आ रही हैं। यीशु की क्रॉसविद्ध प्रतिमा के

प्रार्थना। और फिर अन्तिम निवेदन—

हे मेरे प्रभो! अब मैं इस क्षण तेरे द्वारा हर प्रकार की मृत्यु के लिए प्रस्तुत हूँ। वह मृत्यु जो सब प्रकार की वेदनाओं, यातनाओं और दुखों से आपूर्ण हो।

पर मेरा मन विद्रोह करता। मैं ने वेदना, दुख, कष्ट क्या कम भोगे जो उन की ओर याचना करूँ। मैं अपने यीशु के चरणों में खड़ी हो कर ही विद्रोह की गूँगी आवाज़ उठाती। पता नहीं उस करुणामय ने कभी मुझ पर तरस खाया भी या नहीं।

मैं अपने मन से जूझती रहती। उधर कम्यूनियन के समस्त कर्मकाण्ड को पूरा कर के प्रीस्ट प्रार्थना करता—

हे सर्वशक्तिमान् और सनातन ईश्वर, तू ने ही हमें पैदा किया। तू ही हमारा मुक्तिदाता है। तू उदारतापूर्वक हमारी प्रार्थनाएँ सुन—

मैं फिर खो जाती। ऑल्टर पर मेरी दृष्टि चंचल हो कर फिरने लगती। अभी-अभी समाप्त हुआ 'कम्यूनियन' का कर्मकाण्ड मुझे वहीं फिर से घटित होता दीखता। लगता जैसे यह कभी बन्द न होगा। जब तक यीशु की गाथा शेष है तब तक यह भी। मैं श्रद्धानत हो कर अपने प्यारे यीशु के बलिदान पर आँसुओं से भर उठती। पर मेरी कोमल भावनाएँ पादरी और कुवॅर के तीव्र स्वरों से चौंक उठतीं। वे कुछ नहीं मंगल कामनाएँ ही तो कर रहे हैं—

ईश्वर तुम्हारे साथ हो
और तुम्हारी आत्मा के
ईश्वर को धन्यवाद बार-बार

फिर आशीर्वचन। ऑल्टर के सामने खड़ा हो कर प्रीस्ट कहता—
हे पवित्र त्रिदेव, मेरा यह सम्मिलित अनुष्ठान तुम्हें स्वीकार करे। और मैं ने जो यह बलि-भेंट का उपक्रम किया, मेरे तन के अयोग्य होने पर भी हे त्रिदेव, यह तुम्हें स्वीकृत हो।

आशीर्वचन पूरा सुन ... नहीं पाती। वह समास होता है, प्रीस्ट
का चुम्बन करता है। आँखें उठाता है। अपने हाथ फैलाता,
ा और जोड़ता है। फिर नतमस्तक हो कह उठता है—सर्वशक्तिमान्
र जो पिता है, उस का महान् पुत्र और होली घोस्ट तुम्हें
शीर्वाद दें।

सर्वर कह उठता है—आमीन।

और फिर अन्तिम गॉस्पेल। उस गॉस्पेल के साथ ही 'होली मास' का विधिवत् सम्पादन। सेण्ट जॉन के गॉस्पेल का पाठ—

"सृष्टि के आदि में शब्द था। वह शब्द ईश्वर के पास था। वह ईश्वर ही सब कुछ का स्रष्टा था। उसी में जीवन का बीज था और वह जीवन मनुष्य की ज्योति था। ज्योति अन्धकार में दीप्त होती है और अन्धकार उस ज्योति का ग्रास नहीं कर सका।

"फिर ईश्वर ने जॉन को भेजा। वह साक्षी रूप में आया। प्रकाश की साक्षी के रूप में। वह स्वयं प्रकाश न था पर उस का प्रत्यय कराने आया था।

"ईश्वर संसार रूप था। संसार को उस ने निर्मित किया था। फिर भी संसार उस से अजान था। उस के अपने ही रूपों ने उसे नहीं पहचाना। और जिन्होंने पहचाना उन्हें उस ने ईश्वर का पुत्र बनने की शक्ति दी वे जो उस में श्रद्धापन्न हैं। जो रक्त से नहीं उपजे, और न मांस व भौतिकता से। न वे मनुष्य की इच्छा का परिणाम हैं। वे केवल ई का अंश हैं।"

तभी मैं ने देखा वहाँ उपस्थित हर कोई नतजानु हो गया था। यन्त्रचालित सी उस समूह की तरह व्यवहार करने लगी थी। और का स्वर हम सब के सिरों पर से उड़ता हुआ चर्च की दीवालों से कर गूँज पैदा कर रहा था। वह गॉस्पेल का पाठ करता हु
ता था—

"और शब्द ही मांस बना और हम में वास करने लगा। और हम ने उस की महानता का दर्शन किया। वह महानता जो सत्य-सुन्दर से समन्वित उस पिता में ही सम्भव है।"

प्रीस्ट का स्वर शान्त हुआ था। पर उस के स्वर की गूँज समाप्त भी न हो पायी थी कि सर्वर उद्घोष कर उठा था—

"ईश्वर का धन्यवाद हो।"

और समय बीतता गया। एक यान्त्रिक दिनचर्या। मुझे आज और कल में कोई अन्तर न दीखता। हर रात एक सी लगती। फिर भी मैं रात का इन्तज़ार करती। रात में यन्त्रबद्धता समाप्त जो हो जाती! यह सच है कि एक निश्चित समय से हर किसी को अपने बिस्तर में पहुँच जाना पड़ता। यह भी सच है कि एक निश्चित समय से हर कक्ष की बत्ती बुझ जाना आवश्यक थी। फिर भी उस सीमा में मैं स्वतन्त्रता अनुभव करती। कोई मुझे यह मानने को विवश न करता कि मैं पापिन हूँ, कि मेरी मुक्ति उन पापों की स्वीकृति और उन की पुनः प्रवृत्ति को रोकने में ही है।

अचरज की बात यह कि दिन इतनी व्यस्तता से भरा होने पर भी मुझे शून्य सा लगता। लिटर्जिकल कलैण्डर के अनुसार हर दो-चार दिन पर कोई न कोई विशेष धार्मिक कृत्य होता। पूरे साल ऐसा ही। फिर नये साल का आरम्भ भी वैसे ही। चारों ओर उन धार्मिक कृत्यों और पर्वों के लिए मैं उत्साह देखती। बीच-बीच में फ़ीस्ट, उत्सव-पर्व, सेण्ट फ़्रान्सिस ज़ेवियर्स की फ़ीस्ट। कैसी धूम मचती। गोआ के अधिष्ठाता सन्त फ़्रैन्सिस ज़ेवियर्स! बैजेलिका ऑव बोम जीजस नाम से प्रसिद्ध प्राचीन कैथेड्रल के ऑल्टर पर रखे चाँदी के बक्स में उन का शव सुरक्षित। चमत्कार हो न कि सैकड़ों वर्षों से अविकृत निर्गन्ध शव? पर मेरी आस्था इस महान् सन्त के मरणोत्तर चमत्कार से भी बल नहीं पाती। मैं अनास्थ

ी रहती। और भी फ़ीस्टें होतीं : फ़ीस्ट ऑव रेज़ मागुस, फ़ीस्ट
जीज़स द नैज़ेरीन, फ़ीस्ट ऑव अवर लेडी ऑव इम्मैक्युलेट कन्सेप्शन।
कोई भी फ़ीस्ट मेरे मन को ख़ुशी न दे पाती। मैं उन की एकरसता
ऊब उठती। प्रार्थनाएँ बदल जातीं। इण्ट्रॉयट, कलेक्ट, एपिस्टिल,
गुएल, गॉस्पेल, ऑफ़रटरी सीक्रेट, कम्यूनियन, पोस्ट-कम्यूनियन के शब्द
दल जाते, पर मुझे 'होली मास' के इन अंगों में कोई नवीनता नहीं
लगती। कभी 'कुछ' बढ़ जाता तो कभी कुछ, 'हिम' और 'एन्थेम' बदल
जाते। पर प्रीस्ट वही होता, वही सर्वर। कभी डेकन और सब-डेकन भी।
फिर पूरा कर्मकाण्ड। शराब और रोटी का पवित्रीकरण। ऑल्टर पर
वलि। शराब और रोटी का यीशु के रक्त-मांस में परिवर्तन। कम से कम
आस्तिकों की वैसी ही धारणा। फिर कम्यूनियन-रेलिंग के पास जाना,
झुक कर नमन करना, होली होस्ट (पवित्रीकृत रोटी) के टुकड़े का प्रसाद
लेना। सब कुछ वैसा ही। और सब त्रासद। स्वयं को पापी घोषित
करना। बस यह घोषणा ही मेरे शान्त मन को विक्षुब्ध कर देती। मैं
हर व्यवस्था और आस्था स्वीकार कर सकती थी, पर यह नहीं। मैं
कम्यूनियन-रेलिंग के पास झुक कर नमन करती हुई मन ही मन
प्रभु यीशु से कहती—मेरे पिता, ओ सर्वज्ञ, मैं सचमुच ही निर्दोष हूँ
मैं ने सच ही कोई पाप नहीं किया।

फिर भी समय-समय पर कन्फ़ैशन के लिए जाना पड़ता। वही इ
मात्रेज़ का चर्च। गोआ की अधिष्ठात्री देवी 'अवर लेडी ऑव इम्मैक
कन्सेप्शन' का पवित्र चर्च। फिर कन्फ़ेशनल के इस ओर मैं, उस
प्रीस्ट। वही प्रार्थनाएँ। प्रार्थना के बाद मेरा मौन। मौन को भंग
हुआ प्रीस्ट का भारी पर स्पष्ट स्वर। पर उत्तर में बताने को
कोई अपराध नहीं होता। एक बार मैं ने आर्त हो कर कहा था—
करने का अवसर तो दो, अगर चाहते ही हो कि मैं उन का कन्फ़े
पर प्रीस्ट ने कहा था—तू ने अभी धर्म का मर्म नहीं स

तू ने पाप नहीं किया होता तो यीशु की अलौकिक सन्निधि में स्वर्ग के अपाय सुखों में रमती। ऐसे भी पाप हैं जो मार्जनीय नहीं। ऐसे भी पाप हैं जो मार्जनीय और अवारणीय हैं। यह लौकिक दृष्टि है। पर यीशु की दृष्टि में सब पाप क्षम्य हैं। अनेक पाप हैं जो शरीर से नहीं मन से होते हैं, कर्म में नहीं संकल्प में होते हैं। जब तक धर्म की सम्पूर्ण साधना न हो जाये उस तरह के पाप-विकार उगेंगे ही। तुम उन की स्वीकृति में हिचकती क्यों हो ?

इस पर मैं ने कुछ आविष्ट हो कर कहा था—तो मेरा पाप यही है कि मैं आज तक स्वयं को पापिन नहीं मान पायी। मेरा इस क्षण भी यही विश्वास है कि मैं निष्पाप हूँ।

प्रीस्ट ने कहा था—तुम में अतिशय दुराग्रह है। तुम अपने मन को धर्म के आलोक से प्रकाशित होने देना नहीं चाहतीं। पर मेरा विश्वास है एक दिन ऐसा आयेगा ही। तुम्हारे मन के कपाट खुल जायेंगे। प्रकाश का ओज उस के रन्ध्र में घुस कर अन्धकार का ग्रास कर लेगा। और तब तुम समझोगी पाप क्या है, पुण्य क्या है ?

मन की इसी अनास्था के साथ मैं पोस्चुलैण्ट (नन बनने की उम्मीदवार) से नौविस हो गयी। फिर नौविस या नवीना की कक्षा भी पार कर ली। एक वर्ष बाद मुझे सिस्टर की हैबिट (भूषा) मिल गयी थी। फिर वह समय भी आया जब मुझे क्रॉस भी मिला। उस से भी मैं आगे बढ़ी। ईश्वर की वधू होने की दिशा में बढ़ती गयी। पर ज्यों-ज्यों परम गौरव का वह क्षण समीप आ रहा था मेरे मन की ज्वाला उद्दाम होती गयी। मैं नित्य ही चर्च में ऑल्टर पर शराब का यीशु के रक्त में परिवर्तन देखती। वह रक्त का संस्कार मुझे बावलेपन से भरने लगा। मैं एक ही रक्त से परिचित थी, जो मेरा अपना पवित्र रक्त था, जो एक अबोध और अनाथ बालिका के रूप में मुझे एक पशु की वासना को देना पड़ा था। मैं सहम उठती। सिन्योर परेरा का वह काष्ठ स्पर्श मेरे मन

पोलियों सी सिहरनें भर देता । वह स्पर्श मुझे कुछ ऐसा एहसास
ता जैसे मैं स्वयं क्रॉस पर कील दी गयी । वह शराब की बेहोशी ।
बेहोशी में वह अनाचार और अन्धकार के गर्भ से जन्म लेने वाला वह
ात । बस रक्त ही रक्त । मैं उस प्रसंग को याद कर के रो पड़ती ।
सी भी रात को रो पड़ती और आने वाली सुबह के प्रकाश से मुझे
त्रास होने लगता ।

बस रक्त शब्द ही मेरे मन की ग्रन्थि बन गया । किसी भी प्रसंग म
उस का प्रयोग मुझे एक ही बोध देता ; मेरी पवित्रता की हिंसा । और
मैं प्रतिहिंसा से भर उठती । पर कहाँ हुई मेरी प्रतिहिंसा सफल ? काश
मैं बदला ले पाती । वह कितना भी निरर्थक क्यों न होता, मेरे मन के
दंशन को तो हर लेता । प्रतिहिंसा की वह भावना, दमितरूप में और भी
भयानक हो उठी थी । मेरे अन्तर्मन में एक कठोर गाँठ पड़ गयी थी ।
वह गाँठ हर किसी उपदेश भावना को गोली बन कर बींध डालना
चाहती । मैं कुछ भी कर के न तो रक्त के उन धब्बों को अपने मानस-
पटल से मिटा पायी और न गला पायी प्रतिहिंसा की उस गाँठ को ।

एक बार मेरे कन्फ़ेशन के अवसर पर ही एक प्रीस्ट ने मुझे समझाय
था—क्यों नहीं वह सब कुछ यीशु को समर्पित कर देतीं ? अपने मन
सारे बोझ को उसी पर छोड़ दो । तुम्हारे रक्त के धब्बों को वह अप
कृपादृष्टि से उज्ज्वल कर देगा । तुम्हारी प्रतिहिंसा की ग्रन्थि को उस
पवित्र मुसकराहट खोल देगी । यह व्यवस्था भी वह स्वयं कर दे
किसे किस अपराध के लिए कौन सा दण्ड पाना चाहिए ।

पर वह सब विश्वास की बात थी । मैं अपने प्रताड़ित मन मे
उज्ज्वल विश्वास पैदा ही नहीं कर पाती थी । 'होली मास' से
मैं आती तो अपने चारों ओर रक्त के कुरूप धब्बों को भुनगों
देखती । कभी-कभी मेरी दृष्टि उन से इतनी धुँधला उठती कि
ति में भी ठोकर खा जाती या साथ चलती किसी दू

से टकरा जाती।

यह सब होता गया। उस त्रास को मैं भोगती गयी। पर मैं किसी को अपनी वेदना समझा न पायी। हर कोई मुझे ही मूर्ख समझता।

सिन्योर परेरा की पत्नी मेरी माँ हैं। उन की कोख से ही मैं ने जन्म लिया। यह संस्कार सिन्योर परेरा के उस कृत्य को और भी अक्षम्य बना देता। और मैं यीशु की कृपा की गुहार न दे कर जोज़े को पुकार उठती। वह अब सैनिक था। उस के पास बन्दूक थी। उस की एक गोली ही परेरा नाम के पशु के वध को पर्याप्त होती। कोई मुझे आ कर यह सूचना दे जाता तो मैं कितनी हल्की हो उठती। मैं ईश्वर की आदर्श वधू बनती। धर्म के गौरव को बिना तर्क के स्वीकार कर लेती। उस की मर्यादा को असन्दिग्ध मन से समर्पित हो जाती। पर वैसा नहीं हो रहा था। मेरी आत्मा को ढकने वाले रक्त के काले धब्बे सिर्फ़ सिन्योर परेरा के रक्त से ही धुल सकते थे और उसी रक्त से मेरी प्रतिहिंसा की आग बुझ सकती थी।

जब तक मैं परेरा परिवार में थी मैं प्रतिहिंसा की भावना के इतने अधीन न थी मेरा अपना उद्योग जो चल रहा था। मैं सिन्योर परेरा को ऐसा दंशन देने की योजना जो कर रही थी जिसे वह कभी भूल न पाये। तब उसे ज़हर दे कर सुला देने या उसी के रिवॉल्वर से उस का वध करने की कल्पना मुझे आनन्दित नहीं कर पाती। मेरा आनन्द था उस के धीरे-धीरे मरने में। मेरे दिये हुए दंशनों के त्रास से पागल हो कर मरने में।

पर मेरा वह सपना पूरा नहीं हुआ। ननरी में आयी। सोचा मन की शान्ति यहाँ पा लूँगी। प्रतिहिंसा से ऊपर उठ जाऊँगी। पर नहीं हुआ वैसा! उलटे मेरी पूर्व प्रतिहिंसा उग्र हो उठी। ज्यों-ज्यों मैं प्रतिहिंसा की अक्षमता से भरती गयी त्यों-त्यों वह विकराल हो कर मुझे अस्थिरता और अशान्ति देने लगी। अगर मैं यह पहले ही जान पाती कि ननरी का जीवन मुझे शान्ति न दे पायेगा तो मैं कभी न आती, हरगिज़ न आती।

अब यहाँ से लौटना मुझे अपनी निकृष्ट पराजय लगती। उसे सहने मैं तैयार न थी। मैं दुनिया ही नहीं छोड़ कर आयी थी बल्कि जोज़े तिरस्कार भी कर के आयी थी। उस से दो शब्द तक तो बोली न ा। उस ने यहाँ भी मिलने की कोशिश की थी, मगर मदर सुपीरियर ने आज्ञा नहीं दी थी।

मेरे उस अतीत की एक ही आकृति सदेह मुझ से मिलती। वह थी ममी की करुणा भरी आकृति। आल्दा-इमैल्दा शुरू-शुरू में आयीं। फिर नहीं। सिन्योर परेरा ने दो-एक वार मिलने की चेष्टा की थी पर मैं ही नहीं मिली। एमैरिक भी आया। मैं उस से मिली तो पर उस की किसी भी वात का उत्तर न दिया। वह काफ़ी बाद तक आता गया। उस के पत्र भी मिले। पर मैं विना पढ़े ही उन्हें फाड़ देती। और इस तरह उस अतीत से दूर, वहुत दूर, भागने की चेष्टा में भी मैं अपनी प्रतिहिंसा से नहीं भाग सकी थी। और जव-जव रक्त और मांस की चर्चा उठती, मैं बौराने लगती। तुम नहीं समझोगे कि मैं कितनी अभागिन हूँ। 'होली मास' में नित्य शामिल हो कर भी मैं उस से स्वयं को पवित्र न कर सकी। रक्त और मांस के रूप में पवित्रीकृत शराव और रोटी मुझे यी के महान् वलिदान के गौरव से भर ही नहीं सकी, जो ईश्वर के मात्र दुलारे वेटे ने सारी मानवता की रक्षा के लिए हँसते-हँसते कि था। उलटे मैं उस पवित्र रक्त में अपना ही दूषित रक्त देखती और उठती।

पर हर वात का अन्त होता है। मेरे इस त्रास का भी अन्त पर कैसा दारुण अन्त। एक दिन एक सिस्टर नहाने जो गयी पांव फिसल गया। फलतः गिरी तो सिर दीवाल से टकरा कर फ वह उस का अशुचिकाल था। शरीर के अन्दर भी कुछ ऐसी चं कि वह रक्त से भर उठी। सिर से रक्त, भीतर से रक्त। उस के गिरने की आवाज़ सु ... निकल रही थी।

दौड़ी और वहाँ जो रक्त ही रक्त देखा तो मैं कुछ भी नहीं कर सकी। मेरे हाथ-पाँव सुन्न पड़ गये। मुझे लगा जैसे खून की आँधी उठी, खून के बादल घिरे, खून की वारिश हुई, सिन्योर परेरा की वीभत्सता से भर कर खूनी बिजली तड़पी। और बस मुझे इतना ही बोध है कि मैं बेहोश हो कर गिर पड़ी थी।

फिर जब उपचार के बाद होश आया तो भी मैं होश में न थी। मैं स्वयं नहीं जानती मुझे क्या हो गया था, मैं क्या बकने-झकने लगी थी। बाद में मुझे बताया गया मैं पागलों की तरह व्यवहार करने लगी थी। चुपचाप बैठी रहती। पर जहाँ किसी तरल पदार्थ को देखती कि 'खून-खून' चिल्ला उठती। मुझे पानी जैसे-तैसे कर के पिलाया जाता। गिलास होंठों तक आता कि मैं 'खून-खून' चिल्लाने लगती। गिलास के जल में मुझे कोई सूरत दिखाई देती और मैं ज़ोर-ज़ोर से पुकारती हुई कहती—खूनी यहाँ छिपा बैठा है। खून के इस कुण्ड में बैठा है, पकड़ो। पकड़ लो। नहीं फिर भाग जायेगा।

इसी तरह मुझे पागलपन के दौरे पड़ने लगे। होश में आती तो मैं सब कुछ भूल जाती। मुझे विश्वास ही न होता कि मैं ने वैसा प्रलाप किया। एक अजीब बात यह भी हुई कि अब होश में आने पर मेरी चेतना सिन्योर परेरा की ओर नहीं जाती। जैसे उन का वह दुर्दान्त कृत्य एक अजीब ग्रन्थि बन कर मेरे व्यक्तित्व के किसी गहरे तल में समा गया था और वह ग्रन्थि तभी उभरती जब दौरा पड़ता।

इतना कह कर रुथ आत्मकरुणा से भर उठी थी। उस ने मेरी ओर पिघली हुई दृष्टि से देखा। मैं घुटनों पर सिर रखे उस की कथा सुन रहा था। नींद पहले ही जाने कहाँ चली गयी थी। समय किस दिशा में उड़ा चला जा रहा है इस का बोध तक न रहा था। उस के चुप होने पर अब मैं ने आँख उठा कर देखा तो मग्न प्रतिमा सी रुथ सामने थी और मैं जाने कैसे फिर भी पूछ बैठा था—फिर?

थ ने एक गहरी साँस छोड़ कर कहा था—फिर ? फिर कथा की
ही बदल गयी। मुझे इलाज के लिए राँची भेज दिया गया। बिजली
ॉक लगाये जाते। मेरा मनोवैज्ञानिक इलाज होता। कुछ ही महीनों
में सामान्य हो गयी। डॉक्टर ने जाने कब कैसे मेरे पूरे अतीत को जान
या था। मुझ से ही प्रश्न कर-कर के शायद। सिन्योर परेरा के कुकृत्य
को भी जान लिया था और मेरी दमित प्रतिहिंसा के बारे में भी। फिर
मेरे ठीक होने पर उस ने मेरे मनोभावों का विश्लेषण कर के हँसते हुए
कहा था—बेटी, मेरी अच्छी बच्चो, अब तुम फिर कभी अपने को इस
तरह नहीं भूलोगी। सच्चाई को जानने के बाद उसे स्वीकार कर लेना
ही सहज जीवन का लक्षण है। अपने पागलपन के दौरों में इसी अस्पताल
में तुम ने कई आदमियों का खून किया है।

मैं आतंक से चीखना ही चाहती थी कि उस ने मुसकराते हुए मुझे
आश्वस्त किया—सचमुच के आदमी नहीं मेरी बच्ची, सिर्फ़ पुतले।
तुम्हारी दमित इच्छाओं के अध्ययन के लिए मैं ने वह रास्ता निकाला
था। मुझे एक बार तुम्हारे प्रलाप से कुछ ऐसा आभास मिला था कि तुम
किसी से बदला लेना चाहती हो। तुम्हारी वह इच्छा अधूरी ही रही !
मुझे लगा जैसे वही सब तुम्हारे इन दौरों के मूल में है। मैं देखा करत
था कि उन पुतलों को तोड़-फोड़ कर तुम शान्त और सामान्य हो जा
थीं, साथ ही तुम्हारी आँखों में आँसू भर आते थे और तुम अपराधी
तरह कहने लगतीं—'मुझे माफ़ करना माँ। मैं ने तुम्हारे पति की
कर दी। मैं नहीं चाहती थी कि वैसा करूँ। पर माँ, बस हो ही
हत्या।' और तब तुम दीवाल से लिपट कर ऐसे रोने लगती जै
तुम्हारी माँ हो।

डॉक्टर की बातें सुन कर मेरे मन में एक नया संस्कार जा
डॉक्टर, लम्बी दाढ़ी, करुणा भरी आकृति : जैसे जन्म से ही
... प्रति गहरे प्यार से भर उठती और सोचने लगती

परेरा की हत्या या मृत्यु ममी के लिए कितनी पीड़ा-सन्ताप की बात होगी यह सोच कर मैं सिन्योर परेरा के प्रति क्षमा भाव से भर उठती। मैं ममी को प्यार करती हूँ और ममी का सुख उन से जुड़ा है, इस संस्कार ने मुझे सहजता दे दी थी।

मैं सोच रही थी यह सब। मुझे सोचते देख डॉक्टर ने कहा था—ज्यादा मत सोचा करो मेरी बच्ची। तुम समझदार हो और मुझे यकीन है कि अब तुम कभी ऐसे दौरे का शिकार न होओगी। तुम ने अपने भीतर छिपे शत्रु को पहचान लिया है, अब वह तुम से हरगिज कोई चालबाजी नहीं कर सकेगा।

मैं ने कहा था—मैं आप की बात सही साबित करूँगी डॉक्टर। मुझे अफ़सोस है कि मैं ने खून के कुछ धब्बों को अपनी जिन्दगी पर इस तरह छा जाने दिया।

मैं टूटी-फूटी हिन्दी में डॉक्टर को अपनी बातें समझाती रही। डॉक्टर ने उसी कोमलता से भर कर कहा था—अब अफ़सोस की भी जरूरत नहीं मेरी बच्ची, वह सब समाप्त हुआ। अब तुम बताओ तुम्हारी आगे की योजना क्या है?

मैं ने कहा था—कुछ नहीं जानती। शायद जहाँ से आयी हूँ वहीं वापस लौट जाऊँ।

डॉक्टर ने पूछा था—तुम्हारा मतलब अगर ननरी से है तो मैं सलाह दूँगा वैसा मत करो। तुम्हारी ममी भी यही चाहती है कि तुम अब ननरी न लौटो।

मैं ने कहा था—तो मैं फिर गोआ में जाऊँगी कहाँ?

डॉक्टर का उत्तर था—क्या जरूरत है वहाँ जाने की? तुम्हारा देश भारत बहुत बड़ा है, तुम उस के बारे में कुछ नहीं जानती। अपना देश ही देखो। अपने लिए यही काम खोज निकालो।

पर मैं तो खाली हाथ हूँ डॉ [illegible]

पाऊँगी ?

डॉक्टर ने बताया—ऐसी बात नहीं बेटी। तुम्हारे नाम यहाँ के
लल बैंक में पाँच हजार रुपये जमा हैं। तुम्हारी ममी ने ही भेजे हैं।
उन का पत्र है।

डॉक्टर ने एक बन्द लिफ़ाफ़ा मुझे दिया। मैं ने अधीरता के साथ
उसे खोल कर पढ़ा। मैं पढ़ रही थी और रो रही थी। सिन्योर परेरा
की मृत्यु हो गयी थी। मेरे नाम वे अपनी सम्पत्ति में से बराबर का
हिस्सा छोड़ गये हैं। यह पाँच हजार रुपये उसी में से थे। गोआ में दमन
बढ़ चला था। ममी चाहती थीं कि मैं अभी हिन्दुस्तान में ही रहूँ।
उन्होंने यह भी लिखा था कि अपना पता जब भी बदलूँ तो फ़ौरन खबर
दूँ। पत्रों पर कड़ा सेंसर है इसलिए ऐसी वैसी कोई बात न लिखूँ। रुपये
की जरूरत हो तो स्पष्ट न लिखूँ, वे कोई न कोई इन्तज़ाम कर के बराबर
भेजती रहेंगी। उन्होंने बम्बई में रहने वाले अपने एक मित्र का पता भी
दिया था। कहा था वे मेरी हर तरह की मदद कर सकेंगे। यह भी
लिखा था कि आल्दा की शादी लगभग पक्की है। समय से हो जायेगी।
एमैरिक लिस्बन चला गया है। इमैल्दा ठीक है। वे सब मुझे याद
करते हैं।

मैं पत्र को समाप्त कर के रिक्त हो उठती थी। सिन्योर परेरा की
मृत्यु के समाचार से मैं सचमुच ही दुखी हुई। मेरे आँसू थम नहीं
थे। डॉक्टर मुझे अकेला छोड़ गये थे। जैसे इस शोक समाचार से
परिचित ही हों।

आगे की मेरी कहानी वर्षों लम्बी है। उद्योग और साधना से
पर कहने में थोड़ी ही है।—रुथ ने कहा था।

मैं ने सोचा शायद वह समझ रही है कि मैं उस की कथा के

से ऊब चला हूँ। कहा—पर मैं तो उसे विस्तार से सुनने को उत्सुक हूँ।

उस ने दार्शनिक की तरह कहा था—पर उस के विस्तार में सार नहीं। नाटक में भी हर घटना को ऐक्शन में नहीं दिखाया जाता। सूक्ष्म दृश्यों का विधान भी शिल्प की सीमाओं में जरूरी हो उठता है।

कह कर वह हँस पड़ी थी—हिन्दुस्तान में रह कर मेरे सोचने का ढंग काफी बदल गया है। मैं ने इधर कुछ पढ़ा भी है। अब मैं उतनी अज्ञ नहीं।

अज्ञ तुम कभी नहीं थीं—मैं ने भावुकतावश कह दिया था।

वह बोली—तो अब शेष कथा भी सुन लो। रांची से चल कर मैं ने कुछ समय देशाटन में बिताया। पूरब में दार्जिलिंग तक गयी, कंचनजंगा और टाइगर हिल के दिव्य सौन्दर्य को मैं कभी नहीं भूल पाऊँगी। वहाँ से कुछ ऐसी प्रेरणा मिली कि मैं शहरों की बजाय पहाड़ों की ओर दौड़ी। हिमालय की मौन निस्तब्धता जैसे अपनेआप में मुखर थी। भारत की विराटता की कल्पना भी जैसे महान् हिमालय के बिना असम्भव है। कुमायूँ की पहाड़ियों में भी मैं खूब घूमी। चौबटिया से हिमालय का जो दर्शन किया वह अपूर्व है। भव्य और विराट्, दिव्य और महान्, ये विशेषण भी ओछे पड़ते है उस के प्रभाव को व्यक्त करने में। फिर कश्मीर भी गयी। अमरनाथ तक। हँसोगे मैं अमरनाथ करने क्या गयी! पर मैं गयी और एक शान्त व्यक्तित्व ले कर लौटी। कांगड़ा की पहाड़ियाँ छूट गयी थीं। बाद में उधर भी गयी। अकेली ही। रास्ते में नये परिचय हो जाते। रास्ते में ही पुराने पड़ जाते। रास्ते में ही विस्मृत हो जाते। यह भी अद्भुत अनुभव था। सब कुछ पाते-भोगते भी, किसी में लिप्त न होना। न व्यक्ति की आसक्ति न वस्तु की। मुझे वे दिन अपने जीवन के सब से प्यारे दिन लगते हैं। निःसंग हवा की तरह शैल-शिखरों, घाटियों, वनों में बहते रहना। जहाँ-जहाँ जाती वहाँ-वहाँ से मम्मी को पत्र लिखती। उन के पत्र कभी मिलते, कभी नहीं। जब कहीं कुछ दिन टिक पाती तो

ूचना मिल जाती । नहीं तो मैं आगे वढ़ती रहती । उन के उत्तर
ीछे-पीछे ढूंढ़ते रहते ।

इसी तरह एक वर्ष वीत गया । वीच में एक वार रुपये की आवश्यकता
ड़ी । वह विना माँगे ही मिल गया और अन्त में मैं वम्वई आ गयी ।

वम्वई गोन लोगों की दूसरी जन्मभूमि है । गोआ ही हमारा नहीं,
म्वई भी हमारी है । गोआ की आजादी की लड़ाई गोआ से अधिक वम्व
में लड़ी गयी । अपने वम्वई के आवास में मैं अपनी आजादी की लड़ाई के
सम्पर्क में आयी । भारत के एक वर्ष के भ्रमण ने मुझे स्वतन्त्रता के सच्चे
रूप का दर्शन करा दिया था । कदाचित् गोआ में रहते मुझे यह वोध
कभी न होता । इस वोध के साथ मैं अकुलाहट से भर उठी थी । गोआ
का पोर्चुगीज़ शासन में रहना मुझे कुछ वैसा ही लगता था जैसे वहुत से
वच्चों वाली माँ के एक वच्चे को किसी आततायी ने अपने क़ब्ज़े में कर
लिया हो । भिन्न-भिन्न प्रदेशों में रहने वाले, तरह-तरह की मीठी
वोलियाँ वोलने वाले भारत माँ के ये वच्चे 'जनगण मन' गीत-माला के
मनके थे । हमारा गोआ उस माला से अलग पड़ा था । माला को
सम्पूर्णता देने के लिए उस का अपनी माँ की गोद में लौट आना
आवश्यक था ।

यह सव मैं सोचती । सोच-सोच कर वेचैन हो उठती । मन करत
कि कोई ऐसा चमत्कार हो जाये कि गोआ रातोंरात भारत से आ मिले
मैं भारत में आ कर ही स्वतन्त्र विचारों वाले अखवारों से परिचित हु
उन्हें पढ़-पढ़ कर जाना कि गोआ में रह कर हम कैसा वन्दी जीवन
रहे हैं । सारा प्रदेश ही जेल है । ए क्लास के क़ैदियों जैसी सुविधा
हैं पर आत्मा पर कितने पहरे हैं । मन के विकास को कितना अवरु
दिया गया है ।

ममी के वम्वई वाले मित्र थे मैतियास फ़ान्सिस्क मॉन्तेरियो
में सर्जन थे । वृद्ध और उदार । वड़ा परिवार । तीन लड़के, सु

प्रोफ़ेसर, पत्रकार और बिज़िनेस एक्ज़िक्यूटिव। तीनों की पत्नियाँ, बच्चे। तीन लड़कियाँ। सब साथ रहते। बड़ा सौहार्द। मैं भी उन में जा कर उन्हीं की हो गयी। डॉक्टर मॉन्तेरियो ने पहले ही दिन स्पष्ट कर दिया था—बेटी एक बात तुम अच्छी तरह जान लो कि जब तक तुम बम्बई में हो इसी घर में, इसी परिवार के सदस्य के रूप में रहना होगा।

मैं ने कहा था—पर मैं तो सोचती थी कि आप की सहायता से कोई अच्छा काम पा लूँ और फिर आप का आशीर्वाद ले कर आप पर बोझ बन कर न रहूँ।

नॉन्सेन्स !—डॉक्टर मॉन्तेरियो ने कहा था। देखती नहीं हो मेरे परिवार में हर कोई कुछ न कुछ कमाता है। मेरे तीनों लड़के ही नहीं, तीनों लड़कियाँ भी। सिलोना टीचर है, सैल्वा गायिका, जुलेत इंजीनियर। लड़कियाँ इंजीनियर कम ही मिलेंगी। जब शादी होगी तभी वे मुझ से अलग होंगी। तुम भी उन की तरह रहोगी। हाँ जब शादी कर लोगी, तो मैं तुम्हें खुद उस दूसरे घर पहुँचा आऊँगा।

मैं प्रौढ़ मन पा कर भी लजा गयी थी और डॉक्टर मॉन्तेरियो वृद्ध हो कर भी बालक की तरह हँस पड़े थे।

बस मैं डॉक्टर अंकिल के परिवार का अंग बन गयी थी। मैं उन्हें खाली अंकिल न कह कर डॉक्टर अंकिल ही कहती। वे मजाक में कहते—लगता है तुम्हारे अंकिल ढेरों हैं। डॉक्टर अंकिल, प्रोफ़ेसर अंकिल, लीडर अंकिल, ऑसिक्यूटर अंकिल और जाने क्या-क्या। इसी से कहती हो डॉक्टर अंकिल। क्यों?

फिर भी मैं खाली अंकिल नहीं कह पायी। आरम्भ में मैं ने नर्सिंग की ट्रेनिंग ली। ननरी में रह कर यह काम किया ही था। फिर डॉक्टर अंकिल के क्लिनिक में काम करने लगी। पर डॉक्टर अंकिल मेरे लिए कोई और ही व्यवस्था सोच रहे थे। कुछ ही समय बाद उन के प्रयत्न से मुझे 'एअर इण्डिया' में होस्टेस की सर्विस मिल गयी। होस्टेस बन कर पहली

ने साड़ी पहनी थी । शुरू-शुरू में मुझे लगा था जैसे साड़ी में मैं
लग रही हूँ, पर जब हर किसी ने सराहा तो उत्साह और आत्म-
स के साथ साड़ी पहनने लगी थी । डॉक्टर अंकिल कहते—तुम्हें
कर लगता है जैसे पिछले जनम में तुम परी थीं । धरती पर कभी चला
नहीं करती थीं । इस जनम में पंख नहीं मिले तो एअर होस्टेस
गयीं ?

अपनी यह बात वे अकसर कहा करते । जब कभी किसी से मेर
परिचय कराते तो यह बात अवश्य कहते और कह कर हँस पड़ते, बच्च।
की तरह ।

मैं ने सिन्योरा परेरा से माँ का प्यार तो पा लिया था, पर पिता के
प्यार से अनजान ही थी । उस रिक्तता को डॉक्टर अंकिल ने दूर कर
दिया । मुझे निरन्तर ऐसा लगता जैसे मेरे जीवन का जो नया अध्याय
अब खुल रहा है उस में केवल सुख ही सुख है ।

एक दिन जब मैं दिल्ली की फ़्लाइट से लौट रही थी तो रोज़ को
हवाई जहाज़ पर देख कर अचरज हुआ । बरसों बाद का मिलन । सहसा
यक़ीन नहीं हुआ । फिर भारत-पुर्तगाल के जैसे सम्बन्ध थे उन को देखते
हुए लिस्बन-भक्तों की भारत-यात्रा अचम्भे में डाल रही थी । वह अकेली
थी । पर मेरे परिवर्तित वेश के कारण मुझे पहचान नहीं पा रही थी ।
मैं साड़ी सिर्फ़ फ़्लाइट पर पहनती थी, वैसे फ़्रॉक ही । उस की हिच
को तोड़ कर अपने को प्रकट करते हुए मैं ने कहा था—यह साड़ी सरका
वरदी है ।

इस पर वह जोर से बोल उठी थी—अरी रुथ तू ? यहाँ कै
गोआ में तेरे सींग नहीं समाये ?

तू अपनी कह ?—मैं ने पूछा था ।

ज्यादा बातों की गुंजाइश नहीं थी । बोली—अच्छा बम्बई प
मिलना । तुझ से तो बहुतेरी बातें करनी हैं ।

बम्बई पहुँचे तो जहाज से उतर कर वह लाउंज में मेरा इन्तजार कर रही थी। मैं ड्यूटी से ऑफ होने के पूर्व एयरोड्रोम ऑफ़िसर को रिपोर्ट कर के जल्दी से उस के पास आयी। उस ने पूछा—तू रहती कहाँ है ?

मैं ने बताया। इस पर बोली—मेरे साथ चल न ?

मैं ने कहा—पर डॉक्टर अंकिल को बताये बिना कैसे ? उन का हुक्म है कि फ्लाइट से लौट कर सब से पहले उन्हें खबर दूँ। बूढ़े हैं, आशंकित रहते हैं। हवा में उड़ने वाली सवारी का क्या भरोसा !

रोज ने मुसकरा कर कहा—और हवा में सवारी करने वाले का और भी कम भरोसा !

मैं ने कहा—तू बदली नहीं रोज !

क्या कहती है ?—रोज बोली—मैं न बदलूँ तो दुनिया बेमजा हो जाये। अरी बदलना तो सिर्फ मैं ही जानती हूँ। अच्छा चल। मेरी गाड़ी बाहर खड़ी होगी। पहले तेरे डॉक्टर अंकिल के पास चलेंगे। फिर वहाँ से तू मेरे साथ चलेगी।

रास्ते में बेकार की बातें होती रहीं। डॉक्टर अंकिल से अनुमति ले कर उस के घर पहुँचे। मैरीन ड्राइव पर शानदार फ्लैट। भरपूर रईसी। उतने बड़े फ्लैट में वह अकेली थी। साथ में दो नौकर, एक आया और एक बैरा। वह भी बदौलत। मैं ने मज़ाक करते हुए कहा था—तू आडम्बर छोड़ दे तो शायद मर ही जाये ?

उस ने कहा था—अरी मैं कैसे भी नहीं मर सकती। आडम्बर छोड़ दूँगी तो कुछ और पकड़ लूँगी।

मैं ने फिर शरारत की—अपने [illegible] अंकिल को छोड़ दिया क्या ?

उस ने प्रसन्न भाव से कहा—उसी मामले में तुम्हारे [illegible] रही। उन्हें आज तक नहीं छोड़ पायी।

हैं कहाँ ?—मैं ने पूछा ।

आ में ।—उस ने बताया—वे मुझे छोड़ सकते हैं बच्चे को नहीं । हूँ कि उन्हें खुद को छोड़ने दे ही नहीं सकती । उन की आधी दौलत रे क़ब्ज़े में है और वह भी यहीं बम्बई के बैंकों में जमा । तिस पर यह कि मेरे दस्तखतों के बिना एक पाई उस में से नहीं ली जा कती ।

और जमा ?—मैं ने हँस कर पूछा ।

जमा वे जरूर कर सकते हैं, करते भी हैं ।—कह कर वह कुरसी पर आराम से लुढ़क गयी थी, फिर बोली थी—लंच का वक़्त हुआ । चल खाने की मेज़ पर ही बातें करेंगे ।

खाना तैयार था । मैं ने पूछा—यह आदेश तू कब कर गयी थी ?

बोली—मुझे आदेश की ज़रूरत क्या ? आदेश तो घड़ी करती है । बैरा ने देखा खाने का वक़्त हुआ तो मेज़ लग गयी । मेरी आया रसोई में भी माहिर है । खाना वही बनाती है । टाइम की वह भी कम पाबन्द नहीं ।

मुझे अचानक उस के बच्चे की याद आयी । पूछा—और तेरा बच्चा कहाँ है री ? लड़का है या लड़की ?

उस ने बताया—आजकल गोआ में है, जल्दी ही आने वाली है पर अभी पढ़ रही है लिस्बन में ।

मैं ने फिर कहा—ओह तो लड़की है । किस पर पड़ी ? नाम क्या है

गर्व के साथ बोली—सुन्दर है, इसी से जान ले कि किस पर प नाम है सरित ।

प्यारा नाम है ।—मैं ने फिर पूछा—और दूसरे बच्चे ?

मुझे झिड़कती सी बोली—अरी वह एक हो गयी यही क्या क

फिर हम दोनों हँस पड़े । खाना खाते-खाते मैं ने फिर पूछा—अकेली कर क्या रही है ?

बोली—देशसेवा।

मैं ने कहा—वह तो तू अगले जनम में करेगी।

बोली—नहीं री, इसी जनम में कर रही हूँ। तू रोज़ को कभी नहीं जानेगी।

फिर धीमें स्वर में रहस्यात्मक ढंग से बताने लगी—गोआ की आज़ादी के आन्दोलन के पीछे मैं भी हूँ। इसी लिए यहाँ हूँ। मुझ से सत्याग्रह तो होगा नहीं, न जेल ही पसन्द है। यह बात नहीं कि ज़रूरत पड़ने पर किसी से पीछे रहूँ। पर अभी तो वैसी ज़रूरत नहीं। मैं आन्दोलन की मदद अपने दिमाग और रुपये से करती हूँ।

मैं ने अविश्वास और मज़ाक से कहा—एक चीज़ तो तेरे पास बहुत है, पैसा। पर दूसरी चीज़ के बारे में मुझे हमेशा शक रहा है।

वह इस बात पर ज़ोर से हँस पड़ी। बोली—जानती है मैं प्रोपेगैण्डा सेक्रेटरी हूँ। बिना दिमाग के यह काम हो सकता है? और सुन, गोआ के बॉर्डर पर हम ने एक सीक्रेट रेडियो स्टेशन भी बना रखा है। मेरा मतलब अण्डरग्राउण्ड। हवाई और शाब्दिक लड़ाई उसी ट्रान्समिटर से लड़ते हैं। अखबार या लिखित मैटीरियल तो वहाँ पहुँच नहीं पाता। जब से दादरा, नागर हवेली ने आज़ादी घोषित की तब से पूरी फ़ौजी हुकूमत है। एक ओर कड़े प्रतिबन्ध दूसरी ओर शराब और स्मगलिंग की सुविधा दे कर लोगों को बहकाया जा रहा है। अब तू पंजिम जा कर देखे तो एकदम बदला हुआ पायेगी। सब सड़कें पक्की, बेइन्तिहा कारें, बेशुमार बार।

मैं ने अविश्वास के साथ पूछा—पर तुझे यह देशभक्ति सूझी कैसे?

बोली—यह मैं नहीं जानती। इधर यूरोप घूमी। दुनिया देखी। अखबारों से देश-विदेश की हलचलें जानीं। और एक बार मन में आया कि मैं भी कुछ वैसा करूँ।

मैं ने कहा—तो यह भी मन की एक उचंग ही निकली।

ी समझ ले तू ?—उस ने कहा।—मैं ने गान्धी या मार्क्स का पढ़
ह सब करने का इरादा नहीं किया। मुझे लगा जैसे यह भी होना
ए। बस, करने लगी।
तू धन्य है!—मैं ने किंचित् व्यंग्य के साथ कहा।
वह बोली—अच्छा, ढंग से खाती भी रह। देखती हूँ गिलहरी की
रह बस कुतर रही है।
फिर अचानक कुछ जैसे याद आ गया हो ऐसे बोली—तू अपने उस
जोज़े को भूली तो नहीं ?
मैं ने आशंकित मन से पूछा—क्यों, क्या बात है? उस की कोई
खबर है क्या ?
उस ने हँस कर कहा—खबर मुझे उस की अवश्य है, उसी बेवक़ूफ़
को मेरी नहीं। जानती है गोआ में उस के नाम का आतंक है आजकल।
कैसा सीधा-सादा था। अपने से कमज़ोर लड़कों से भी पिट लेता था।
कड़वी बात कहना तो जानता ही न था। तू तो उसे 'पादरी का बेटा'
ही कहती थी। पर अब वह क़तई वैसा नहीं।
कैसा है? क्या हो गया ?—मैं बेचैन हो उठी थी। उस की वही
आकृति आँखों में उभर आयी थी जो ननरी जाते समय पोर्च में देखी थी
रोज़ ने बताया—वह गोआ के खुफ़िया विभाग का बड़ा अफ़सर है
फ़ौज ने ही उस विभाग को ले रखा है। उस की कृपा से हर भले आद
के पीछे दो-दो सी. आई. डी. लगे हैं। मैं तो इसी से बची हूँ कि उ
मुझे कभी इस क़ाबिल समझा ही नहीं।
यह संवाद मुझे अच्छा नहीं लगा था। मैं सुस्त पड़ गयी थ
चुप थी। रोज़ बोली—क्यों, प्यार के दिन याद आ गये ?
मैं ने उस की बात पर ध्यान दिये बिना ही कहा—मगर
हो सकता है ?
बोली—क्यों नहीं हो सकता ? अगर रोज़ देशभक्त हो स

जोज़े देशशत्रु भी हो सकता है।

नहीं ऐसा मत कहो।—मेरे स्वर में कराह थी। जैसे मैं खुद चोट खा गयी थी।

रोज़ कुछ उत्तेजित हो कर बोली—क्यों न कहूँ। वह अपने ही बन्धुओं पर ज़ुल्म करे और मैं इतना भी न कहूँ।

पर इस उत्तेजना को व्यक्त कर के फिर शान्त हो गयी थी। मैं ने कुछ पीड़ित स्वर में कहा था—मुझे लगता है उस के इस परिवर्तन में उस से अधिक परिस्थितियाँ ज़िम्मेदार हैं।

रोज़ ने कहा—मैं नहीं मानती। कमज़ोर लोग परिस्थितियों को गाली देते हैं। आदमी की अपनी असलियत भी तो कुछ है। वह चाहे तो परिस्थिति को अपने अनुकूल बना सकता है।

रोज़ के स्वर में गर्व का घोष था। यथार्थ भी था वह। उस का अपना जीवन उस की घोषणा की पुष्टि करता था। जिन अनाचारों से मैं टूट गयी, पागल हो गयी, उन्हीं को वह वरदान बना कर विकसित होती गयी। उस के मन में कोई अभाव नहीं, कोई पछतावा नहीं, और आज वह जो करने जा रही है या कर रही है वह कितना स्पृहा है।

क्यों क्या सोचने लगी?—रोज़ पूछ उठी।

कुछ नहीं।—मैं ने कहा था—तेरी बात सच है। फिर भी जो मैं ने कहा वह भी सच है। जोज़े मुझ से शादी करना चाहता था। वैसा हो जाता तो शायद हम दोनों का जीवन कुछ और ही होता।

रोज़ ने पूछा—तो शादी की क्यों नहीं?

मैं ने कहा—अवसर ही नहीं आया। इतने स्पष्ट ढंग से असल में हम ने कभी सोचा भी नहीं, हालाँकि भावनाओं से उसी ओर बढ़ रहे थे। जोज़े तो तेज़ी से बढ़ रहा था। वह पादरी बनने हिन्दुस्तान गया था। पर जाने क्या हुआ कि फौजी बनने लिस्बन पहुँच गया। और जब वह मेरे पास आया तो मैं ननरी जा रही थी।

पृष्ठभूमि न जानने से रोज़ की समझ में कुछ नहीं आया। वोली—
तो कहानी सी कह रही है।

हाँ कहानी ही है—मैं ने अवसाद के साथ कहा था।

वोली—अच्छा पहले खाना खा लें, फिर तेरी कहानी सुनूँगी।

पर मुझ से फिर खाया नहीं गया। जोज़े के उस रूप को मैं सहज रूप में ले ही नहीं पा रही थी। सोचती, मैं खुद दोषी हूँ। वह तो सरल, दयालु और ईमानदार था; खुदग़र्ज़, कठोर और क्रूर मैं ने ही तो वनाया ?

मेज़ से उठ कर और हाथ धो कर विना कुछ वोले हम सोने वाले कमरे में आये। डबल वेड था। रोज़ ने कहा—आ इसी पर दोनों आराम करें।

मैं पलंग पर एक ओर को वैठ गयी थी। उस ने फिर कहा—अरी ऐसे नहीं, बदलने को कुछ दूँ?

—नहीं। मैं ने पलंग के सिरहाने से पीठ लगा कर टाँगें समेट ली थीं।

रोज़ ने जल्दी से कपड़े उतारे। विना झिझक मेरे सामने ही अण्डर
वियर तक उस ने अलग किया और गाउन पहन कर मेरी वग़ल में घ
से आ लेटी। मैं अचरज से यही सोचती रही कि उस में कितनी जी
शक्ति है। जीना वही जानती है। सुन्दर-असुन्दर, रूप-कुरूप, पाप-
सब से निरपेक्ष रह कर जीवन को उस की सम्पूर्णता में स्वीकार क
प्रसन्न है।

तभी मैं ने उसे कहते सुना—अच्छा अब लेट भी। अभी तो
वहुत सी वातें करनी हैं।

मैं उसी तरह वैठी थी कि उस ने मुझे खींच कर वग़ल
लिया। हम एक दूसरे के इतने समीप थे कि हमारी साँसें उ
थीं। वह क्षण भर तो मुझे निःशब्द देखती रही, फिर वोली—
सुन्दर है रुथ।

एक अभिमानिनी स्त्री से अपने रूप की प्रशंसा-सुन कर भी मैं शान्त थी, क्योंकि उस समय मैं अपने प्रेम-पुरुष के बारे में व्यग्र थी।

मेरी अन्यमनस्कता से परेशान रोज़ ने पूछा था—आखिर तू इतनी खोयी-खोयी क्यों हो उठी?

मैं ने कहा—हाँ, लगता है मैं सब कुछ ही खो बैठी। उस पुरुष को ही नहीं जिसे प्यार करती आयी, बल्कि उस की वास्तविकता को भी।

इस पर रोज़ ने कहा था—रुप बुरा न माने तो एक बात कहूँ? अब हमारी उम्र कुछ ऐसी हो चुकी है कि अपने प्रेम और प्रेम-पुरुषों के बारे में परिपक्व ढंग से सोच सकें।

तुम्हारा मतलब?—मुझे उस की बात अच्छी नहीं लगी थी।

उस ने कहा—तुम्हें बुरा लगा। पर मैं तो सदा ही तुम से भली-बुरी बातें कहती रही हूँ। हम लोग उम्र में अपनी आधी यात्रा तय कर चुकी हैं। उम्र का यह सफ़र महत्त्वाकांक्षाओं और भूलों से भरा होता है। महत्त्वाकांक्षाएँ हैं तो असफलताएँ भी। इन असफलताओं से निराश न हो कर पहले से अधिक समझदार हो उठना ही मुझे अधिक स्वाभाविक लगता है। वैसा ही हमें होना भी चाहिए।

मैं ने क्षण भर चुप रह कर दीन-भाव से कहा—तो मैं क्या करूँ रोज़? मैं अपने अभाग से इतनी बुरी तरह ठगी जा चुकी हूँ कि अब मुझ में हिम्मत, आशा, उत्साह कुछ नहीं रह गया। जिसे समझदारी कहती है वह भी मुझ से जैसे कोई ठग ले गया।

रोज़ ने सहानुभूति के साथ कहा—ऐसा भी होता है रुप। मेरी अपनी इस प्रसन्नता की ओढ़नी को उतार कर कोई देखे तो तेरे जैसी कोई लड़की ही भीतर छिपी मिलेगी। मैं ने अपनी प्रसन्नता को 'ओढ़नी' कहा है, यह सच है। पर यह भी तो सच है कि हम केवल घटनाओं और

के दास हो कर ही नहीं जी सकते। हमें उन के व्यूह में फँस कर
नी लड़ाई तो लड़नी ही है।
ं ने कहा—मैं अपनी लड़ाई लड़ने से पहले ही हार चुकी हूँ रोज़।
उस ने कुछ तिक्तता से उत्तर दिया—यह सच भी हो तो भी अभी
ई खत्म कहाँ हुई। जिसे तू अपनी लड़ाई कहती है वह तेरी व्यापक
ंदगी का एक बहुत ही सँकरा कोना है। तू उतनी ही नहीं जितनी कि
जोज़े के लिए हो सकती थी। हर औरत उतनी ही नहीं जितनी कि
ह अपने प्रेम-प्रयोग या परिवार के जीवन में उभर कर आती है।
उपदेश मत मानो मेरी प्यारी रुथ। यह कुछ ऐसा है जिसे मैं ने लापरवाही
के साथ जीवन का खेल खेलते हुए भी बड़ी गम्भीरता से सत्य
रूप में जाना है। मैं अगर यह मान भी लूँ कि वह रुथ मिट गयी जो
जोज़े के सपनों की परी थी, तो भी यह मैं नहीं मान सकती कि वह रुथ
भी मिट गयी जो गोआ और उस प्रदेश के अपने बन्धुओं की दासता को
समाप्त करने के युद्ध में बहुत कुछ कर सकती है।
रोज़ जैसे मुझे कोई नयी दिशा दिखा रही थी। मेरे मन में श
शक्ति का कोई स्फुलिंग चमका, पर तुरन्त बुझ भी गया। मैं ने कहा—
नहीं रोज़, अब मुझ में कुछ भी बाक़ी नहीं।
उस ने दृढ़ता से कहा था—इस बारे में बहस नहीं करूँगी। तू मेरी
एक बात मानेगी?
मैं ने उत्तर में उस की ओर प्रश्न भरी दृष्टि से देखा था। उस
कहा—तू अपनी यह नौकरी छोड़ दे।
मैं ने कहा—यह कौन सा समाधान बताया तू ने। यह नौकरी
तो मेरी एकमात्र व्यस्तता है। व्यस्तता से अधिक आशा भी।
हवाई जहाज़ दुर्घटना के शिकार होते हैं, एक दिन मेरा हवाई जह
होगा और तब मैं मुक्त हो जाऊँगी।
रोज़ ने गम्भीरता से कहा—तब तो तुझे और भी यह नौ

देनी चाहिए। तू अपना अकेली का ही नहीं, जाने कितने परिवारों का अशुभ चाहती हुई, फ्लाइट पर निकलती है। नहीं मजाक नहीं, सच कहती हूँ। तुझे दूसरों का अशुभ चाहने का कोई हक नहीं।

रोज ने रुक कर मेरी ओर देखा था। उस की दृष्टि से मेरी दृष्टि उलझ कर वापिस पलकों की छाया में कंगारू के बच्चे सी छुप गयी थी। मुझे मौन ही देख कर उस ने कहा था—तेरी यह नौकरी तुझे मन से व्यस्त नहीं रख पायेगी। तुझे मैं शायद तुझ से अधिक अच्छी तरह जानती हूँ। तू अपनी शक्तियों को भूल चुकी है, मैं नहीं भूली हूँ। इसी से कहती हूँ कि अब तू कुछ ऐसा काम कर जिस से तू मन से व्यस्त हो सके। तेरी सोयी हुई शक्तियाँ जाग सकें।

तो तू ही बता मैं क्या करूँ?—मैं ने जैसे आत्म-समर्पण कर दिया था।

वह मुसकरायी। बोली—ला तेरा प्यारा मुँह चूम लूँ। मेरी प्यारी रुथ, तुझे अभी बहुत कुछ करना है। तू एमिसोरा डि गोआ में काम कर चुकी है। मैं कहूँगी अब तू हमारे गुप्त रेडियो में काम कर। तेरी मीठी और परिचित आवाज मौन श्रोताओं पर जादू का सा असर करेगी। जिस आवाज को वे सालाजार के रेडियो से सुनते आये हैं उसी को जब आजाद रेडियो से सुनेंगे तो तू सोच उन्हें कैसा लगेगा। और इस तरह अपने देश के लिए तू अपनी आवाज ही नहीं बुद्धि का उपयोग भी करेगी। जानती हूँ जोखम का काम है। बॉर्डर पर ही स्टेशन है। कभी भी पोर्चुगीज पुलिस पता लगा कर धोखे से पहुँच सकती है। फिर सजा कुछ भी हो सकती है। मगर तुझे इस सब का डर तो नहीं है न?

मेरे भीतर एक अग्नि-तरंग सी दौड़ी। पता नहीं इस का मूल किस वासना में था। उत्साह, देश प्रेम या कुछ और। मैं ने कहा—हाँ मुझे कोई डर नहीं। पर मैं इस तरह छुप कर काम नहीं करूँगी। मैं गोआ के भीतर खुल कर आजादी का नारा लगाऊँगी। मेरा सत्याग्रह काबू पैलेस

ड़ पर होगा । मैं दुनिया को दिखाऊँगी कि मुझे पोर्चुगीज संगीनों

नहीं ।

ावाश !—रोज़ ने कहा—पर इस तरह मरने की सलाह तुझे मैं ज़ न दूँगी । यह तो आत्महत्या होगी । मैं तुझे आज़ादी की लड़ाई निमन्त्रण इसलिए नहीं दे रही हूँ कि तू सीधी जा कर फाँसी के तख्ते चढ़ जाये । यह लड़ाई एक क्रूर शत्रु से है जो गणतान्त्रिक तरीक़ों में श्वास नहीं करता, जो हिटलरशाही का प्रचारक है । उस से हमें बुद्धि ौर बल दोनों के साथ लड़ना होगा ।

मैं ने कहा—मुझे सोचने का मौक़ा दे रोज़ ।

वह तेरा हक़ है ।—रोज ने कहा । तू ज़रूर सोच । जी भर कर सोच । जल्दी की हिमायती मैं भी नहीं । पर इतना फिर भी कहूँगी कि सोचने में ही अपनी ज़िन्दगी के क़ीमती क्षण बरबाद न कर डालना ।

इतना कह कर रोज़ ने मेरा हाथ अपने हाथों में कस कर ले लिया था । उसे दृढ़ता से दबाती हुई जैसे वह मुझ में अपने देह में बहनेवाली बिजली का संचार करना चाहती थी । वह कितनी निर्ममता से मेरा हाथ दावे थी, इस का उसे ध्यान न था और मैं उस की आँखों में देखती हुई सोच रही थी—यह कौन सी रोज़ है ? वह रोज़ तो हरगिज़ नहीं जिसे मैं ने निन्यु इन्फ़ैण्टिल में देखा । वह भी रोज़ हरगिज़ नहीं जिस ने पहली वार मुझे शराब पिलायी और जिस से मेरे दुर्भाग्य की शुरूआत हुई आज यह फिर मुझे जो शराब पिलाने जा रही है उस का नशा उ

मैं कैसे इस राह पर चलने लगी। तब मुझे एक ही कारण दीखता है। आखिर तुझे-मुझे यह जिन्दगी क्यों बितानी पड़ी? रथ, यह मत सोच कि मैं सदा हँसनेवाली, उतनी ही सुखी और प्रसन्न भी हूँ। मैं एक सामान्य स्त्री हो कर अपने परिवार में लिप्त रह कर जो जीवन बिताती वह मुझे सच्चा सुख देता। पर मुझे वह अवसर दिया ही नहीं गया। यह पोर्चुगीज़ व्यवस्था का ही फल था कि तू ने जन्म लिया, मैं ने जन्म लिया, और फिर इन अनैतिक राहों पर चली। मैं सोचती हूँ रथ कि इस व्यवस्था को मिटना ही चाहिए जिस से फिर किसी औरत या लड़की को इन मजबूरियों की राह से न चलना पड़े। इसलिए पोर्चुगीज़ शासन के खिलाफ मेरी यह लड़ाई सिर्फ राजनीतिक ही नहीं, व्यक्तिगत भी है। मेरा यक़ीन है कि कोई औरत स्वेच्छा से नहीं गिरती, प्रसन्नता से नहीं गिरती।

रोज की आँखों में आँसू छलछला आये थे। मैं ने चकित भाव से कहा—तू भी दुखी है रोज़? रोती है?

उस ने तत्काल आँसू पोंछ लिये और कहा—नहीं, अब दुखी नहीं। दुखी थी। अब तो मैं सुख का सपना देख रही हूँ।

तुम ऊब तो नहीं गये?—रथ मुझ से पूछ रही थी।

मैं ने तुरन्त कहा—यह अभियोग क्यों लगा रही हो?

रात जो बीत चली है। तुम्हें जगाये ही रखा। जल्दी ही सवेरा अँधियारे की ओढ़नी उतार फेंकेगा। और तब रात भर के जागरण से थकी तुम्हारी आँखें प्रकाश के धुएँ से कड़ुवा उठेंगी।—रथ ने कहा था।

मैं ने उस के बारे में पूछा—तुम तो नहीं थक चली?

उस का उत्तर था—थक तो चली हूँ: पर कहानी से नहीं, ज़िन्दगी से। यह पहला मौका है जब मैं ने किसी से अपनी पूरी कहानी दोहरायी।

ाने में भी अजीव रस है। आत्म-करुणा का रस कह लो।
चुप ही रहा। वह क्षणिक विराम के वाद स्वयं वोली—कदाचित्,
कहानी कहने में अपने ही फ़ोटुओं का अलवम देखने जैसा सुख है।
स पराभव का होने पर भी व्यक्ति के मोह का विषय वन जाता है।
फिर जव कि वह इतिहास सचित्र अलवम में निरूपित हो तो उस का
व कैसा होगा, तुम खुद सोच लो। मैं ने एक तरुणी के रूप में दर्पण
सन्निधि में अनगिनत क्षण विताये हैं। वड़े सुख के होते हैं ऐसे क्षण।
पने ही प्रतिविम्ब को देख कर आत्म-विस्तार का सुख मिलता है। नेत्रों
ं लिए उस से सुखद दर्शन कुछ नहीं होता। एक रेडियो कलाकार के
रूप में मुझे अपनी ध्वनि-अंकित आवाज़ भी सुनने के वहुत से मौक़े आये
हैं। अपनी आवाज़ का जादू तव तक पता नहीं चलता जव तक कि उसे
मौन हो कर सुनने का मौक़ा न मिले। अजीव नशीली होती है वह
आवाज़। आत्मलीनता से भरी। वह भी आत्म-विस्तार का सुख है। पर
आज अपनी कहानी कह कर मुझे लगा जैसे यह सुख वेजोड़ है, अपना ही
ध्वनिचित्र या कि शव्दचित्र। अपनी ही जिह्वा से रचा हुआ। मन के
रंगों, आत्मा के प्रसंगों से भरा चित्र। उस का कैनवास यह शव्दमय
आकाश कितना विराट्। शव्द की लहरियाँ उस कैनवास पर नाच-नाच
कर ऐसी आकृतियाँ उभारती हैं जो यथार्थ में भी स्वप्नमयी होती हैं।
है न अजीव वात?

मैं ने कहना चाहा था—नहीं, अजीव कुछ नहीं। तुम्हें देख कर मैं
भी तो आत्मगाथा कह गया था। उस से मुझे सुख न मिलता तो क्य
कहता। मैं तुम्हारे सुख को समझता हूँ।

मैं चुप ही रहा। वह भी चुप वैठी थी। पर मैं उस की कहानी
उपसंहार जानना चाहता था। डेक पर अभी नींद की परी अपने
फैलाये वन्द पलकों को उन की हिलकोरों से थपकनें दे रही थी।
ही मौन तोड़ा—तो फिर क्या हुआ?

वह मुसकरायी। बोली—तुम ऐसे पूछ रहे हो जैसे वह कहानी मेरी आपबीती न हो कर जगबीती हो।

उत्तर में मेरे पास कुछ भी कहने को न था। उस ने क्या आरम्भ की—फिर वही हुआ जो रोज़ चाहती थी। मैं उस के पास से लौटी नये निश्चय ले कर। वैसे खुद रोज़ क्यों कुछ नहीं बताती थी पर मेरा मन निर्णय कर चुका था। सब से पहले मुझे डॉक्टर अंकिल से आज्ञा लेनी थी। सिल्वीना, सेल्मा और जुलेख से अधिक प्यार करते थे वे मुझे। मैं उन की सब से बड़ी बेटी थी जैसे। वे कहते भी थे कि बड़ी बेटी सब से प्यारी बेटी है। सब से बड़ी बेटी सब बच्चों से ज्यादा लाड़ली होती है।

मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि मैं उन्हें कैसे अपना निश्चय बताऊँगी। रात को उन की आदत थी देर तक पढ़ने की। तब मैं उठी उन की स्टडी में उन से मिली। मेरी पदचाप सुन कर ही वे मुझे पहचान लेते थे। किताब पर से आँखें हटाये बिना उन्होंने पूछा—अभी सोयी नहीं बेटी?

मैं कोई जवाब दिये बिना उन की पीठ पीछे जा खड़ी हुई थी। मेरे हाथ उन के कन्धों पर टिके थे और मैं अपने आरम्भिक वाक्य को मन ही मन घड़ रही थी। उन्होंने मुझे चुप देख कर पूछा—कुछ कहने आयी हो?

मैं ने दुविधा पर विजय पाने के लिए झट से कह दिया था—मुझे, एअर होस्टेस का काम अच्छा नहीं लगता। मैं इस नौकरी को छोड़ना चाहती हूँ।

उन्होंने सरलता से कह दिया—छोड़ दो। इस में परेशानी की क्या बात? जो काम मन को न भाये उसे किया ही क्यों जाये?

फिर रुक कर पूछा—डिपार्टमेण्ट में किसी से झगड़ा तो नहीं हुआ?

मैं ने रूठने के ढंग से कहा था—तो आप की राय में मैं झगड़ालू हूँ?

वे हँस कर बोले थे—मेरी बेटी हरगिज़ वैसी नहीं हो सकती लेकिन दूसरे तो हो सकते हैं। पर जानती हो मैं क्या सोचा करता

ारे में ।

ने कुछ नहीं पूछा । वे खुद ही बोले—तुम कल्पना भी नहीं कर
ी । मैं सोचता था कि किसी बड़ी रियासत का प्रिन्स तुम्हारे जहाज़
फ़र कर रहा होगा । तुम्हें देख कर वह मुग्ध होगा । और फिर तुम्हें
के लिए आ कर मेरी ख़ुशामद करेगा ।

मैं अत्यन्त गम्भीर हो गयी थी । पर डॉक्टर अंकिल की बात से हँसी
ा ही गयी । साथ ही मैं ने कह भी दिया—पर भारत सरकार में अब
रियासतें बची ही कहाँ ?

वे भी हँसे—ओह यह तो मैं ने सोचा ही नहीं । पर कोई एक
प्रिन्स भी तो हो सकता है या कोई विदेशी राजकुमार ही । नहीं-नहीं
किसी विदेशी को तुम्हें हरगिज़ नहीं दूँगा ।

उन के स्वर में प्यार उमड़ा था । तभी मैं ने सहसा अपना निश्चय
घोषित कर दिया था—मैं नौकरी छोड़ कर गोआ लौटना चाहती हूँ ।

उन्होंने अचकचा कर पूछा—गोआ ? क्या करोगी वहाँ । तुम्हारी
ममी तक इस पक्ष में हैं कि तुम यहीं रहो ?

मैं ने कहा—वहाँ करने को बहुत कुछ है डॉक्टर अंकिल ।

मैं भी तो जानूँ ?—कहते हुए उन्होंने अपनी कुरसी मेरी तरफ़ घुमा
ली थी और ग़ौर से मुझे देखने लगे थे ।

मैं ने नीची नज़रों से कह दिया—जैसे गोआ की आज़ादी ही ।

वे बोल उठे—वहाँ रह कर तुम कुछ भी नहीं कर पाओगी बेटी
फ़ौरन जेल में डाल दी जाओगी । अगुआद की जेल ! पोर्चुगीज़ जेलों
नरक बेहतर ।

मैं ने कह डाला—असल में मैं आज़ाद रेडियो में काम करूँ
गोआ के बॉर्डर पर है वह स्टेशन । रेडियो का मेरा पूर्व अनुभव भी
मैं सोचती हूँ मैं उपयोगी सिद्ध होऊँगी ।

उन्होंने सुना । कुछ देर चुप रहे । उन की फ्रेंच-कट दाढ़ी से

दाहिने हाथ की अंगुलियाँ उलझती रही। और फिर तरल आँखों से मुझे अस्थिर करते हुए बोले—तुम्हारी जैसी मरज़ी बेटी। काश मेरे पास भी तुम्हारे जैसी हिम्मत होती। मगर मैं तो सदा का कायर हूँ। जिन्दगी की हर लड़ाई में पीठ दिखा कर भागा हूँ। गोआ में जब न रह सका तो बम्बई भाग आया। गोआ आजाद हो, भारत में मिले, अपने राष्ट्रीय गौरव को प्राप्त करे, इस के सपने तो देखे पर उन्हें मूर्त बनाने में कभी कुछ नहीं किया। अब जब तुम उस राह पर बढ़ रही हो तो भी मेरा दिल काँप रहा है। पर बेटी, अब मैं अपनी कायरता तुम्हारे रास्ते में नहीं आने दूँगा। मगर मुझे एक बात का डर है।

उन्होंने मेरा बायाँ हाथ अपने हाथ में ले लिया था। उसे दुलराते हुए बोले—डर यही कि तुम्हारी ममी ने पूछा तो मैं उन्हें क्या जवाब दूँगा? वे जरूर कहेंगी कि मैं ने तुम्हें जोखिम उठाने से क्यों नहीं रोका?

मैं ने सहसा कह दिया था—पर डॉक्टर अंकिल, आप मेरे पिता हैं। मैं जब आप की आज्ञा ले कर यह काम करूँगी तो ममी कभी एतराज नहीं करेंगी।

डॉक्टर अंकिल की तमाम देह काँप उठी थी। उन की तरल आँखें अपनी ही तरलता में डूब चली थीं। उन्होंने कुछ कहना चाहा। पहले प्रयास में होंठ काँप कर रह गये। फिर जब बोले तो स्वर का कम्प अस्वाभाविक था—तो तुम यह भी जानती हो।

इतना कह कर उन्होंने अपनी आँखें झुका ली थीं। मेरी ओर न देख कर वे धरती की ओर देख रहे थे। मेरा हाथ अब भी उन के हाथों में था, पर अब वे उसे दुलरा न पा रहे थे। धरती की ओर देखते हुए ही कह गये—तो तुम्हारी ममी ने तुम्हें यह भी बता दिया? मैं कायर इतनी हिम्मत कभी नहीं कर पाता। तुम्हारे जीवन के सन्तापों का जिम्मेदार मैं ही हूँ बेटी। एक ग़ैरजिम्मेदार आदमी की तरह मैं तुम्हारी ममी के सम्पर्क में तब आया जब मैं विवाहित था और वह अविवाहित। फिर भी

वह सब क्यों हुआ ? तुम्हें अपनाने तक की हिम्मत मैं ने नहीं दिखायी,
ए तुम्हारी ममी तक से दूर भाग चला था । मैं डॉक्टरी पास कर चुका
। मैं चाहता था कि अपने अपराध के सबूत को मिटाने में दवा से काम
। मगर तुम्हारी ममी तैयार न थी । और जब दिन चढ़े तो मैं भाग
ड़ा हुआ । बाद में पत्र लिख-लिख कर माफ़ी माँगता रहा । सब तरह से
श्चात्ताप किया; पर अब लाभ ही क्या था ? मगर तुम्हारी ममी अद्भुत
थी । उस ने मुझ से कभी शिकायत नहीं की । मेरे पछतावे पर यही
कहा—तुम ने मुझ से वास्तविकता तो कभी न[illegible] छिपायी । फिर भी यह
सब हुआ तो मेरी अपनी भूल से । पर मैं उसे [illegible] भी नहीं मानती । वह
होना ही था । फिर मैं ने तुम्हें प्यार किया है । स्वयं को तुम्हें वासना से
हार कर नहीं दिया, प्यार से हार कर दिया ।

उन का गला भर आया था । अवरुद्ध गले से ही कहते गये—पर मैं
खुद को कभी माफ़ नहीं कर सकता । तुम्हारी ममी ने भले ही माफ़ कर
दिया हो; तुम भी चाहे माफ़ कर दो । पर मैं कायर और अपराधी दोनों
ही साबित हुआ ।

पहले मैं चकित हुई, फिर स्तम्भित । और फिर उन के स्वर की
ऊष्मा से पिघल कर आँसुओं से बह चली । कोई बहता हुआ आँसू उन के
हाथ पर पड़ा । उस के स्पर्श से चौंक कर उन्होंने मुझे देखा और मैं 'डैडी
कह कर उन से लिपट गयी ।

तभी वे कह उठे थे—मैं सचमुच ही बड़भागी हूँ । अपने अपराध
दण्ड तक नहीं पाया । तुम ने भी माफ़ कर दिया । ठीक अपनी माँ
तरह । पर मेरी अभागिन बेटी, ईश्वर मुझे कभी माफ़ नहीं करेगा ।

मैं विह्वल सी कह उठी थी—यह सब मत कहो डैडी । आज
खुद को अभागिन नहीं मानूँगी । अभागिन पैदा जरूर हुई,
अभागिन नहीं । मेरी एक माँ है बेहद प्यार करने वाली । मेरे
उस से भी ज्यादा प्यार करने वाले । मैं आज तक अपने पिता को

ही न थी । पर जब भाग्य प्रबल हुआ तो अपनेआप राहें खुल गयीं ।

इस पर वे मुझे बाँहों में भरे कितनी ही देर तक रोते रहे । फिर उन्होंने मुझे अपनी छाती से तभी अलग किया जब बाहर किसी के कदमों की आवाज सुनाई दी । नौकरानी थी । दूध ले कर आयी थी । मैं ने आगे बढ़ कर उस से गिलास ले लिया और उसे दरवाजे से ही लौटा दिया था । फिर गिलास उन की ओर बढ़ाते हुए कहा—लो डैडी दूध पी लो ।

वे आज्ञाकारी बच्चे की तरह दूध पीने लगे थे । मुझे अजीब सा हल्कापन महसूस हो रहा था । मुझे अपने जन्म के मूल में जो [illegible] दीखती थी अब उस के स्थान पर एक पवित्रता का आभास मिलने लगा था । समाज का उसे समर्थन नहीं मिलेगा, [illegible] भी नहीं । पर मेरा समर्थन तो उसे प्राप्त है । मैं अपने प्रति [illegible] नहीं । और मुझे लगा मेरा असाधारण जन्म असाधारण कामों के लिए ही है । आज तक रेडियो के बारे में मैं जो-जो [illegible] सुनती थी, उस से [illegible] बल मिला ।

डैडी ने गिलास खाली कर के [illegible] थामते हुए मैं ने कहा था—ओ डैडी मैं [illegible] हूँ ।

उन्होंने कहा था—तू [illegible] । अब मुझे [illegible] नहीं पाऊँगा । जानता हूँ तुम से [illegible] की तरह है, पर इस बात की भी [illegible] ।

त आ कर बोले थे—बेटी, मेरे वंश की यह सब से क़ीमती चीज़ यह न केवल एक बहुमूल्य क्रॉस है, बल्कि दुर्लभ भी । गोआ के ख्याता सन्त, फ़ान्सिस ज़ेवियर्स के स्पर्श से यह पवित्र हो चुका है । से मेरे वंश की यह परम्परा रही है कि ज्येष्ठ पुत्र को यह उत्तरा- कार में मिले । पर बेटी आज मैं उस परम्परा को और भी गौरव दूँगा । व इसे मेरी ज्येष्ठ पुत्री धारण करेगी । भविष्यत् परम्पराओं में ज्येष्ठ पुत्रियाँ ही इस की अधिकारिणी होंगी ।

इस के बाद उन्होंने आगे बढ़ कर वह क्रॉस मुझे पहना दिया था और पहनाते हुए कहा था—तुम अवश्य जाओ बेटी । सेण्ट ज़ेवियर्स तुम्हारी रक्षा करेंगे ।

मैं फिर उन से लिपट गयी थीं और लिपटे-लिपटे ही सोच रही थी—यह इस क्रॉस का अन्तिम दान है । वे परम्पराएँ कैसे जनम ले पायेंगी जिन की कल्पना डैडी कर रहे हैं ।

इतना कह कर एक गहरी वेदना के साथ रुथ बोली—मुझे जीवन से कोई शिकायत शायद नहीं होनी चाहिए । मैं ने सभी कुछ तो पाया है । यह मेरी अपनी क़िस्मत कि ठीक समय से न पाया हो । भाग्य ज मुसकराया तो वह भी ग़लत वक़्त से । असम्भव सम्भव हुआ फिर प्रत्याशित अप्रत्याशित बना रहा । अजीब सा विरोधाभास है ।

अगले दिन सुबह ही मैं ने रोज़ को टेलीफ़ोन किया । बताया- तैयार हूँ ।

उस की प्रसन्नता उस के स्वर में व्यक्त थी । बोली—दुष्ट यह तुझे यहाँ आ कर देनी थी न ? तेरा मुँह तो चूम पाती सुन कर ।

सदा की जैसी रोज़ ! मैं ने गम्भीरता से पूछा था—तो क होगा ?

उस का उत्तर आया—जब भी तुम तैयार हो सको। बस मुझे फ़ोन कर देना। पार्टी की जीप पहुँच जायेगी तुम्हारे पास और वही तुम्हें तुम्हारे गन्तव्य पर ले जायेगी।

मैं ने कहा था—अच्छा तो तुम्हें जल्दी ही फिर फ़ोन करूँगी।

मैं रिसीवर रखने जा रही थी कि उस ने कहा—अरी ठहर तो, पास की नहीं तो दूर की ही पुच्ची ले लूँ।

उस ने 'पुच्ची' की ध्वनि की और दीवानेपन के साथ कहा—अच्छा मेरी प्यारी रुच अब मैं तेरी याद में तड़पा ही करूँगी।

फिर वह हँसी और खुद ही रिसीवर रख दिया। मैं उस की मुक्त हँसी में खोयी सी रिसीवर थामे ही रही। कुछ ऐसा हुआ कि फोन कटा ही नहीं। उस के टेलीफ़ोन पर फिर कुछ आवाज़ हुई। उस ने उठा कर पूछा—हलो, कौन है ?

मैं ने उस का स्वर पहचान कर कह दिया था—रोज़ तू ने मुझे नयी ज़िन्दगी दे डाली है। मैं कभी तेरा एहसान न भूलूँगी।

अच्छा मत भूलना। भूलना चाहिए भी नहीं। और अब टेलीफ़ोन भी रख दे। पहले तू ही। नहीं तो फिर मुझे पुच्ची लेनी पड़ेगी।—उस ने कहा था और हम दोनों ने साथ ही टेलीफोन रख दिया था।

रोज़ ने पूछा ही नहीं कि आखिर उस ने मुझे नयी ज़िन्दगी कैसे दे डाली। मैं ने भी नहीं बताया। पर मेरा विश्वास था कि न रोज़ यह प्रस्ताव करती, न डैडी सुन कर इतने विगलित होते और न मैं अपने जन्म के अपूर्ण इतिहास की महत्वपूर्ण कड़ी को जान पाती।

उस के बाद मुझे अधिकारियों से मुक्ति लेनी थी। उन्होंने एक महीने के नोटिस की ज़रूरत बतायी। पर यह भी कहा कि अगर मेरी जगह जल्दी ही कोई दूसरी एअर होस्टेस मिल जायेगी तो वे उस से पूर्व भी मुझे मुक्त कर देंगे।

पर वैसा हुआ नहीं। मैं पूरे एक महीने रुकी। यह महीना अपूर्व

संवेदनों का था। पिता के जिस प्यार से मैं सदा वंचित रही उसे इस एक महीने में इतना पाया कि स्वयं को विश्वास नहीं हो पाता। रात में सोते-सोते किसी आहट से चौंक कर जाग उठती तो मेरे पूछने के पहले ही सुनने को मिलता—माफ़ करना बेटी, तुम्हें जगा दिया। ऐसे ही चला आया था देखने कि तुम सोयीं या नहीं।

ज़ीरो बल्ब के धूमिल प्रकाश में उन की लम्बी छाया को सिमट कर विलीन होते देखती और वे मेरे पास ही बैठते हुए कहते—अच्छा तो अब तू सो जा। अब मैं तुझे सुला कर ही जाऊँगा।

और इस तरह वे पूरी रात मेरे सिरहाने बैठे रह जाते। सुबह उठ कर जब मैं उन्हें सिरहाने से टिके ऊँघते पाती तो बिगड़ तक न पाती। बेटी को पा कर वे फिर खोने जा रहे थे। जैसे यह भावना ही उन्हें विच-लित बनाये रखती थी।

कभी खाते-खाते कोई प्लेट मेरे सामने से अचानक खींच लेते—तुम इसे खाती ही जा रही हो बेटी। तुम्हें अच्छे-बुरे खाने का भी ख़याल नहीं?

परिवार के दूसरे व्यक्ति उन के इस व्यवहार से चकित होते। मगर न तो कोई विशेष जिज्ञासा करता और न वे ही इस अस्वाभाविकता का कोई समाधान देते।

इसी तरह महीना एक-एक दिन कर के छीजता गया। डैडी की विचित्रताएँ उस के साथ-साथ बढ़ती गयीं। उन से दूर जाने का मेरा संकल्प उतना ही दुष्कर होता गया।

अब एक ही दिन शेष था। शाम का वक़्त था जब कि डैडी अपने क्लिनिक में मरीज़ों से घिरे रहते थे। पर उन्हें कमरे में आता देखा तो मुझे अचरज ही हुआ। एक हाथ में भारी बैग था। मुश्किल से ढो पा रहे थे। मेरे कमरे में आ कर बैग को उन्होंने एक कुरसी पर रखा और बोले—इसे खोलो तो बेटी।

मैं ने खोला : दवाओं से भरा बक्स। और सुना, वे कह रहे थे—ठीक है न ?

मैं समझ नहीं पायी थी। अबूझ की तरह उन की ओर देखा। वे बोले—यह तुम्हारे लिए है. इसे अपने साथ रखना। जाने कैसे हालात में रहो। दवा की हर वक़्त जरूरत पड़ सकती है। इस बक्स में मैं ने एक नोट-बुक भी रख दी है। उस में हर दवा के प्रयोग के बारे में लिखा है। उसे तुम अच्छी तरह पढ़ लेना। कई बार पढ़ लेना, जिस से वक़्त पर फ़ौरन सही दवा का पता कर सको। ये दवाएँ ऐसी बीमारियों के लिए हैं जिन्हें पहचानना एकदम आसान है। उन के सिम्पटम भी मैं ने लिख दिये हैं। ठीक है न ?

मैं कहना चाहती थी कि इस सब की कोई जरूरत नहीं थी डैडी, पर कह गयी थी—हाँ डैडी।

उत्साहित हो कर बोले थे—एक और बक्स मैं तैयार कर रहा हूँ। फ़र्स्ट एड बॉक्स। वह बहुत ही जरूरी चीज़ है। उस की जरूरत कभी भी पड़ सकती है। फ़र्स्ट एड के बारे में तुम्हें बताने की जरूरत भी नहीं। तुम पहले ही सब कुछ जानती हो। मेरे क्लिनिक में ही तुम ने काफ़ी कुछ किया है। नगरी में भी तो तुम यह सब करती रही।

मैं ने उन के उत्साह को सम्हाले रखने के लिए फिर कह दिया था—हाँ डैडी।

इस के बाद वे कमरे में इधर से उधर घूमने लगे थे। मन की अस्थिरता देह में प्रकट हो रही थी। मेरे पास आ कर बार-बार रुकते। जैसे कुछ कहना चाहते हों। पर फिर आगे बढ़ जाते। उन के मन की दुविधा को ताड़ कर मैं ने ही पूछा—क्या सोच रहे हो डैडी ?

बोले—काम अच्छा है। गौरव का है। वीरता का भी। देशभक्ति से बड़ा कोई धर्म नहीं, परम धर्म है। पर फिर भी मुझे डर लगता है बेटी।

डर किस बात का डैडी ?—मैं ने कहा था। पर मेरे इस प्रश्न को

ध्वनि यही थी कि डर की तो कोई भी बात नहीं। उन्होंने इस ध्वनि को अपने मन के भाव के अनुरूप ही ले कर कहा था—वे लोग नृशंस हैं बेटी। उन का साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने जा रहा है। ऐसे में वे और भी क्रूर हो उठे हैं। कोई मर्यादा उन के लिए मर्यादा नहीं। फिर तुम लड़की हो।

मैं ने कहा था—पर मामूली लड़की नही डैडी। आप की बेटी हूं। भरोसा रखें, आप की बेटी को कोई अपमानित नहीं कर सकेगा।

उन्होंने अस्थिरतापूर्वक कहा था—सो तो है। सो तो है। फिर भी बेटी....

पर कहने को कुछ न पा कर वे फिर कमरे के चक्कर लगाने लगे थे।

उस रात उन्होंने भोजन भी नहीं किया। मेरे कहने पर भी नहीं। कह दिया—पेट खराब है। जिद मत करो बेटी। मैं अपने हर मरीज को ऐसी हालत में उपवास की राय देता हूं। फिर खुद कैसे खा लूं।

मैं ने कहा था—मैं नहीं मानती डैडी।

वे कुछ बिगड़ कर बोले थे—तू क्यों मानेगी ? तू ने दूसरे की बात मानने की आदत तो कभी सीखी ही नहीं।

उन्होंने कभी कोई कटु बात मुझ से नहीं कही थी। पर आज जब वे इस तरह बिगड़ उठे थे तो हर किसी को ताज्जुब हो रहा था। मगर मैं निरुद्विग्न थी। मैं ही जो अकेली उन की पीड़ा का यथार्थ जानती थी।

मैं ने भी उन्हीं की तरह बिगड़ कर कहा था— तो ठीक बात है डैडी, मैं भी नहीं खाऊंगी।

इस पर वे दीन हो उठे थे। उन्होंने जिस आर्त दृष्टि से मुझे देखा था वह मुझे बींध गयी थी। मैं अपनी उस जिद पर पछतावे से भर उठी थी। मैं खाने की मेज पर चुपचाप बैठी सोच ही रही थी कि वे उठ कर मेरे पास आये और बोले—कल तू जा रही है बेटी, और मुझ से झगड़ा करेगी ? जिद मत कर बेटी। मैं नहीं खा पाऊंगा।

इतना कह कर उन्होंने कांपते हाथ से एक ग्रास उठा कर मेरे मुँह

में रख दिया था और मैं रुआंसे मन से किसी तरह उसे चबा कर निगलने का प्रयास करने लगी थी।

उस दिन का खाना फिर कुछ इतनी चुप्पी के साथ पूरा हुआ जैसा कि उस परिवार में कभी न हुआ होगा। लड़कियाँ तो कभी चुप नहीं बैठती थीं। डैडी भी किसी न किसी को छेड़ते ही रहते। मगर वह तो कोई और ही दिन था।

फिर रात को सोने से पूर्व डैडी मेरे कमरे में आये। मैं पलंग पर लेट चुकी थी। वे पास ही कुरसी खींच कर बैठ गये। मैं उठने लगी तो रोकते हुए बोले—*तू लेटी रह बेटी। नींद आ रही हो तो सो जा। मैं तो वैसे ही चला आया। एक रात ही तो तू और यहां है। फिर कल जाने कहाँ जंगलों में होगी। सोचा था अब तुझे यहां से भेजूँगा तो ससुराल ही। और तेरे विवाह पर इतनी रोशनी करूँगा कि बम्बई की दीवाली फीकी पड़ जाये। पार्टी ताजमहल में दूँगा। सोचा था, क्या नहीं करूँगा? पर मेरी बेटी, तू ऐसे ही जा रही है। हवा के सिर्फ़ दो बक्से ले कर जा रही है।*

कहते-कहते उन की आवाज गले में ही फँस गयी थी और आँसू उन की आँखों में तैरते हुए मेरी आँखों से बरस चले थे। वे बच्चों की तरह ज़ोर-ज़ोर से रो पड़े थे। उन का रोना देख कर मुझे लगा था कि मैं उन से दूर कभी नहीं जा पाऊँगी। कभी नहीं।

अगले दिन सुबह पार्टी की गाड़ी डैडी के बँगले पर पहुँच गयी थी। जीप और ड्राइवर। ड्राइवर ने रोज़ की लिखी चिट दी। संक्षेप में कुछ ऐसा लिखा था—ड्राइवर सब जानता है, भरोसे का आदमी है। यथा-स्थान पहुँचा देगा।

मुझे जीप में बैठाते हुए डैडी ने कहा था—मेरा मन करता है कि

…प्राकृतिक अधिकार का उपयोग कर के कहूँ, रुथ तू नहीं जा।
…। पर इतनी भी हिम्मत तो नहीं। मैं खुद जो बहुत पूर्व ही इस
…कार के प्रयोग के लिए अपात्रता प्राप्त कर चुका हूँ।
…डैडी यत्नपूर्वक स्वयं को सम्हाले हुए थे। उन की आँखों के सफ़ेद
…निर्मल थे और मुख निर्विकार। मुझ से बात करने में आवाज़ में
…पन पैदा हुआ था। पर शीघ्र ही उस पर उन्होंने विजय पा ली थी।
…स्वयं भीतर-भीतर विकल हो रही थी।

ड्राइवर ने चलने का संकेत न पा कर कुछ खुश्क सी आवाज़ में
कहा—रास्ता लम्बा है।

डैडी बोले—हाँ चलो बेटी। अब देर मत करो।

ड्राइवर के लिए उतना ही सिगनल काफ़ी था। जीप चल दी।

पहले हमें पूना आना था। पूना से सतारा। फिर कोल्हापुर। कोल्हापुर से बेलगाम। बेलगाम से अनमोड। सचमुच ही लम्बा रास्ता था। महाराष्ट्र और मैसूर दो-दो प्रदेशों से गुजरना था। पश्चिमी घाट का रास्ता। बीच-बीच में काफ़ी ऊँचाइयाँ। अच्छी और बुरी सब तरह की सड़कें। तिस पर बरसात का ज़ोर। पश्चिमी घाट की बरसात।

मैं ने ड्राइवर से कहा था—एक दिन के लिए रास्ता लम्बा है। फिर चलने में भी देर हुई। बीच में कहीं रुकें तो कैसा?

बोला—मुझे आॅर्डर रुकने का नहीं। जब भी पहुँच सकूँ पहुँचना है मतलब आधी रात या अगली सुबह।

मैं ने कहा था—पर रास्ता तो रात में चलने क़ाबिल नहीं।

उस का उत्तर था—हमारा काम ही जोखिम का है।

मैं निरुत्तर हो गयी थी। कोल्हापुर पहुँचते न पहुँचते ही रा…
दस बज गये थे। कोई दो सौ मील का सफ़र अभी बाक़ी था।
बीच में बस हम उतना ही ठहरे जितना पेट्रोल लेने या खुद कु…
लेने के लिए ज़रूरी था। बैठे-बैठे देह चूर हो गयी थी। तिस पर…

सड़कों के धक्के। कोई ढंग का साथी भी नहीं। ड्राइवर से मुझे अनायास ही वितृष्णा हो चली थी। उस की आवाज़ बेहद खुरदुरी थी। आँखों का भाव अजीब था। हालाँ कि बात करते वक्त भी वह आँखें मिलाता न था, फिर भी उन का असहज भाव छिप न पाता था। अपनी ओर से वह कोई बात करता ही न था और मैं ने ही जब-जब कुछ पूछा तो उस का खुरक और टेढ़ा जवाब ही दिया।

फिर भी मैं उस से बात करने से विरक्त नहीं हो पा रही थी। यह नहीं कि मैं चुप नहीं रह सकती थी। बल्कि उस व्यक्ति को देख कर मुझे बराबर एहसास होता था कि मैं उस से मिल चुकी हूँ। प्रयत्न करने पर भी मैं कोई वैसा अवसर सोच नहीं पा रही थी। फिर भी मन उस आभास से विपरीत न हुआ। वह तो सर्वथा पराङ्मुख था ही।

जब कोल्हापुर पीछे छूट चला और बरसाती रात की कालिमा ने दृष्टि को और भी आत्म-केन्द्रित कर दिया तो मैं फिर उस से बात करने के बहाने खोजने लगी थी। कभी सड़क की हालत के बारे में कुछ कहा तो कभी जीप के बारे में। उस के ड्राइविंग की भी प्रशंसा की और जब मुझे यह विश्वास हो गया कि वह स्वभाव का खुरदुरा है, विशेष और कुछ नहीं, तो मैं उस से व्यक्तिगत प्रश्न भी कर बैठी। मैं ने पूछा था—घरबार कहाँ है तुम्हारा?

उस का उत्तर था—इसी जीप में।

उस के इस उत्तर से मैं कुछ करुण हो उठी थी। इस बार ममत्व के साथ पूछा—माँ बाप भाई बहन कोई नहीं? शादी भी नहीं की?

उत्तर में वह वक्रता-पूर्वक हँस भर दिया था। मैं फिर भी निरुत्साहित नहीं हुई। कहा—इतना अकेला तो दुनिया में कोई नहीं होगा?

कह कर मैं स्वयं ही हिचकी थी। मेरी अपनी जिन्दगी क्या थी? सब कुछ के रहते भी न कुछ। निग्यु-इन्फ़ैण्टिल में पलने वाले अधिकतर बच्चों का भाग्य या दुर्भाग्य ऐसा ही कुछ तो था। पर मेरी इस बात ने

लने को वाध्य कर दिया था। कहा—तव तो आप दुनिया के वारे नहीं जानतीं। मुझे ताज्जुब हो रहा है कि आप को क्या सूझा जो स्ते पर निकल पड़ीं ?

मैं ने कहा था—दुनिया को जानना जो है।

इस पर उस ने गले और नाक से एक अवज्ञात्मक सी ध्वनि की थी। थ ही एक्सिलरेटर वाला पाँव जैसे दव गया था। गाड़ी की गति ज़्यादा ज़ हो चली थी। मैं ने सहम कर कहा था—रात में इतना तेज़ ?

उस का उत्तर था—आप भी खूब हैं। किसी ड्राइवर से फिर कभी ऐसा मत कहिएगा। गाड़ी चलती ही रात में है।

इन वेकार की वातों के वाद मैं कुछ देर के लिए फिर चुप हो गयी थी। पर मन का यह विचार कि वह ड्राइवर सर्वथा अपरिचित नहीं, मुझे वेचैन कर रहा था। इसलिए उस मौन के वाद मैं ही वोली—गोआ तुम ने कव छोड़ा ?

उस ने कुछ रुक कर कहा था—याद नहीं। वहुत छोटा था तव। यही कोई सात-आठ साल का।

ओह तव तो वहुत दिन हुए।—मैं ने कहा और पूछा—माँ-वाप क्या करते थे ?

उस ने फिर गले और नाक से वही अवज्ञात्मक ध्वनि की और कहा—पता नहीं क्या करते होंगे। एक दूसरे को धोखा देते होंगे।

माँ-वाप के वारे में उस के ये विचार स्वाभाविक न थे। इसी मैं ने पूछा—क्या घर से भाग कर आये थे ?

इस वार वह सड़क की ओर न देख कर मेरी ओर देखने लगा थ मैं ने उसे सावधान करते हुए कहा—सामने मोड़ है।

उस ने उस ओर ध्यान न दे कर गाड़ी को सम्हाल कर वढ़ा कहा था—आप सच कुछ नहीं जानतीं। हर वच्चे के लिए माँ-वा होना ज़रूरी नहीं। दुनिया में लोग विना माँ-वाप के भी आ जा

[illegible] से ही [illegible] होते हैं।

अकस्मात मुझे [illegible] हुआ है। माँ-बाप की सूरत नहीं देखी। आँखें ही किसी [illegible] के दरवाज़े पर खोलीं। और उस की समस्त उपेक्षा के बावजूद मैं [illegible] उस के प्रति एक निरन्तरता अनुभव करती [illegible] थी। [illegible] सत्य जानने के लिए मैं ने उसे अपने जीवन का सत्य बताया। [illegible] बात पर मुझे अचरज नहीं हुआ। [illegible] होने से पहले ही अनाथ और लावारिस हो जाते हैं।

इस पर उस ने मेरी ओर देखा और फिर [illegible] सड़क की तरफ़ देखते हुए कहा—आप को [illegible] यक़ीन नहीं होता।

तब तो मेरा कुतूहल और भी बढ़ा [illegible] दिया। थोड़ी देर चुपचाप खड़ी [illegible] जानिए, मैं अपने माँ-बाप में से किसी को नहीं जानता। [illegible] की सन्तान था। [illegible] को ग़लती की, मुझे [illegible] छोड़ गयी थीं।

[illegible] !—आश्चर्य से [illegible]।

आप जानती हैं उस के [illegible]? [illegible]।

मैं ने उत्तर न दे कर पूछा—[illegible]?

आतुर !—उस ने [illegible]।

ध्वनि परिचित होने पर [illegible] रहा था। मैं ने फिर पूछा—पूरा नाम?

पूरा नाम और [illegible] स्वर में उस ने कहा था—[illegible] तो आप [illegible]

लिए कह दूँ :
जुड़ी होनी चाहिए। चलिए आप के सन्तोष के
क्लर्जी।
र्जी ?—मैं चकित हुई। उस ने बताया—मेरी हर बात पर
ो अचरज होगा। पर मेरी ज़िन्दगी की सचाई ही कुछ ऐसी है।
में मैं आज अच्छा या बुरा जो कुछ भी हूँ वह सब एक क्लर्जी की
त। वह निन्यु इन्फ़ैण्टिल में आता था। मुझे टॉफ़ियाँ खिलाता था
मैं एक सुन्दर लड़का था। उसी के साथ वहाँ से भाग गया था
द्रह साल को उम्र तक उस के साथ रहा। फिर एक दिन वह १०
क्सिडेण्ट में मारा गया। मैं फिर अकेला रह गया। उस के बाद एक
ट्रक पर क्लीनर बना। क्लीनर के बाद ड्राइवर। इसी तरह लम्बा अरसा
बीता। फिर एक दिन कोई साल भर हुआ यह जो रोज़ मेम साहब हैं
इन से उन के ड्राइवर की मार्फ़त मुलाक़ात हो गयी। मैं गोन हूँ इस
वजह से इन्होंने मुझ में दिलचस्पी दिखायी और कहा—"ऐसा काम
करोगे जो गोन लोगों की भलाई का हो। मैं ने कह दिया था—मुझे
किसी की भलाई-बुराई में दिलचस्पी नहीं। गोन मेरे होते भी क्या हैं।
पर आप जो कहेंगी वह मैं करूँगा। बस उन्होंने मुझे पार्टी का मेम्बर
बनाया और यह जीप थमा दी।

कह कर वह हँस पड़ा। पर उस की बातों से मैं सुदूर अतीत में
पहुँच गयी थी। अब मुझे सुन्दर मनोहर शिशु आतुश याद आया। उस
की टॉफ़ियाँ और निर्लज्ज बातें, उस क्लर्जी से रात के अन्धकार में
मिलना, सब याद आया। और वह रात भी याद आयी जब वह मद
सुपीरियर के डर से भाग खड़ा हुआ था। और मैं ताज्जुब कर रही
कि उस का सुकुमार रूप और मीठा स्वर कैसे इतना भद्दा और खुर
हो उठा। एक बार मन में आया कि उसे बता दूँ मैं रुथ हूँ, बचपन
साथी रुथ। और वह रोज़ भी और कोई नहीं, वही रोज़ है जिसे
मोटा व्यापारी गोद ले गया था। मगर फिर चुप रह गयी। उल
अ

में यही संस्कार जागा कि यह सब वह न ही जान पाये तो अच्छा। जान कर जब वह आत्मीयता की सीमा में आ कर अपनी कुत्सना का विस्तार करेगा तो वह शायद असह्य हो उठे।

मुझे चुप देख कर वह बोला—मेम साहब, तभी तो मैं ने कहा था आप दुनिया के बारे में कुछ नहीं जानतीं।

मैं ने उस की बात का कोई विरोध नहीं किया। पर पूछा—तुम्हें अपने बचपन के साथी याद आते हैं?

इस पर वह हँसा। बोला—भेड़ों के भी साथी होते हैं भला। साथ रहना ही साथी बन जाना नहीं। ढेरों बच्चे थे वहाँ। भेड़ों की तरह साथ रहते थे। मुझे किसी के बारे में कुछ याद नहीं। हाँ वे टॉफियाँ जरूर याद हैं।

कह कर वह एक विचित्र जुगुप्सात्मक ढंग से हँसा था और उस हँसी ने जैसे उस से बातें करने के रहे-सहे उत्साह को ठण्डा कर दिया था।

मन भी कैसा अजीब होता है। शुरू में वह चुप्पा था। उकसा-उकसा कर मैं ने उस का मुँह खुलवाया। और अब जब वह सच-सच बोल उठा तो मैं सिमट चली। मैं उसी के वर्ग की हूँ, यह फिर कहने की हिम्मत नहीं हुई। अपने समस्त धार्मिक आदर्शों के बावजूद मैं उस अभागे पापी के प्रति भी कोमल न हो सकी जो मेरे ही परिवार का था। अनाथ कुल का।

इस के बाद मैं देर तक कुछ नहीं बोली। वही बीच-बीच में अपने किस्से सुनाता समाज की नैतिकता का मजाक उड़ाता रहा। इसी तरह समय बीता। रास्ता तय हुआ। बेलगाम पीछे हटा। हम अब लोण्डा की तरफ बढ़ रहे थे। रातके कोई तीन बज चले थे। आँखें कड़आने लगी थीं। बीच-बीच में नींद का झोंका भी आ जाता मगर फिर झटके के साथ निकल भी जाता। आनुग ने इस बीच कई बार थोड़ी-थोड़ी शराब भी पी थी। पतलून की जेब में बोतल रखता था और मुँह से लगा कर घूँट

था। एक बार शिष्टाचार के नाते भी उस ने नहीं पूछा कि मेरे
पीने से आप को एतराज़ तो नहीं। मैं ने भी कुछ नहीं कहा। मैं
को इतना अधिक देख चुकी थी कि अब उस में कोई अस्वाभाविकता
लगती थी। हां असहज लग रहा था तो वह रास्ता, चारों ओर का
कार, वह समय, आतुश का आविर्भाव, और उस का भी उसी पवित्र
ष्ठान में सहयोगी होना जिस के लिए मैं अभी-अभी संकल्पित हुई थी।

यह एक प्रकार से मेरे मन की बेईमानी ही थी कि मैं ने आतुश को
पना सच्चा परिचय नहीं दिया। उस ने भी मेरे बारे में कुछ नहीं पूछा।
ल्कि समय-समय पर उपेक्षा ही दिखाता रहा। एक बार तो यहाँ तक
कह गया—दुनिया में सिर्फ़ मर्द ही मर्द होते तो क्या बुरा था।

मैं ने कहा था—दुनिया कैसे चलती तब?

उस का जवाब था—इस की फ़िक्र दुनिया चलाने वाले को होती।
कोई राह वह निकाल ही लेता।

मैं घबड़ा कर उठी । अभी और चलना है इस बात से परेशान भी हुई । पर ज्यादा चलना नहीं था । पास ही एक झोंपड़ी थी । घाट की ऊँचाई पर पेड़ों के झुरमुटों के बीच में । उस झोंपड़ी के पास पहुँच कर उस ने आवाज़ दी थी—पाण्डुरंग नायक ।

कौन मोटर बाबू ?—भीतर से ही उस ने कहा था—चले आओ ।

हम अन्दर घुसे । झोंपड़ी में दो सँकरे तख्त बिछे थे । एक खाली था, दूसरे पर पाण्डुरंग लेटा था । हमारे प्रवेश करने पर भी वह लेटा ही था । पर जैसे ही मुझ पर नज़र पड़ी तो उठ बैठा । पूछा—साथ में कौन है ?

आतुर ने बताया—पार्टी की नयी मेम्बर । बाकी ये खुद बतायेंगी । मैं इन्हें पहुँचाने भर आया हूँ । अभी ही लौट जाता हूँ ।

और आराम ?—पाण्डुरंग ने पूछा था ।

हाँ आराम चाहिए तो । सड़क किनारे के तुम्हारे होटल में जा कर लेटता हूँ । जीप भी वहीं है । और मेम साहब का सामान भी ।—आतुर ने कहा ।

उस की बात सुन कर पाण्डुरंग उठा और बोला—चलो मैं भी चलता हूँ । तुम्हारे साथ वहीं आराम करूँगा । मेम साहब यहीं ठहरेंगी । सामान दिन में आ जायेगा ।

इतना कह कर दोनों चल दिये, जैसे मेरे परामर्श की कोई आवश्यकता थी ही नहीं । मैं भी थकान से चूर थी । नींद आँखों पर बोझ बन कर बैठी थी । बस उन के जाते ही मैं तख्त पर गिर सी पड़ी थी । अपरिचित जन, अपरिचित स्थान तक का भय नींद को टाल न सका था ।

रुथ ने इतना कह कर कथा को हल्का सा विराम दिया था । तभी मैं ने कहा था—आज तुम्हें नींद नहीं आ रही ?

वह विदग्ध मुसकान के साथ बोली थी—नहीं, आज मुझे जाग आ रही है ।

मैं हलके से हँस दिया था और रुथ ने कथा का सूत्र बढ़ाया।

वे कुछ दिन भी अद्‌भुत थे। पाण्डुरंग नायक किन्हीं मानों में असाधारण था। उस रात के बाद जब मैं सो कर उठी तो दोपहर हो चुकी थी। पाण्डुरंग जैसे मेरे जागने की प्रतीक्षा कर रहा था। उस वीरान में भी उस ने मुझे कोई असुविधा नहीं होने दी? ज़रूरत की सब चीज़ें थीं। मेरा बिस्तर और बक्स दूसरे तख्त पर पहले से ही रखे थे। भोजन किया। फिर पाण्डुरंग ने बताया—ड्राइवर लौट गया है। उसे वहाँ ज़रूरी काम था। आप की हर सुविधा की ज़िम्मेदारी अब मेरी है, किसी तरह की तकलीफ़ नहीं होगी।

इस से पहले कि मैं खुद पूछूँ उस ने समझाना शुरू किया—यह भारत का सीमान्त है। कस्टम चौकी भी यहीं है। नीचे पास ही मेरा होटल है। होटल क्या एक बड़ी सी छानी है। पर चाय-कॉफ़ी और खाना मिल जाता है। कस्टम वाले मेरे ही होटल में खाते हैं। इस के अलावा दूसरे आने-जाने वाले भी। बॉर्डर अभी पूरी तरह सील न हुआ है। कुछ न कुछ यातायात है ही। यह सब मैं ने आप को इस बताया कि मेरा असली मन्तव्य यहाँ कोई नहीं जानता। यहाँ से पा हमारा मोबाइल ट्रान्समिटर जंगल में छिपा है। ब्रॉडकास्ट के रेडीमेड प्रोग्राम बम्बई से आते हैं। फिर भी कभी न कभी यहाँ करना ही पड़ता है। खास-खास ऐनाउन्समेण्ट भी यहीं से होते हैं तक ज्यादातर मैं ही यहाँ का काम देखता था। मदद के लिए ट्रा का इंजीनियर है। मगर होटल को सम्हालना और साथ ही भी सम्हालना जरा झंझट की बात थी। इसी से पार्टी से माँगी थी। आप आ गयीं अच्छा हुआ। मगर आप यहाँ फ़ाँक सकेंगी। मैं ने सब को बताया है कि मेरी बहन आयी है।

साड़ियों का इन्तज़ाम है।

मगर मेरे बाल ?—मैं ने कन्धों तक झूलते अपने बालों के प्रति सजग हो कर कहा था।

वह बोला —उस की फ़िकर नहीं। मेरी बहन बम्बई से आयी है। पढ़ी-लिखी है। नौकरी करती है। इधर तबीयत ठीक नहीं रहती थी। मेरे पास चली आयी है। बम्बई में बाई लोग ऐसे बाल रखती ही हैं।

इतना कह कर वह हँस पड़ा। पाण्डुरंग युवा था। आकृति से भद्र। वाणी और व्यवहार से भी भद्र। मैं ने उस से पूछा—तुम यहाँ कब से हो ?

उस ने बताया—कोई साल भर से। मगर ब्रॉडकास्ट का काम नया है। पहले यह कॉण्टैक्ट चौकी मात्र थी। गोआ के भीतर और इधर बाहर जो पार्टी के मेम्बर थे वे यहाँ आसानी से मिल सकते थे। पार्टी का लिटरेचर भी इसी चौकी से गोआ में भेजा जाता था।

मुझे वह सब बड़ा रोमांचक और रहस्यमय लग रहा था। औपन्यासिक सा। और अब मैं स्वयं वह रोमांचक पार्ट खेलने वाली थी। मैं ने फिर पूछा—तुम्हारा मन लग जाता है इस वीराने में पाण्डुरंग भाई ?

वह फिर हँसा। बोला—वीराने से थोड़े ही मन लगाने आया हूँ। मन तो काम से लगाना है। बम्बई में पढ़ाई की, ग्रेजुएट हुआ। पर यहाँ रहते-रहते जो आज़ादी की बान पड़ गयी थी उस ने मुझे चैन से रहने नहीं दिया। गोआ के थोरिम गाँव में मेरा घर है, नारियल के पेड़ों और धान के खेतों की भरमार। पर उस समस्त नैसर्गिक सुषमा में भी मैं अजीब घुटन महसूस करता था। यह मैं मानता हूँ कि पोर्चुगीज़ ने कभी रंग-भेद नहीं बरता। अँगरेज़ों वाली अलग-अलग बनी रहने वाली अहन्ता भी उन में नहीं। मगर हमारा विकास तो वे नहीं चाहते। हमें कोई सुविधा भी देते थे तो वह इसलिए कि हम में स्वतन्त्रता की चेतना न जागे। मगर मैं ने वे संस्कार बम्बई के स्वतन्त्र वातावरण में पा लिये

लिए जब भी गाँव आता और यहाँ से लौटता तो मन में एक आग ले कर ही। सारा भारत स्वतन्त्र, केवल गोआ परतन्त्र रह ...श बना है ? गोआ के लिए भारत विदेश, भारत के लिए गोआ ? और पुर्तगाली कहें कि गोआ पुर्तगाल का सूबा है ? यह सब ...श्त नहीं होता, पर कुछ कर नहीं पाता। कोई रास्ता नहीं सूझता। मैं पार्टी के सम्पर्क में आया। मेरे लिए राह खुली। और उस दिन मैं ने अपार गर्व का अनुभव किया था जिस दिन मुझे इस चौकी का ...र्ज मिला। दुनिया के लिए राहगीरों की आरामगाह चाय-पानी की ...गह ! पर मेरे लिए चौकी ! फ़ौजी चौकी, स्वतन्त्रता की चौकी !

उस की सरल आकृति उस की बड़ी-बड़ी आँखों से बड़ी प्रभावशाली लगती थी। उन आँखों में उस समय आत्मविश्वास की मशाल जल रही थी। मुझ से वह उम्र में छोटा था। फिर भी उस की उस भावना के प्रति मैं श्रद्धालु हो उठी थी। मुझे यह अपना सौभाग्य ही लगा कि उस जैसा आदमी मुझे सहयोगी के रूप में मिला।

पाण्डुरंग कवि भी था। पोर्चुगीज भाषा में भी कविता करता था और कौंकणी में भी। छपा-वपा तो कुछ नहीं था। पर लिखता था। एक दिन अचानक उस की नोटबुक मेरे हाथ पड़ गयी। कुछ दिनों से मेरे जिद करने पर उस झोंपड़ी में ही दूसरे तख़्त पर वह सोने लगा था। सिरहाने ही तकिये के नीचे वह रखी थी। ज़रा ग़लत सी बात है किसी की डायरी या नोटबुक देखना। मगर मैं खोल बैठी। और जब उस में कविता... पायीं तो पढ़ने लगी। तभी वह आ गया था। देख कर बड़ा सकुचाय...

मैं ने कहा—ताज्जुब है कि कवि हो कर भी तुम ख़ुद को इस त... छिपाये रहे। मैं तो अब तक यही जानती आयी हूँ कि कवि को श्रोत... तलाश कुछ वैसे ही रहती है जैसे पुलिस को चोर की।

मेरी इस बात पर वह जोर से हँस पड़ा था। फिर कहा—अ... अभी तक मुझे यही पता नहीं कि मैं जो कुछ लिखता हूँ वह क...

आस-पास भी हैं या नहीं। जिस दिन यह भ्रान्ति हो जायेगी कि मैं कवि हूँ उस दिन इस पहाड़ी के हर पेड़ को मेरी कविता सुननी होगी।

मैं ने कहा था—पर मैं उस दिन के लिए नहीं रुकूँगी। मैं तो आज ही सुनूँगी और फिर बराबर सुना करूँगी।

मगर आप पढ़ तो चुकी हैं।—उस ने फिर ससंकोच कहा था।

पर कवि-कण्ठ का रस भी तो कुछ होता है। मेरा उत्तर था।

वह मजबूर हो गया। पहले दबी आवाज़ से सुनायी। फिर धीरे-धीरे झिझक दूर हुई तो मुक्त भाव से गाने लगा। वह विश्रान्त। रात्रि का निभृत। एक तरुण कवि और गायक। तिस पर अपार संवेदनों का बोझ ढोता हुआ मेरा मन। उस की कविताएँ सुन कर जैसे मेरे मन की ग्रन्थियाँ खुलने लगी थीं और जो संवेदन बोझ बने थे अब वे ही मेरी रसानुभूति के पंख बन गये थे। मैं आनन्द के मुक्त आकाश में उड़ने लगी थी। जो काव्यानन्द उस दिन पाया था वह अद्भुत था।

इसी तरह मैं एक अजीब जिन्दगी जी रही थी। ममी-डैडी की याद आती। डैडी के समाचार आनुश से मिल जाते। वह जब भी बम्बई से प्रोग्राम के टेप ले कर आता रोज़ की मार्फ़त उन का सन्देश भी ले आता। उन्हीं से पता चल जाता ममी ठीक हैं। एमेरिक एफ़. आर. सी. एस. हो गया था। आज-कल गोआ में था।

पर मैं जल्दी ही मन को उन दिशाओं से समेट लेती और वर्तमान में रहने लगती। मैं ने कहा न कि अजीब जिन्दगी जी रही थी। एकदम अवास्तविक और कल्पनाशील, फिर भी यथार्थ से जुड़ी। वह यथार्थ था गोआ की आज़ादी। और वह आज़ादी मेरे लिए पूजा-योग्य हो उठी थी। जैसे चर्च में प्रतिदिन 'होली मास' ज़रूरी हो उसी तरह हर साँस में आज़ाद गोआ के चित्र को उभारना मेरी पूजा थी। फलतः मैं हर वक़्त एक प्रकार के नशे में रहती। वह नशा और भी तीव्र हो उठता जब पाण्डुरंग की बातें सुनती या उस के आज़ाद रहने वालों में पढ़ती।

स की एक कविता का आशय था : 'तुम्हारे दिये अलंका
री माँ को बन्धन मत दो।' उस कविता को गाते-गाते वह कुछ का
हो उठता था। आँखों में आग भी आँसू भी, कण्ठ में वज्र भी
मलता भी। और मैं खुद रोमांचित होती अनुभव करती जैसे मेरे
आ की हजारों आँखें आँसू बन कर मुझ पर बरस रही हैं।

उस अनुभूति को बताया नहीं जा सकता। मैं खुद उस अनुभूति से वंचित इतनी बड़ी हो गयी थी। यह संयोग ही था कि रोज से मुझे यह दिशा मिली और उस अनुभूति की तीव्रता का पोषण कवि की वाणी ने किया।

और इसी तरह मेरा जीवन जैसे क्लाइमेक्स की ओर बढ़ रहा था। बीच-बीच में जब आतुश आता, मुझे अतीत की ओर खींच ले जाता। वह, मैं और रोज किन्हीं अर्थों में बालसखा थे ही। मगर वह हम दोनों में से किसी को नहीं पहचानता लगता था। उस की वर्तमान कुरूपता में भी नन्हा सुकुमार आतुश मुझे अब दीखने लगा था। पर दोनों का सम्बन्ध कुछ अविभाज्य था। उस शिशु आतुश में जो अन्तरंग कुरूपता थी वही इस वर्द्धित आतुश के बहिरंग पर भी छा गयी थी।

पहले दिन, जीप में आते हुए उस ने स्त्री के प्रति जो विचार प्रक किये थे वे निराले ही थे। पर इधर जब भी वह आता मुझ में रस लेत जितना भी हो सकता मेरे साथ रहने की करता। पाण्डुरंग की उपसि में चुप्पा हो जाता पर उस के जाते ही मुखर।

पाण्डुरंग की तुलना में उस का सम्पर्क उस काली छाया की त जो प्रकाश को ग्रसती जा रही हो। रोज ने बताया था वह भ आदमी है, पर मेरे मन में उस के प्रति अनास्था बढ़ती जा रही थ कारण न खोज पा कर भी मैं उस की उपस्थिति से आशंकित हो उ

मेरी यह आशंका फिर एक दिन पुष्ट हो ही गयी। पाण्डु काम से बेलगाम गया था। वह अगले दिन लौटने वाला था।

जाते ही आतुश आ गया। उस का आना कोई अस्वाभाविक न था। आ कर रुके रहना भी उतना ही स्वाभाविक हो चला था जितना कि चले जाना। पर उस दिन उस का रुके रहना मुझे अस्वाभाविक लगा। उस ने कहा भी—लौटना तो मुझे आज ही था, मगर पाण्डुरंग से मिले बिना नहीं जा सकता।

मैं ने उत्तर में कोई प्रतिक्रिया नहीं दिखायी थी यद्यपि मेरे मन की प्रतिक्रिया मुझ पर स्पष्ट थी। शाम होने पर वह कहीं चला गया था। खाना मैं झोपड़ी में ही खाती थी। उस दिन ब्रॉडकास्ट के बाद जब ट्रान्समिटर से लौट रही थी तो एक ढलान पर पाँव फिसल गया था। कई जगह से बदन छिल गया था और कमर में भी चनका आ गया था। इसी से खाना खा कर मैं सुस्त सी लेटी थी। तभी आतुश सीधा अन्दर चला आया। इस से पहले वह आवाज़ दे कर भीतर आता था। पर अब जैसे उस ने उस की जरूरत ही न समझी हो। झोंपड़ी में लालटेन जल रही थी। बत्ती धीमी कर रखी थी। रात भर ऐसे ही जलती रहती थी। उस मद्धिम जोत में आतुश का प्रवेश काली और अशुभ छाया सा लगा। आ कर पाण्डुरंग के तख्त पर बैठ गया। मुँह से उठती शराब की बू मुझ से छिपी न रही। जब बोला तो और स्पष्ट हो गया कि आज उस ने खूब पी है। खुद ही कहा उस ने—बहुत दिनों बाद भरपेट शराब पी है मैं ने आज।

मैं ने कहा था—पर शराब तो ऐसी चीज़ नहीं जो भरपेट पी जाये।

इस पर उस ने खलनायक की तरह हँसते हुए नाटकीयता-पूर्वक कहा था—बड़ी भोली हो। अरे जब शराब मुफ़्त की मिलती हो तो भरपेट पीनी ही पड़ती है। फिर वह भी विलायती शराब।

एक बार तो मेरे मन में आया कि उस से पूछूँ कि वह कौन बेवकूफ है जो उस पर इतना उदार हुआ। पर उस से बात करने की अनिच्छा होने से चुप ही रही। मगर वह चुप रहने के मूड में न था। बड़े अधिकार

य पाण्डुरंग के विस्तर पर लेट गया। पाँव से जूते तक नहीं उतारे। लेटे ही उस ने एक सिगरेट निकाली। लाइटर से जलायी और धुआँ ड़ते हुए बोलता रहा। अनेक असम्बद्ध बातें कह गया। डींगें हाँकीं। हाँ तक कह डाला—मैं ड्राइवर जरूर हूँ मगर गोआ के हर बड़े अफ़सर को जानता हूँ। गवर्नर-जनरल भी मुझे शराब पिलाना चाहेगा। मगर मेरा मन, पीऊँ या न पीऊँ।

मैं ने उस की बातों को बकवास से ज़्यादा कुछ नहीं समझा था। इसी तरह डींगें मारता हुआ वह उठ बैठा और मेरी ओर देखता हुआ बोला—तुम्हें देख कर मैं औरत के बारे में कुछ और सोचने लगा हूँ।

औरत के बारे में उस की राय जानने का मुझ में कोई उत्साह नहीं था। इसी से चुप रही। मगर वह अपनी राय देने पर तुला था। बोला—अब मैं मानने लगा हूँ कि दुनिया में औरत का होना ज़रूरी है।

सुन कर मैं हलके से हँसी। बोला—हँसती हो। पर मैं सच कहता हूँ। तुम्हें जब-जब देखता हूँ तो यही लगता है कि तुम्हारे बिना यह दुनिया कितनी बेकार होती।

उस की इस बात से मैं उत्तेजित ही हुई। मुझे अच्छा नहीं लगा मैं ने कठोर हो कर कह दिया था—आतुश कुछ और बात करो। मैं अप चर्चा पसन्द नहीं करती।

पर इस पर भी वह ढीठ की तरह बोला—मैं तुम्हारी पसन् बात तो नहीं कर रहा हूँ। यह तो मेरी पसन्द है। मेरी अपनी प

इतना कह कर वह तख्त से उठ कर मेरी ओर बढ़ आया लगा जैसे कोई पाप-छाया बढ़ी। मैं ने पहले से भी अधिक कठोर कहा—अच्छा हो तुम नीचे चले जाओ। मैं अपने बारे में तु सुनना पसन्द नहीं करती।

पर वह उलटे मेरे तख्त पर हाथ टेक कर मेरे ऊपर झ और उसी स्थिति में बोला था—मैं ने कहा नहीं कि मुझे तु

से कोई मतलब नहीं। यह मेरी अपनी पसन्द है कि मैं तुम्हारी तारीफ़ करना चाहता हूँ। तारीफ ही नहीं उस से भी कुछ ज्यादा।

उस का मुँह मेरे मुँह के काफी समीप आ गया था। तीव्र प्रतिक्रिया हुई और मैं ने उस के मुँह पर एक तमाचा जड़ दिया। तमाचा खाते ही वह सीधा तन कर खड़ा हो गया। और ऊँची आवाज में बोला—तुम ने मुझे तमाचा मारा। नहीं, मुझे नहीं, गोआ के गवर्नर जनरल के मुँह पर तमाचा मारा। सालाजार के मुँह पर तमाचा मारा। पोर्तुगीज हुकूमत यह हर्गिज बरदाश्त नहीं करेगी। हर्गिज नहीं।

भीतर-भीतर मैं भय से जकड़ी जा रही थी। यह जानते हुए भी कि वह पिये हुए है, मुझे वह आतंकित कर रहा था। वह कुछ क्षण इसी प्रकार प्रलाप करते हुए खूँखार नजरों से मुझे देखता खड़ा रहा, फिर चला गया।

वह रात मैं ने बेहद बेचैनी के साथ बितायी थी।

अगले दिन पाण्डुरंग आ गया था। दोपहर से पहले ही। मैं उस के लौटने का इन्तज़ार बेकली से कर रही थी। वह स्थिर मुसकराहट के साथ आया। पर मेरी व्यग्रता देख कर तुरन्त गम्भीर हो गया। मैं ने छूटते ही पूछा—मातुश गया?

उस ने पूछा—वह आया था क्या? क्या बात है?

मैं ने बताया—कल वह तुम्हारे जाते ही आ गया था। फिर जाने शाम को कहाँ गायब रहा। रात को लौटा तो खूब शराब पी कर। फिर लगा अनाप-शनाप बकने। वह आदमी अच्छा नहीं। मुझे उस से डर लगता है। पार्टी को ऐसे आदमी पर विश्वास नहीं करना चाहिए। मैं दृढ़ न होती तो वह शायद कुछ बदतमीजी ही कर बैठता।

पाण्डुरंग की मनोहर आकृति कठोर पड़ चली थी। होंठ काटते हुए उस ने धीमे से कहा—"हूँ!" इस के बाद वह बेचैनी से झोंपड़ी में इधर-

...मने लगा था। मैं ने धीरे-धीरे रात की :सभी बात उ...
।

सुन कर वह बोला—मुझे नहीं लगता यह नशे की झोंक भर थी। कोई गम्भीर बात अवश्य है। हमें सावधान रहने की ज़रूरत है। फ़ौरन ही पार्टी की ऐक्शन कमेटी को खबर करनी चाहिए।

पर वह तो बम्बई में है—मैं ने चिन्तापूर्वक कहा था।

हाँ—वह बोला—मुझे फिर बेलगाम जाना होगा। फ़ोन पर बात करूँगा। सोचता हूँ फ़ौरन जाऊँ।

मैं ने कहा—पर अभी तो लौटे हो। कुछ खा-पी तो लो।

नहीं बहन।—पाण्डुरंग मन ही मन जैसे कोई निश्चय कर चुका था। —मुझे फ़ौरन जाना चाहिए।

पर सवारी?—मैं ने पूछा था।

बोला—कस्टम चौकी जा कर देखता हूँ। शायद कोई ट्रक मिल जाये। अच्छा; मैं चलता हूँ। तुम सावधान रहना।

मैं क्या सावधानी बरतूँ मेरी समझ में नहीं आ रहा था। फिर भी मैं ने उसे आश्वस्त करने को कह दिया था—अच्छा।

फिर जब वह कुछ देर तक नहीं लौटा तो मैं ने मान लिया कि उसे बेलगाम के लिए कोई न कोई सवारी मिल ही गयी है।

पर वह दिन बेहद लम्बा सा हो गया था। हर उपस्थित क्षण बेचै... से भरा। हर आने वाला क्षण आशंका से आपूर्ण। और हर बीत... क्षण राहत से भरा। जब समय साँसें गिन-गिन कर बिताना पड़े... आयु का भक्षण ही करता लगता है। जैसे रेत-रेत कर जीवन... काटी जा रही हो। इतनी बेचैनी के लिए पर्याप्त कारण न होने... मैं बेचैन ही रही इसी तरह शाम भी आ गयी और बीत भी च... में आठ बजे मुझे ब्रॉडकास्ट के लिए ट्रान्समिटर पहुँच जाना था... समीप होने पर भी रास्ते की दुर्गमता के कारण पहुँचने में...

लग ही जाता था। मैं चाहती थी कि पाण्डुरंग लौट आता और मैं उस से मिल कर जाती। मगर वह इतनी जल्दी लौट भी कैसे सकता था। फ़ोन मिलने में भी तो देर लग सकती थी। आखिर मैं निराश भाव से चल दी। समय से ट्रान्समिटर के स्थान पर पहुँच गयी। पर जैसे ही वहाँ पहुँची मैं ने देखा इंजीनियर ट्रान्समिटर के पास नहीं है। मुझे हैरत हुई। वह समय का बेहद पक्का था। गोन न होने पर भी वह इस काम को एक देशभक्त गोन की तरह करता था। वह कहाँ अटक सकता है, मेरी समझ में नहीं आया। वह पास के एक गाँव से आया करता था, ज़रा लम्बा रास्ता था, फिर भी वह समय से पहुँचता। मेरा मन उस की अनुपस्थिति में अशुभ की कल्पना से भर उठा था। तभी मैं ने अपने पीछे भारी क़दमों की आवाज़ सुनी। इंजीनियर सदाशिव तो हलके क़दमों से चलता था। फिर भी मेरी पहली प्रतिक्रिया यही हुई कि सदाशिव ही आया है। मैं ने उस दिशा में देखे बिना कहा—बड़ा देर कर दी सदाशिव ?

पीछे से अपरिचित फिर भी परिचित सी आवाज़ आयी—नहीं मैं तो समय से ही पहुँचा।

सदाशिव से मैं अँगरेज़ी में ही बात करती थी। अँगरेज़ी का अभ्यास बम्बई में हो ही गया था। पर उत्तर पोर्चुगीज़ में आया। सदाशिव तो पोर्चुगीज़ नहीं जानता था। मैं ने घबड़ा कर जो स्वर की दिशा में देखा तो जोज़े था। फ़ौजी वर्दी में। मेरे मुँह से अचानक निकला—तुम ?

जोज़े को भी मेरी उपस्थिति पर अचरज ही हुआ—तुम ?

फिर क्षणिक मौन। इस मौन के बाद वह धीमी पर घबड़ाहट भरी आवाज़ में बोला था—तुम यहाँ क्या कर रही हो ?

अब मैं संयमित हो चुकी थी। जोज़े पुर्तगाली सरकार के खुफ़िया विभाग का मुखिया था यह मैं जानती ही थी। वह अपने फ़ौजी रैंक के साथ-साथ इस सिविल पद को भी अपनाये हुए था। उस के नाम से आन्दोलनकारी आतंकित हो उठते हैं, यह भी रोज़ से मुझे पता

फिर भी मैं दृढ़ और निर्भीक थी। कहा—मैं
तुम्हें भी करना चाहिए।
बोला—बेकार बात मत करो। जल्दी ही मेरे आदमी इस
घेर लेंगे। मैं चाहता हूँ कि तुम भाग जाओ।
र मैं न भागूँ तो ?—मैं ने पूर्ववत् ही कहा।
स ने परेशानी के साथ कहा—बहस मत करो रुथ। एक बार
तार कर ली गयी तो मैं भी तुम्हारी मदद नहीं कर सकूँगा। पता
अगुआद में सड़ने को डाल दी जाओ या अंगोला, मोज़ाम्बीक की
ी जेल में भेज दी जाओ।
मैं ने व्यंग्य किया—पर तुम्हारा तो काम ही यह है। करो अपना
ाम।
उस ने कुछ अनुनय के साथ कहा था—रुथ सच जानो, मैं ने कल्पना
ही नहीं की थी कि तुम यह सब कर रही होगी। अच्छा, अब और बातें
फिर कभी मिलने पर होंगी। तुम फ़ौरन भागो। तुम्हारा इंजीनियर
रास्ते में ही गिरफ़्तार हो चुका है। पाण्डुरंग के इन्तज़ार में मेरे आदमी
पास ही छिपे हैं। नज़र पड़ते ही पकड़ लिया जायेगा।
मैं ने फिर कहा—पर यह तो भारतीय सीमा है। यहाँ तुम यह सब
कर सकते हो ?
उस ने कुछ कठोर हो कर कहा—यह सब मुझे बताने की जरूरत
नहीं। तुम्हारे कस्टम के लोग सोये पड़े हैं। यह कोई पहला मौक़ा नहीं
कि हम ने भारतीय सीमा में लोगों को गिरफ़्तार किया हो। अच्छा अब
तुम भागो। मैं अपने आदमियों को देखता हूँ।
पर मैं एक ही शर्त पर भाग सकती हूँ—मैं ने निर्भीक स्वर में कहा
वह क्रुद्ध हो कर बोला—फिर वही बेवक़ूफ़ी। शर्त-वर्त कुछ नहीं
अच्छा कहो, क्या शर्त है ?
उस ने अनिच्छा से अन्तिम वाक्य जोड़ दिया था। मैं ने कहा—
अस्

भी मेरे साथ चलना होगा ।

वह गरज कर बोला—नामुमकिन । इसे सिर्फ तुम से मोह है, तुम्हारे काम और तुम्हारी पार्टी से नहीं । और यह बताये देता हूँ कि अगर तुम लोग आतुश जैसे आदमियों की मदद से पुर्तगाली सत्ता को हटाने की कल्पना करते हो तो यह निहायत ही बेवकूफी की बात है । वह बेईमान, सिद्धान्तहीन, शराबी और डरपोक है ।

अब मुझे समझते देर न लगी कि यह सब कैसे हुआ और आतुश के कल के प्रलाप का मतलब क्या है ।

मैं ने फिर भी पूछा—पर क्या आतुश तुम्हें जानता है ? वह पहचानता है कि तुम पादरी के बेटे हो ?

मैं परिस्थिति की भयंकरता को भूल उपहास कर बैठी थी । जोर्जे ने बेचैनी से कहा—वह बेवकूफ कुछ नहीं जानता । जानना चाहता भी नहीं । मगर मैं तो जानता हूँ । मेरा खुफिया विभाग तो जानता है । अगर बात छोड़ो । मैं चलता हूँ । मेरे आदमी आ रहे होंगे । उन्हें रोक कर दूसरी तरफ़ ले चलूँगा । तुम कुछ फ़ासले से मेरे पीछे-पीछे चलो । मौका पाते ही भाग चलना ।

इस से पहले कि मैं कुछ कहूँ एक और आवाज़ बीच में बोल उठी । घृणास्पद आतुश था । दाँत चबाते हुए कह रहा था—जिरांव, मैं आप का मुखबिर इसलिए नहीं बना था कि आप इस औरत पर रहम दिखाएँ ।

जोर्जे ने उसे डपटा—चुप रहो बेवकूफ आदमी । तुम्हारा इस से कोई मतलब नहीं ।

आतुश ने फिर कहा—मगर सालाज़ार का तो है जिस का नमक खाते हो ।

आतुश पोर्तुगीज़ मिश्रित कोंकणी में बोल रहा था । जोर्जे ने बिगड़ कर कहा—तमीज़ से बात करो ।

इस पर आतुश कुटिलतापूर्वक हँस कर बोला—जिरांव, नहीं जोर्जे,

। तुम मुझे जानते हो उतना मैं भी तुम्हें जानता हूँ। तुम उतने ही शाली हो जितना कि मैं। वही 'निन्यु इन्फ़ैण्टिल' के अनाथ। मैं सब ता रहा हूँ। मैं तुम से हरगिज छोटा नहीं। बल्कि तुम छोटे हो। तुम ाज़ार के वफ़ादार हो कर भी उस से बेवफ़ाई कर रहे हो। और जहाँ तक ा सवाल है, मैं ने कभी किसी की वफ़ादारी की क़सम नहीं खायी।

उस के जवाब से जोज़े कुछ हतप्रभ हो उठा था। आतुश ने फिर कहा —और अब मैं इस औरत को भी पहचान गया हूँ। यह भी वही रुथ है 'निन्यु इन्फ़ैण्टल' की रुथ। नाम से अन्दाज़ नहीं होता था। पर तुम्हारे प्रेम-प्रदर्शन से हो गया। यह वही लड़की तो है जो मेरी दी हुई टॉफ़ियाँ खा कर भी मुझ से नफ़रत और तुम से मुहब्बत करती थी।

इतने में जोज़े के आदमी रात्रि के उस अन्धकार में अपनी छाया तक को छिपाये चारों तरफ़ से आगे बढ़ आये थे। जोज़े बिना कुछ कहे एक तरफ़ को हट गया था और मुझे गिरफ़्तार कर लिया गया। जब वे मेरे हाथों में हथकड़ी डाल रहे थे तो जोज़े ने कहा—हथकड़ी की ज़रूरत नहीं। हाँ इस आदमी के लिए ज़रूरत है। इसे भी गिरफ़्तार कर लो।

आतुश के बकने-झकने पर भी उसे हथकड़ी पहना दी गयी थी और फिर हम सब भारतीय कस्टम चौकी को बचाते हुए गोआ की सीमा में चले आये थे। अपने पकड़े जाने पर भी मैं खुश थी। कदाचित् इसलि कि मुझे पकड़ने वाला जोज़े था। शायद इसलिए भी कि पाण्डुरंग ब गया था और ग़द्दार आतुश बच नहीं पाया था।

और फिर?—रुथ के रुकने पर मैं ने पूछा।

वह मुसकरायी। पता नहीं उषा के जन्म की वह आभा थी उस की मुसकान की रुचिरता जो मुझे आप्लावित कर गयी थी। कहा— फिर कुछ नहीं हुआ और सब कुछ हुआ। मैं सालाज़ार

में डाल दी गयी। मेरे खिलाफ़ कोई चार्ज नहीं लगाया गया, कोई मुक़दमा नहीं चलाया गया, बस जेल में डाल दी गयी। आतुल का मुझे कुछ पता नहीं फिर क्या हुआ।

जेल में मैं तब तक रही जब तक कि भारत की फ़ौजों ने आ कर हमारी पवित्र भूमि को मुक्त न कराया। जितने पुर्तगाली अधिकारी और सैनिक भाग सके गोआ की नदियों पर बने दो-चार पुलों को उड़ा कर भाग गये थे। उन पुलों में मेरे प्यारे भाई पाण्डुरंग के गाँव के पास का पुल भी था। पर स्वतन्त्रता का पथ प्रशस्त करती हुई फ़ौजों का मार्ग इस से न रुका। मुझे कुछ अफ़सोस है तो यही कि मैं तब उन सौभाग्यशाली गोवों में न थी जो मुक्तिदायिनी भारतवाहिनी का फूलों की वर्षा कर के जयजयकार के द्वारा अभिनन्दन कर रहे थे।

रुथ भावुक हो उठी थी। उस की आँखों में आँसू छलछला आये थे, जो अब उस के स्वर को भी भिगो रहे थे। उस ने कहा—पर मुझे एक असाधारण सौभाग्य प्राप्त हुआ था। जब स्वतन्त्र रेडियो गोआ से गोआ की मुक्ति की सर्वप्रथम घोषणा हुई थी तो वह स्वर मेरा ही था।

कुछ क्षण उस भावुकता में डूबी रुथ एक झटके के साथ सिर हिला कर बोली थी—पर आज़ादी के बाद जैसे मैं रिक्त हो उठी थी। ममी परिवार सहित लिस्बन चली गयी थीं। जोज़े भी उन अधिकारियों में से था जो लिस्बन भाग गये थे। यह जोज़े इतना भग्गू क्यों निकला, यह विचार मुझे बराबर सालता रहा। बस मैं भी गोआ में नहीं रह सकी। डैडी के साथ रहने बम्बई चली आयी। पर उन का साथ भी न बना रहा। वे अचानक एक दिन इस दुनिया को ही छोड़ गये।

रुथ कण्ठावरोध के कारण चुप हो गयी थी।

कुछ देर मौन रह कर मैं ने पूछा—अब तुम्हारी क्या योजना है?

बोली—मेरी कोई योजना नहीं। मैं योजना कभी नहीं बना पायी। बनानी चाही भी तो भाग्य के खिलवाड़ से बनते-बनते बिगड़ गयी।

अब मेरी कोई योजना नहीं। भाग्य नामधारी उस सत्ता की ही जो भी योजना हो।

वह अपनी इस दार्शनिकता से अभिभूत हो उठी थी। मैं ने पूछा—तो अब गोआ में ही रहोगी? उस ने उसी तरह कहा—नहीं, यह भी नहीं जानती। रोज यहीं है उस ने बुलाया है। इस समय उसी के पास जा रही हूँ।

प्रभात का पूर्णोदय हो चुका था। कुछ ही समय पूर्व जिस डैक पर निद्रा की शान्ति छायी थी, वहाँ अब जागरण का शोर था। मैं ने नीले निरभ्र आकाश को देखा जो ताजे कमल सा खिल उठा था। फिर आकाश धावित दृष्टि कैबिन की ओर बढ़ी। मिनेजिस रेलिंग के पास खड़ा समुद्र की दिशा में देख रहा था। वह इतना तटस्थ क्यों था, मेरी समझ में नहीं आ रहा था। मैं ने रुथ को दिखाया—तुम ने देखा उधर? मिनेजिस है।

हाँ। उस के स्वर में तटस्थता का ठण्डापन था।

मैं ने कुतूहली जिज्ञासा की—तुम ने मिनेजिस के बारे में कुछ नहीं बताया?

उस ने शिथिल मुसकान के साथ कहा—उसी की चर्चा तो रात भर करती रही। यही तो वह मिन है: जोज़े मिनेजिस ब्रिगैन्ज़ा।

जोज़े!—मैं विश्वास नहीं कर पा रहा था। मैं ने जब 'जोज़े' कहा तो वह मेरे अविश्वास की ही घोषणा थी।

फिर क्षण भर के मौन में उस सत्य को स्वीकार कर के मैं ने कहा—जोज़े लौट आया, और तुम अब भी उदास हो?

रुथ की आँखें मेरी ही दिशा में थीं। पर लग रहा था जैसे वह मेरी अपनी आँखों से भी पार, हर स्थूलता के परे, कुछ और ही देख रही है। उसी तरह देखते हुए उस ने कहा था—यह उदासी नहीं, दुख भरा मान है। उस स्त्री का मान जिस के प्रिय ने प्रतीक्षा में ही उस का यौवन हर लिया हो।

जाने क्यों मैं ने मिन की हिमायत की—पर यह आरोप सर्वथा सच तो नहीं। तुम ही मिन की प्रतीक्षा किये बिना ननरी चली गयी थीं।

रुथ चुप हो गयी थी। उस ने तर्क नहीं किया। थोड़ी देर बाद बोली—मुझे शिकायत नहीं है कि मिन इतना दुर्दान्त कैसे हो उठा था। उस की प्रतिहिंसा इतनी उग्र कैसे हो गयी थी। पर जब भारतीय कस्टम चौकी के पास वाले हमारे गुप्त ट्रान्समिटर पर वह मुझे अनजाने ही बन्दी बनाने आया था तब उस ने मेरा निवेदन क्यों नहीं स्वीकार कर लिया था? वह क्यों नहीं मेरे साथ चलने को तैयार हुआ?

इस का उत्तर मेरे पास न था। मन में मैं अवश्य सोच रहा था कि यही तो भाग्य की लीला है।

रुथ ने फिर कहा था—कल रात जब तुम हमारी बातों से तटस्थ हो कर एक ओर को चले गये थे, तब मिन ने कहा था—रुथ, तुम्हारे बारे में कुछ भी पता न होने पर भी मैं इस आशा से गोआ आ रहा था कि तुम अवश्य मिलोगी और अन्त में मैं उस जीवन को पा ही लूँगा जिस का बीज भाग्य ने 'निन्यु इन्क्रैण्टिन' के दिनों में हमारे अबोध मनों में अनजाने ही बो दिया था। बोलो रुथ, मुझे स्वीकार करोगी?

मैं ने उत्सुकता से पूछा—तुम ने मना तो नहीं कर दिया रुथ कहीं?

उस के होंठ विदग्ध मुसकान से काम्य हो उठे थे। उस ने कहा—मैं ने मिन से विचार के लिए एक रात का समय माँगा था।

मैं ने कहा—तो वह समय तो पूरा हुआ।

इस पर वह बोली—नहीं, वह तब पूरा होगा जब मिन स्वयं आ कर फिर याचना करेगा। तुम नहीं समझोगे कि स्त्री का मान क्या है।

मैं ने मन में तब सोचा था, और आज भी सोच रहा हूँ कि स्त्री का मान सच ही मेरी समझ से परे है। मेरे अपने जीवन का, मेरे परिचितों के जीवन का, यही यथार्थ है। रुथ की बात सुन कर मैं ने कहा था—तो इस मान की अवधि अब और नहीं बढ़ पायेगी। मिन अवश्य ही याचना

करने आयेगा।

रुथ ने कहा—पर मैं ने मिन को यह भी शपथ जो दी है कि मेरा निर्णय जानने के लिए वह मेरे पास न आये। मैं खुद उसे सूचित करूँगी।

मैं फिर उलझ गया था। दीर्घ वर्षों के दिये अवसाद को भोग कर भी रुथ का मुख उस मलिनता में भी आकर्षक था। पर उस आकर्षण के पीछे जो जटिलता थी वह कितनी दुर्भेद्य थी। पता नहीं आयु के शेष वर्ष भी उसे तोड़ पायेंगे या नहीं।

जहाज़ अगुआद के क़िले के पास पहुँच गया था। पंजिम की यह जल-यात्रा कुछ ही देर की और बात थी। यात्रियों में इस बात पर विशेष उत्साह था कि ज्वार की प्रतीक्षा में जहाज को माण्डवी के रिवर पोर्ट तक पहुँचने के लिए रुकना नहीं पड़ेगा। समुद्र, ज्वार से पूर्ण था और उस ने अपनी अंजलियों से अपना ही जीवन-रस उलीच-उलीच कर माण्डवी के सूखे पुलिनों को तरल और विपुल कर दिया था। और तब मुझे यह भी लगा कि सागरमुखी मिन भी कुछ वैसा ही प्रयत्न कर रहा है। पर रुथ की रिक्तता इतनी अपरिसीम है और उस की अंजलि ससीम कि वंचिता रुथ के प्यार के पुलिन कब आप्लावित हो पायेंगे यह शायद दैव भी नहीं जानता। फिर कुतो मनुष्य: ?